कामायनी की टीका

(प्रसादजी-रचित 'कामायनी' का सर्वांगीण आलोचनात्मक-व्याख्यात्मक विवेचन)

प्रो० मंजु अग्रवाल
एम० ए०



रीगल बुक डिपो, दिल्ली-६

प्रकाशक :
रीगल बुक डिपो,
नई सड़क, दिल्ली-६

[redacted]

संस्करण : प्रथम, सन् १६८४

मूल्य : १५.००

मुद्रक :
सतीश कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा
विकास आर्ट प्रिंटर्स दिल्ली-३२

भूमिका

□ श्री जयशंकर प्रसाद छायावादी काव्य के ही नहीं, हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में मूर्धन्य स्थान के अधिकारी हैं। काव्य के क्षेत्र में 'आंसू', 'लहर' और 'कामायनी' उनकी कृति का आधार स्तम्भ कही जा सकती हैं। इनमें भी 'कामायनी' उनकी काव्य-रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि रचना है। इसमें कवि प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक आधार लेकर मानव की मनोभावनाओं का सुन्दर रूप में चित्रांकन किया है और साथ ही शैव-दर्शन के प्रत्यभिज्ञादर्शन का भी गहनता के साथ निरूपण किया है। इसमें प्राचीन देव संस्कृति के विकास और अध:पतन के माध्यम से मानव जीवन के विकास की कथा को रूपायित किया गया है। छायावादी कविता के गुण-दोष भी इस महाकाव्य में स्पष्ट परिलक्षित होते है। इसमें कवि की मौलिक कल्पना, भव्य पात्र-सृष्टि, प्रकृति का बहु-आयामी चित्रण, मनोवैज्ञानिकता, प्रतीकात्मकता, गहन चिन्तन एवं मनन सभी एकाकार हो गया है।

□ 'कामायनी' अपनी काव्यगरिमा और महानता के कारण विद्वानों में चर्चा-परिचर्चा, चिन्तन और अनुचिन्तन एवं शोध का निरन्तर आकर्षण केन्द्र रही है। यही कारण है कि भारत के सभी विश्वविद्यालयों में स्नोतकोत्तर कक्षाओं में 'कामायनी' का अध्यापन-अध्ययन अनवरत रूप से होता रहा है। अर्थ गाम्भीर्य और विषय की मौलिकता के कारण छात्रों को 'कामायनी' का अध्ययन करने में समय-समय पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। प्रस्तुत पुस्तक छात्रों की कठिनाइयों का समाधान करने हेतु ही प्रणयन की गई है। इसमे 'कायायनी' के सभी पक्षों पर प्रश्नोत्तर रूप में विचार किया गया है। साथ ही पाठ्यक्रम में निर्धारित सर्गो की भी विशद व्याख्या दी गई है।

□ पुस्तक-रचना में जिन विद्वानों की कृतियों से सहायता ली गई है, लेखिका उनके प्रति आभार अभिव्यक्त करती है।

□ आशा है, पुस्तक विद्यार्थियों के लिए अधिक रुचिकर और लाभदायक सिद्ध होगी।

विनीत

—मंजु अग्रवाल

अनुक्रम

आलोचना-खण्ड

१. 'कामायनी' के अंगीरस पर विचार कीजिए। १
२. महाकाव्य की दृष्टि से 'कामायनी' की समीक्षा कीजिए। ८
३. 'कामायनी' के रूपक-तत्व पर विचार कीजिए। १२
४. भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष की दृष्टि से 'कामायनी' की समीक्षा कीजिए। १७
५. इस कथन पर उपयुक्त विचार कीजिए कि "प्रसादजी ने 'कामायनी' में साहित्य और दर्शन का सुन्दर सामंजस्य स्थापित कर आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की है।" २१
६. 'कामायनी' के प्रकृति-चित्रण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। २४
७. 'कामायनी' की ऐतिहासिकता पर विचार कीजिए। २७

व्याख्या-खण्ड

१. चिन्ता १—४०
२. श्रद्धा १—३२
३. काम १—३२
४. लज्जा १—२४
५. इड़ा १—४८
६. दर्शन १—४८
७. रहस्य १—४८
८. आनन्द १—४०

३१२

कामायनी : एक अध्ययन

प्रश्न १—कामायनी के अंगीरस पर विचार कीजिए ।

उत्तर—भारतीय काव्याचार्यों ने रस को काव्यात्मा स्वीकार कर उसकी महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा की है। आद्याचार्य भरत से लेकर आधुनिक सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ० नगेन्द्र तक ने रस की अपार महत्ता के सम्बन्ध में अपनी स्वीकृति दी है। रस के स्वरूप के प्रश्न को लेकर भारतीय एवं अभारतीय सभी विद्वानों ने काव्यशास्त्र को महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्रदान की है। यही कारण है कि कोई भी कृति रस-विहीन स्वीकार नहीं की गई, क्योंकि रस के अभाव में कृति का मूल्यांकन व्यर्थ है। अतएव प्रत्येक काव्य-कृति में रस की सहज अन्तर्व्याप्ति रहती है। महाकाव्य युग-जीवन की समग्र चेतना को अपने में आत्मसात् किये होता है। काव्य रूप की दृष्टि से भी महाकाव्य का गौरव अक्षुण्ण है। अतएव महाकाव्य में विविध घटनाओं एवं परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न रसों की स्थिति अनिवार्यतः होती है। प्रत्येक महाकाव्य में एक रस अंगी होता है और शेष अन्य रसों की स्थिति गौण रूप में रहती है। जीवन के वैविध्य एवं सर्वांग चित्रण के कारण महाकाव्य में जिस प्रकार अनेक कथाओं के रहते हुए एक कथा का आधिकारिक होना अनिवार्य है और अनेक पात्रों के समारोह में एक पात्र का नायक होना अनिवार्य है, उसी प्रकार अनेक रसों के होते हुए एक रस का होना भी असंदिग्ध है। महाकाव्य में अंगीरस के रूप में किस रस को स्थान दिया जाय, इस सम्बन्ध में प्रायः सभी आचार्यों का एक मत है कि महाकाव्य में शृंगार, वीर अथवा शान्त में से किसी एक रस को अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। कामायनी बीसवीं शताब्दी के बुद्धि-प्रधान युग की अन्यतम कृति है, जो बौद्धिकता से आक्रान्त व्यक्ति की चेतना का समग्र निरूपण करती है। आचार्यों ने कामायनी को महाकाव्य के गौरव से विभूषित किया है। अतएव इसके अंगीरस के निर्धारण का प्रश्न भी समुचित है और उत्तराकांक्षी भी है।

अंगीरस के लक्षण—(१) बहुव्याप्ति अर्थात् महाकाव्य में अभिव्यक्त नाना रसों में से, जो रस कथानक के कलेवर में सर्वाधिक व्याप्त हो, वही अंगीरस

है। (२) अंगीरस में मुख्य पात्र की—पुरुष अथवा नारी, जो भी कथा का नयन करे—मूल वृत्ति का प्रतिफलन रहता है। नायक के चरित्र की मूल-वृत्ति कथानक के दोनों पक्षो—घटना तथा भाव—का सचालन करती है और भाव-पक्ष मे मूल भावना अंगीरस का निर्धारण करती है। (३) अंगीरस मूल उद्देश्य या फलागम का आस्वाद रूप होता है। (४) सारभूत प्रभाव (Cumulative effect) की व्यंजना अंगीरस में रहती है।

कामायनी में अनेक रसों का वर्णन—महाकाव्य होने के कारण कामायनी में स्वभावत: ही जीवन की विविध दशाओं का वर्णन और उसके परिणाम-स्वरूप नाना रसो की अभिव्यजना है। श्रद्धा और मनु के प्रणय-प्रसंगो मे शृंगार के सयोग-पक्ष का दृप्त वर्णन है। शृंगार का स्थायी भाव रति है। प्रसादजी ने श्रद्धा के नख-शिख वर्णन (रूप चित्रण) में श्रद्धा को अनुपम सौंदर्य-शालिनी नारी के रूप मे चित्रित किया है। श्रद्धा के रूप-वैभव को दृष्टिगत कर ही मनु के मन मे काम की सहज वृत्ति का उदय होता है—

घिर रहे थे घुंघराले बाल, अंस अवलम्बित मुख के पास।
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास॥

और इसी प्रकार—

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ-वन-बीच गुलाबी रंग॥

प्रकृति के उद्दीप्त वातावरण का भी वर्णन कवि की लेखनी का विषय रहा है। प्रकृति के सौन्दर्यमय रूप-माधुर्य को देखकर नायक की रति सहसा उद्दीप्त हो उठती है। श्रद्धा और मनु के मधुर-मिलन के अवसर पर उत्पन्न होने वाले पुलक, स्पर्श, लज्जा, भय, कप आदि अनुभावों एवं संचारी भावो को भी कवि ने प्रस्तुत किया है। श्रद्धा एव मनु के प्रणय-प्रसगों के अतिरिक्त चिंता सर्ग मे देवताओ के निर्बाध-विलास में संयोग-शृंगार की भाँति विप्रलम्भ शृंगार का भी वर्णन भव्यरूपेण हुआ है। विप्रलम्भ के चार भेद हैं—पूर्वानुराग, मान, प्रवास एव करुणा। मिलन अथवा समागम से पूर्व-चित्र-दर्शन, गुण-श्रवण या स्वप्न-दर्शन से हृदय मे जो अनुराग का आविर्भाव होता है, उसे पूर्वराग या पूर्वानुराग कहा जाता है। मनु और श्रद्धा का प्रणय या प्रेम प्रथम-दर्शन-जन्य (Love at first sight) होने के कारण पूर्वराग की अभि-व्यक्ति कामायनी मे नहीं है। प्रियापराधजनित कोप को मान कहते है। मान

भी दो प्रकार का कहा गया है : प्रणय-मान और ईर्ष्या-मान। प्रणय-मान का स्वरूप भी कामायनी में विशेष उपलब्ध नहीं है, क्योंकि श्रद्धा-अभेद-रूपा विश्वासमयी रागात्मिकता प्रवृत्ति की प्रतीक है और वह मनु को अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है। उसके हृदय में मनु के प्रति अगाध प्रेम है। ईर्ष्या-मान का भव्य स्वरूप वहाँ उपलब्ध होता है जहाँ मनु असुर-पुरोहित आकुलि-किलात की प्रेरणा से 'मैत्रावरुण' यज्ञ में निरीह पशु की बलि देते है। स्वप्न-सर्ग में मनु के ईर्ष्यावश श्रद्धा को छोड़कर चले जाने पर प्रवास विप्रलम्भ अभिव्यंजित हुआ। करुण विप्रलम्भ की भी व्यंजना कामायनी में प्रायः नही है, क्योंकि मनु के पलायन कर जाने पर श्रद्धा का विश्वास अडिग है, उसका धैर्य कभी नष्ट नही होता। उसकी यह दृढ धारणा है कि उसका मनु से मिलन अवश्य होगा। इस प्रकार कामायनीकार शृंगार के संयोग-वियोग दोनों ही रूपों के चित्रण में कुशल है।

शृंगार के अतिरिक्त 'कामायनी' में अन्य रसों की भी सुष्ठु व्यंजना है। 'ईर्ष्या' सर्ग मे श्रद्धा द्वारा अपने भावी पुत्र के लिए झूले आदि का वर्णन करने में माता के हृदय का वात्सल्य मुखरित हो उठा है। 'स्वप्न सर्ग' की निम्न-लिखित पक्तियाँ वात्सल्य रस की भव्य व्यजना करती है—

"माँ—फिर एक किलक दूरागत, गूँज उठी कुटिया सूनी,
माँ उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कण्ठा दूनी॥
लटरी खुलीं अलक, रज धूसर बाँहें आकर लिपट गयीं,
निशा-तापसी की जलने को, धधक उठी बुझती धूनी।

इस प्रकार मनु के पलायन पर श्रद्धा 'कुमार' की बाल-सुलभ क्रीड़ाओं के आधार पर ही जीवन व्यतीत करती है। मनु का वात्सल्य-हृदय भी सार-स्वत प्रदेश मे उनकी श्रद्धा तथा कुमार से भेंट के अवसर पर द्रष्टव्य है।

करुण के स्थायी भाव शोक की व्यंजना तो कामायनी के प्रारम्भ मे ही हुई है। हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठे हुए मनु जब ओघ-वृष्टि से नष्ट हुई देव-ससृति पर विचार करते हैं तो उस समय उनके शोक, विषाद, चिन्ता आदि को देखकर और पढ़कर प्रमाता को सहज ही करुण रस की अनुभूति होती है। प्रलय में नष्ट बन्धु-बान्धव तथा सुख-वैभव के नाना उपकरण आलम्बन हैं। देवताओं का दम्भ, अनियमित अबाध विलास, सर्वत्र व्याप्त ऐश्वर्यादि का स्मरण उद्दीपन है। मनु का प्रलाप, देवों की निन्दा कर...

अनुभाव हैं। भविष्य की चिन्ता, विस्मृति, जड़ता आदि संचारी भाव हैं तथा स्थायी भाव शोक, जिससे करुण रस अभिव्यंजित हुआ है।

वर्ण्य-कृति में वीररस की अभिव्यक्ति का अधिक अवसर कवि को उपलब्ध नही है, केवल इसके स्थायी भाव उत्साह की व्यंजना यत्र-तत्र अनेक स्थानो पर मिलती है। जहाँ अभेद बुद्धि, श्रद्धा मनु को चिन्ता, दैन्य, विषाद, जड़ता आदि को परित्याग कर क्रियाशील होने के लिये उत्प्रेरित करती है, वहाँ उसकी उक्तियों में उत्साह स्थायी भाव की व्यंजना भव्य रूप में हुई है—

यह क्या तुम सुनते नहीं, विधाता का मंगल वरदान।
शक्तिशाली हो विजयी बनो, विश्व में गूंज रहा जयगान॥

और भी—

कायर तुम दोनों ने ही उत्पात मचाया,
अरे समझ कर जिनको अपना था अपनाया।
तो फिर आओ देखो कैसी होती है बलि,
रण यह, यज्ञ पुरोहित ! ओ किलात ओ आकुलि !

इस प्रकार वीररस के स्थायी भाव उत्साह की व्यंजना कामायनी मे अनेक स्थलो पर उपलब्ध हैं।

भयानक और वीभत्स रसो की भी अभिव्यजना कामायनी मे वर्तमान है। भयानक रस की अभिव्यक्ति प्रमुखतः तीन स्थलो पर हुई है, यथा प्रलय वर्णन मे, युद्ध वर्णन मे तथा रहस्य सर्ग में। कवि की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उसने आलम्बन के वर्णन द्वारा ही भयानक रस के स्थायी भाव भय का समुचित परिपाक कर दिखाया है। वीभत्स रस के स्थायी भाव जुगुप्सा की भी व्यजना सुन्दर रूप मे हुई है। मनु के हिंसात्मक कर्मों (दारुण दृश्य, रुधिर के छींटे, अस्थिखड की माला) में वीभत्स रस की सुन्दर झलक मिलती है। पशु की हत्या के प्रसग में वीभत्स का भव्य रूप निखर उठा।

कामायनी मे रौद्र और अद्‌भुत रसो का परिपाक उत्तम रूप मे हुआ है—

यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी धधक रही थी ज्वाला,
दारुण दृश्य रुधिर के छींटे अस्थि खंड की माला।
वेदी की निर्मम प्रसन्नता पशु की कातर वाणी,
मिलकर वातावरण बना था कोई कुत्सित प्राणी।

रौद्र का स्थायी भाव क्रोध है और अद्भुत का स्थायी भाव विस्मय है। रौद्र और अद्भुत दोनों ही रसों के स्थायी भाव क्रमशः क्रोध और विस्मय का परिपाक भव्य रूप मे उपलब्ध होता है। कामायनी के 'स्वप्न' तथा 'संघर्ष' सर्गों में रौद्र रस की सुन्दर व्यंजना है। देवजातीय मनु अपनी आत्मजा प्रजा इड़ा पर अबाधित अधिकार (बलात्कार) करने का असफल प्रयत्न करते है, तो उस समय प्रकृति-विपर्यय होता है और प्रजा क्रांति कर देती है। प्रजा के इस उग्र रूप को देखकर मनु का क्रोध और भी अधिक भड़क उठता है। इस प्रसंग में शासक तथा शासित दोनों का अत्याचार एक-दूसरे के लिए उद्दीपन का कार्य करते है। दोनो का एक-दूसरे पर दोषारोपण करना, निन्दा करना तथा कठोर वचन बोलना आदि अनुभाव है तथा उनके हृदय में उत्पन्न उग्रता, उत्साह, अमर्ष आदि संचारी भाव हैं। देवशक्तियो के कोप, प्रकृति के कम्पन तथा शिव-नेत्र उन्मीलन आदि का वर्णन द्वारा रौद्ररस और भी अधिक प्रखरता को प्राप्त होता है। इसी प्रकार अद्भुत रस की व्यंजना भी कामायनी में प्रमुखतः दो स्थलों पर हुई है—एक तो तपस्या-निरत मनु द्वारा शिव-ताण्डव के दर्शन तथा दूसरे 'रहस्य' सर्ग मे। 'रहस्य' सर्ग मे त्रिपुर मिलन में अद्भुत रस का सुन्दर रूप अभिव्यक्त हुआ है।

हास्य रस का स्थान सुलभ न होने पर भी कामायनी मे हास्य रस के स्थायी भाव हास की ही छटा मिल जाती है। श्रद्धा तथा कुमार की विनोदपूर्ण उक्तियों में स्थायी भाव हास की व्यंजना हुई है।

तदतिरिक्त शान्त रस की अभिव्यक्ति कामायनी में व्यापक रूप में हुई है। कामायनी के प्रारम्भिक सर्गों (चिन्ता, आशा) में मनु का शान्त चिन्तन अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। अन्तिम सर्गों मे इनकी पूर्ण प्रतिष्ठा है। श्रद्धा और मनु का आनन्द लोक की ओर प्रस्थान, मानसरोवर की प्राकृतिक शान्त छटा, जहाँ सर्वत्र एक मनोरम शान्ति है तथा अपने पराये का भय नहीं है, ऐसे आनन्द-लोक मे पहुंचकर अखण्ड आनन्दावस्था में तन्मय हो जाना शांत रस के द्योतक हैं। चिन्ता, निर्वेद, रहस्य, दर्शन, आनन्द आदि सर्गो मे शान्त रस का ही प्रभुत्व है। शान्त रस का स्थायी निर्वेद या शम माना गया है। शान्त रस के सम्बन्ध में आचार्यो का निम्नलिखित कथन है—

न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता, न द्वेषरागो न च काचिदिच्छा।
रसः सः शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु शम प्रधान ॥

इस प्रकार कामायनी में जहाँ अनित्य तथा नाना दुखो से युक्त संसार के प्रति मनु की विरक्ति का वर्णन है, वहाँ निर्वेदमूलक शान्त रस है। कामायनी में इस शान्त रस का निर्वाह व्यापक और अत्यन्त भव्य रूप में हुआ है।

अंगीरस—अंगीरस की दृष्टि से कामायनी में केवल दो रस—शृंगार और शान्त—उपस्थित होते है, क्योकि अन्य रस गौण हैं और कुछ रसो का तो परिपाक भी नही हुआ है। ऐसी स्थिति मे प्रमुखता शृंगार और शान्त दो ही रसों को प्राप्त है। करुणा, वात्सल्य, रौद्र, भयानक आदि अन्य बहुव्याप्त नही हैं, उनकी अभिव्यक्ति प्रसंगानुसार यत्र-तत्र हुई है। सभी कथा के प्रमुख पात्र मनु एवं श्रद्धा के चारित्रिक विकास को तो स्पष्ट करते है, किन्तु उनका संबध मूल संवेद्य भावना, उद्देश्य अथवा फलागम से भी नहीं है।

शृंगार तथा शान्त मे से शृंगार का सम्बन्ध प्रमुख पात्र से अवश्य है। अन्य रसों की अपेक्षा वह बहुव्याप्त भी है। मनु तथा श्रद्धा के प्रसंग मे संयोग शृंगार की अभिव्यक्ति हुई है। चिन्ता सर्ग के अन्तर्गत देव-जाति के विलास वैभव के अंकन में भी संयोग शृंगार अभिव्यंजित हुआ है। 'स्वप्न' सर्ग में विप्रलम्भ शृंगार की व्यंजना मिलती है, किन्तु शान्त की अपेक्षा बहुव्याप्त वह भी नही है, क्योंकि शास्त्रीय दृष्टि से विवेच्य कृति के उत्तरार्द्ध में उसका परिपाक परिपुष्ट नही है। इडा तथा मनु के प्रणय-प्रसंग मे शृंगार का स्थायी भाव रति तो अवश्य है, किन्तु वहाँ रस की अपेक्षा रसाभाव ही है, क्योंकि प्रजापति मनु का अपनी आत्मजा प्रजा इडा के प्रति प्रणय अनुचित और नितांत अशास्त्रीय है। अंगीरस मूल उद्देश्य अथवा फलागम का आस्वाद रूप होता है। इस दृष्टि से भी शृंगार रस कामायनी का अंगीरस नहीं ठहरता, क्योंकि कामायनी के उत्तरार्द्ध से कथा की धारा जैसे-जैसे गति को प्राप्त करती है, वैसे-वैसे शृंगार की धारा क्षीण से क्षीणतर होती जाती है। अन्त मे जब श्रद्धा द्वारा त्रिलोक (भावलोक, कर्मलोक, ज्ञानलोक) का दर्शन कराने के उपरात मनु सामरस्य की अवस्था मे जिस अखण्ड आनन्दानुभूति शक्ति मे तल्लीन होते है, उसे शृगार नही कहा जा सकता। अत: स्पष्ट है कि 'बहुव्याप्ति' नायक के चरित्र की मूल-वृत्ति, उद्देश्य या फलागम न और सारभूत प्रभाव सभी की दृष्टि से शृंगार रस को वर्ण्य-कृति का अंगीरस या मुख्य रस स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अतएव शृंगार के अभाव मे शान्त रस को कामायनी का अंगीरस स्वीकार

किया जा सकता है। बहुव्याप्ति, प्रमुख पात्र की मूल-वृत्ति, फलागम या उद्देश्य और सारभूत प्रभाव सभी की दृष्टि से शान्त रस कामायनी का अंगीरस ठहरता है। शान्त रस के स्थायी भाव निर्वेद और शम है। कथा के प्रारम्भ मे निर्वेदमूलक शान्त और अन्त मे शममूलक शान्त की अभिव्यक्ति, स्थान-स्थान पर मनु के चिन्तन मे, श्रद्धा की उक्तियो मे तथा दर्शन, रहस्य और आनन्द सर्गो में शान्त रस स्पष्ट है। पूर्वार्द्ध में शृंगाराधिक्य के कारण शान्त रस दब-सा गया है, परन्तु वह विद्यमान अवश्य रहा है। अतएव कहा जा सकता है कि निरन्तर व्याप्ति की दृष्टि से शान्त रस कामायनी में आद्योपात उपलब्ध है। कामायनी के प्रमुख पात्र मनु और श्रद्धा है, जिनकी प्रवृत्ति शृंगार प्रिय होने पर भी सामरस्य की ओर उन्मुख है। यही कारण है कि अन्ततः दोनों सामरस्य में विलीन हो जाते है और योगी की निरंजनावस्था की अनुभूति करते हैं, जो शृंगार की न होकर शांत की ओर उन्मुख हैं। अतएन मुख्य पात्र की मूल-वृत्ति से भी शांत रस का सम्बन्ध है। कामायनी का मूल उद्देश्य चिदानन्द की प्राप्ति है। काम-प्रवृत्त मनु समरसता से वंचित रहते हैं। जब मनु जीवन से विरक्त होकर इच्छा, क्रिया और ज्ञान के सम्मिलन की महत्ता जान लेते हैं, तभी उन्हे अखण्ड आनन्द की अनुभूति होती है। फलतः उद्देश्य या फलागम की दृष्टि से भी शान्त रस अगीरस ठहरता है। कामायनी का अध्येता कामायनी के पठनोपरांत शृंगारानुभूति न कर आनन्दानुभूति करता है। कामायनी का सारभूत प्रभाव भी शात रस के पक्ष में बैठता है। अतएव इस दृष्टि से भी कामायनी का अंगीरस शात ठहरता है। शांत रस कामायनी का मूल रस है। प्रस्तुत अंग में एक बात ध्यान देने योग्य है कि कामायनी का शांत रस भारतीय काव्यशास्त्र द्वारा अनुमोदित शांत रस न होकर शैवदर्शन या प्रकाण्ड विद्वान परम महेश्वराचार्य अभिनवगुप्त की प्रतिपत्तियो से प्रभावित शात रस है। अतएव अभिनवगुप्त पादाचार्य की दृष्टि मे शांत-रस का लक्षण इस प्रकार है—

स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भाव प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तपाये च शान्त एवोपलीयते॥

अर्थात् अपने-अपने निमित्त कारणो को प्राप्त कर शात रस से ही अन्य भाव आविर्भूत होते है और फिर निमित्तो के नष्ट होने पर शात मे ही विलीन हो जाते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अभिनवगुप्त की दृष्टि में शांत रस मूल रस है, जिससे अन्य सभी रस उत्पन्न होकर उसी मे विलीन हो जाते हैं अर्थात् सभी रसों के अन्तिम लक्ष्य अर्थात् आत्मतोष को ही उन्होंने मूल रस माना है। प्रसादजी की व्यक्तिगत जीवनचर्या और उनके काव्य मे उपलब्ध दार्शनिक विवेचन से स्पष्ट है कि वे शैव-दर्शन के अनुयायी थे। शैव-दर्शन मे आनन्द भाव की मान्यता है, जिसमें शृंगार और शांत, दोनो का संस्पर्श रहता है। प्रसादजी ने 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' मे इस ओर संकेत भी किया है—'शैवागम के आनन्द-सम्प्रदाय के अनुगामी रस की दोनों सीमाओ शृंगार और शांत को स्पर्श करते थे। यह शांत रस निस्तरंग महोदधिकल्प समरसता है।' अतएव स्पष्ट है कि कामायनी का अंगीरस शान्त रस या आनन्द रस ही है, जो रस-भेद का वाचक न होकर रस का पर्याय है। आचार्य नगेन्द्र ने भी शैवाद्वैत प्रभावित इसी मूल रस, अखण्ड आत्मरस अथवा महारस या आनन्द रस को कामायनी का अंगीरस स्वीकार किया है, क्योंकि यही कामायनी के वस्तु-विधान, प्रतिपाद्य तथा रूप-विधान के अनुकूल है। यह प्रसाद के काव्य-दर्शन के अनुकूल है, जिनके अनुसार काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अभिव्यक्ति का नाम है। अतएव अन्ततः कहा जा सकता है कि कामायनी का अंगीरस शैवदर्शन से प्रभावित आनन्द रस, मूल रस या शांत रस है।

प्रश्न २—महाकाव्य की दृष्टि से कामायनी की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—छायावादी काव्य-चेतना की अप्रतिम अभिव्यक्ति कामायनी हिन्दी साहित्य की ही नही, विश्व-साहित्य की गौरव प्रतिमा है, जिसमे बुद्धि-युगीन भौतिकता, शुष्कता से पीडित एवं संतप्त मानव-जाति के जीवन-विकास को अग्रसर करने का सराहनीय प्रयत्न किया गया है। यही कारण है कि कामायनी का अध्येता जीवन और जगत् की नाना अनुभूतियो से सुपरिचित होता हुआ परम चैतन्य भगवान् शिव की आनन्दानुभूति मे तल्लीन हो जाता है। कामायनी के महाकाव्यत्व पर विचार करने के लिए भारतीय और पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र के तद्विषयक सिद्धांतो का अध्ययन, अनुशीलन एवं चिंतन अनिवार्य है। भामह, दण्डी, रुद्रट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ प्रभृति संस्कृताचार्यों ने महाकाव्य के स्वरूप सम्बन्धी धारणाओं पर पर्याप्त प्रकाश विकीर्ण किया है। इसी प्रकार पाश्चात्य विपश्चितो मे अरस्तू, सी० एम० बाबरा, एबरक्रोम्बी, केर, डिक्सन

प्रभृति समालोचकों ने महाकाव्य-सम्बन्धी मान्यताओं का दिग्दर्शन कराया है। इधर भारतीय और पाश्चात्य समालोचक शास्त्र के समन्वयकर्ता आचार्य नगेन्द्र ने महाकाव्य के लिए पाच अनिवार्य तत्त्व माने हैं, जिनके अभाव मे परम्परागत शास्त्रीय लक्षणो के रहते हुए भी कोई भी कृति महाकाव्य के गौरव से विभूपित नही हो सकती और जिनके सम्भाव में कोई भी कृति महाकाव्य बन सकती है। इस प्रकार विद्वान् लेखक ने देशकालातीत सिद्धान्तो का निर्माण किया है। महाकाव्य के पाँच अनिवार्य तत्त्व इस प्रकार है—उदात्त कथानक, उदात्त कार्य, उदात्त चरित्र, उदात्त शैली और उदात्त भाव।

प्रसाद की कला का चरम परिष्कार कामायनी निश्चय ही महाकाव्य है, क्योंकि कामायनी में महाकाव्य के उपरोक्त पाँच देशकालातीत अनिवार्य तत्त्वो का संगठन अतीव भव्य रूप मे हुआ है। 'कामायनी का महाकाव्यत्व' शीर्षक निबन्ध में डॉ० नगेन्द्र ने कामायनी मे प्रस्तुत पांच तत्त्वों के निर्वहण का अत्युत्तम निदर्शन किया है।

तदतिरिक्त कामायनी मे महाकाव्य सम्बन्धी परम्परागत शास्त्रीय लक्षणो का भी भव्य निर्वाह हुआ है। कथावस्तु, सर्ग, नायक, रस, प्रकृति-वर्णन, प्रबन्ध-संगठन, इतिवृत्तात्मक-वर्णन, महान् उद्देश्य आदि सभी लक्षणों का सुष्ठु रूप विवेच्य कृति में उपलब्ध है। कामायनी की कथावस्तु पौराणिक एवं ऐतिहासिक है। उसकी कथा-सामग्री ऋग्वेद, पुराणो तथा शतपथ ब्राह्मण में बिखरी पड़ी है। उसकी कथा में जल-प्लावन की घटना, देव-सृष्टि वर्णन आदि का समावेश है। प्रसादजी ने इन्ही प्राचीन ग्रन्थो से सूत्र लेकर विच्छिन्न शृंखलाओं को कल्पना से जोडकर कथा को काव्यात्मक बनाया है। कामायनी की कथा महान् है। वह उस आदि पुरुप और आद्या नारी की कथा है, जिसने नागरिक सभ्यता का विकास किया। अतः वह एक साधारण कथा नही, वरन् एक महान्, व्यापक तथा महत्त्वपूर्ण कथा है। कथा के अनुरूप उसकी घटनाएँ भी महान् है। देव-सृष्टि के नाश तथा प्रलय के पश्चात् मनु को धीरे-धीरे प्रकृति पर विजय पाना, इड़ा का सहयोग पाकर नागरिक सभ्यता का विकास करना तथा अन्त में जीवन के संघर्ष के उपरान्त तीनो वृत्तियो का साक्षात्कार करना तथा आनन्द की प्राप्ति आदि इसकी महान् घटनाएँ है।

'कामायनी' में पन्द्रह सर्ग है, जिनमे कवि ने मानव-जीवन की यथासाध्य पूर्ण अभिव्यक्ति की है। वस्तुतः यही महाकाव्य की आत्मा है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसमे वर्णित मुख्य विपय के नाम पर है।

लीन होने के साथ ही ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। आनन्द की उपलब्धि ही इस महाकाव्य का महत्त्वपूर्ण कार्य है।

उपरिलिखित परम्परायुक्त लक्षणो के भव्य निर्वहरण के अतिरिक्त कामायनी के महाकाव्यत्व पर निम्नलिखित विद्वानों के विचार भी पठनीय है—

महादेवी वर्मा—"प्रसादजी की 'कामायनी' महाकाव्यों के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ती है, क्योकि वह ऐसा महाकाव्य है जो ऐतिहासिक धरातल पर भी प्रतिष्ठित है और सांकेतिक अर्थ मे मानव-विकास का रूपक भी कहा जा सकता है। कल्याण-भावना की प्रेरणा और समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण वह भारतीय परम्परा के अनुरूप है।" इसी प्रकार पं० विनोदशंकर व्यास का कथन है—"रामचरितमानस के बाद यही एक ऐसा महाकाव्य है, जो हिन्दी को विश्व-साहित्य मे स्थान दिला सकता है। होमर, मिल्टन, वाल्मीकि और कालिदास से तुलना करके भी इसका गुण-दोष देखा जाय—इतनी योग्यता इस कलाकृति में है।" इसी प्रकार डॉ० शम्भूनाथसिंह का दृष्टिकोण है—'कामायनी आधुनिक हिन्दी-साहित्य का ऐसा अमर महाकाव्य है, जिसमे आधुनिक युग को प्रवृत्तियो और विशेषताओं का पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है और जो अनेक दृष्टियो से हिन्दी के ही नही, अपने युग के पूर्ववर्ती समस्त भारतीय महाकाव्यो से भिन्न एक निराले स्थान का अधिकारी है।"

अन्ततः निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि कामायनी का महाकाव्यत्व असन्दिग्ध है। कामायनी की रचना करके प्रसादजी ने अमर कलाकारों में अपना स्थान बना लिया है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक का यह विचार—"कामायनी का प्रणयन करते समय कवि के अन्तर्मन में यह विचार अवश्य रहा है कि वह एक उदात्त और व्यापक जीवन-दृष्टि—इस काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करे जो संघर्ष, स्वार्थ, प्रतारणा और संकीर्णता के युग मे भूले-भटके मानव को आलोक-पथ दिखा सके।" कामायनी के महत्त्व की यथार्थ व्यंजना करता है, अतएव सिद्ध है कि कामायनी निश्चय ही महाकाव्य है।

प्रश्न ३—कामायनी के रूपक तत्त्व पर विचार कीजिए।

उत्तर—कामायनी के रूपक तत्त्व का विश्लेषण करने से पूर्व 'रूपक' शब्द के विभिन्न अर्थों से अवगत होना अनिवार्य है। वर्तमान साहित्याचार्य इसका मुख्यतः तीन अर्थों में प्रयोग करते है—(१) नाटक के वाचक के रूप में,

(२) अलंकार-विशेष के रूप में, और (३) पश्चिम के 'एलीगरी' के पर्याय के रूप में। नाटक के अर्थ में इसका प्रचलन संस्कृत के पुरातन ग्रन्थों से लेकर अत्याधुनिक युग तक समान रूप में होता रहा है। रूपक नामक अलंकार विशेष का अर्थ भी पर्याप्त प्रसिद्ध है—'रूपारोपात्तु रूपकम्' रूपक के अन्तर्गत प्रस्तुत में अप्रस्तुत का निषेध रहित आरोप किया जाता है। इसका तीसरा अर्थ पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र की देन हैं। पश्चिम में काव्य की एक विशिष्ट विधा 'एलीगरी' (Allegory) की संज्ञा से प्रख्यात है। इसमें एक द्वयर्थक कथा की योजना की जाती है अर्थात् अमूर्त और सूक्ष्म कल्पनाओं को भौतिक आधार लेकर स्थूल और मूर्त रूप प्रदान किया जाता है। इस प्रकार, इस विशिष्ट अर्थ में रूपक से तात्पर्य एक ऐसी द्वयर्थक कथा से है, जिसमे किसी सैद्धातिक अप्रस्तुतार्थ अथवा अन्यार्थ का प्रस्तुत अर्थ पर अभेद आरोप रहता है। 'एलीगरी' (Allegory) वे कथा-रूपक के स्वरूप को पाश्चात्य मनीषी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है—"Allegory is method of literary or pictorial composition whereby the author or an artist bodies forth immaterial things in concrete tengible images." कामायनी में रूपक-तत्त्व का विवेचन करते समय 'रूपक' को 'कथा रूपक' 'एलीगरी' के पर्याय रूप में ग्रहण किया जायगा।

'कामायनी' मे ऐतिहासिकता के साथ ही रूपक तत्त्व का भी समावेश है। 'आमुख' में प्रसादजी ने स्वतः इस बात की पुष्टि की है कि 'कामायनी' के पात्र ऐतिहासिक ही नही, मानव-प्रवृत्तियों के प्रतीक भी हैं। वे कहते है—"यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनाने में समर्थ हो सकता है।" अत स्पष्ट है कि 'कामायनी' मे प्रस्तुत अर्थ के साथ ही सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति हुई है, रूपक मे प्रस्तुत कथा में भौतिक व्यक्तियो तथा घटनाओं की ही अभिव्यक्ति होती है। किन्तु अप्रस्तुत कथा प्रायः मनोवैज्ञानिक दार्शनिक ही होती है। अतः रूपक से तात्पर्य है—मुख्यार्थ के साथ ही गूढ़ार्थ की भी अभिव्यक्ति।

अब देखना यह है कि कामायनी में 'रूपक' तत्त्व के निर्वाह मे कवि को कहाँ तक सफलता मिली है। प्रथम 'कामायनी' के पात्रों को ही लीजिए और देखिए कि पात्रों के द्विविध-रूप को लेकर प्रसादजी ने प्रधान कथा की शृंखला

अब 'कामायनी' के गौण पात्र रह जाते हैं। इनमें सर्वप्रथम श्रद्धा-मनु का पुत्र कुमार आता है। कामायनी मे कुमार के व्यक्तित्व का अधिक विकास नही दिखाया गया है। केवल शैशव का चित्र अंकित है और दूसरा जब श्रद्धा कुमार को इड़ा को सौंपकर मनु की खोज मे दूसरी बार निकली है, किन्तु रूपक की दृष्टि से श्रद्धा का कुमार को इड़ा को सौंपना महत्त्वपूर्ण है। वह मानव का प्रतीक है।

असुर-पुरोहित किलात और आकुली आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। मानव-हृदय मे सदासद् प्रवृत्तियों का द्वन्द्व-सा छिड़ा रहता है, दोनों ही हृदय पर अपना-अपना प्रभुत्व जमाना चाहती है। विजय उसी की होती है जो बलवती होती है। कामायनी में देवता इन्द्रियो के प्रतीक हैं। सोमलता भोग की प्रतीक है। सोमलता से आवृत्त वृषभ का अर्थ हुआ—भोग समन्वित। यदि भोग रूपी आवरण को मनुष्य हटा दे, उसे धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाय तो उसे आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो सकती है।

'कामायनी' में तीन प्रतीक और भी है—जलप्लावन, त्रैलोक्य और मानसरोवर। जल-प्लावन भारत की ही नही, अपितु समस्त संसार की अत्यन्त प्राचीन घटना है। हमारे धर्मशास्त्रो में इसको प्रतीकार्थ में ग्रहण किया गया हैं। जब मन इन्द्रियो की निर्वाध उपासना में लग जाता है अर्थात् जब वह आत्मोन्मुखी न रहकर अनात्मोन्मुखी हो जाता है, तो चेतनता रूप जल माया से आवृत्त हो जाता है।

त्रिलोक की प्रेरणा कवि को प्राचीन त्रिपुर दाह मे मिली है। इसका प्रतीकार्थ भी स्पष्ट हैं। तीन—ज्ञानलोक, भावलोक तथा कर्मलोक होते हैं। पहले किसी वस्तु का ज्ञान होता है, फिर उसके सम्बन्ध मे इच्छा उत्पन्न होती है। उसके पश्चात् इच्छा की पूर्ति के लिए मनुष्य कर्म करता है। इनके सामंजस्य मे ही जीवन का वास्तविक सुख निहित है। केवल इच्छा पंगु है, उसे कर्म का सहारा चाहिए। केवल कर्म अन्धा है, उसे ज्ञान का प्रकाश चाहिए—

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की।"

जब श्रद्धा द्वारा इन तीनो का समन्वय हो जाता है तो मन समरसता की अवस्था को प्राप्त कर लेता है—

"स्वप्न स्वाप जागरण भस्म हो, इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में, श्रद्धायुत मन बस तन्मय थे।"

मानसरोवर के लिए शतपथ मे मनोरवमर्पण आया है। यह स्थान कैलाश शिखर पर है। श्रद्धा की सहायता से मनु वहां पहुंच कर आनन्द प्राप्त करते हैं। 'कामायनी' में मानसरोवर के लिए 'मानस' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह मानस समरसताजन्य आनन्द का प्रतीक है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि कामायनी निश्चय ही रूपक है और कामायनीकार ने प्रस्तुत कृति मे रूपक-तत्त्व का समावेश अत्यधिक लाघव के साथ किया है और यही कारण है कि रूपक-तत्त्व के समुचित निर्वहरण में भी कामायनी की प्रबन्धात्मकता सुरक्षित है। मानव-सभ्यता के विकास का यह विराट रूपक साहित्य के इतिहास मे एक नवीन प्रयोग है—एक अद्भुत उपलब्धि है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दो में कहा जा सकता है—"इस प्रकार कामायनी निस्सन्देह ही रूपक है। प्रसादजी ने कथा के मूल तत्त्वों को ऐतिहासिक मानते हुए उनके आधार पर ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना का उपक्रम किया था। किन्तु कथा का सांकेतिक रूप उनके मन में आरम्भ से अन्त तक वर्तमान था और उसके विकास का प्राचीन वैदिक रूपक उनको वैसे भी अत्यन्त प्रिय था।"

प्रश्न ४—भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष की दृष्टि से कामायनी की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—प्रसादजी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आनन्द को प्रधान मानकर चले हैं। आनन्द सम्प्रदाय के अनुयायी शैव-रस की शृंगार और शान्त दो सीमाएँ मानते हैं। 'कामायनी' मे भी इसी सिद्धांत का पालन किया गया है। पात्रो द्वारा जिन स्थायी भावों की अभिव्यक्ति काव्य में होती है, उनमें रति का ही प्राधान्य है, किन्तु अवसान शम मे ही होता है। फिर भी 'कामायनी' को शृंगार-प्रधान रचना ही कहेंगे, क्योंकि इसमे प्रकृति और पुरुष भी रति-भाव से ही ओत-प्रोत है। 'कामायनी' में वात्सल्य, वीर, भयानक, अद्भुत, करुण आदि रसों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है, किन्तु ये सब गौण रूप में ही हैं। इस प्रकार 'कामायनी' की प्रबन्ध-ध्वनि शृंगार ही है। शृंगार को रसराज कहा गया है। 'कामायनी' के काम सर्ग मे मनु की काम-विभोर स्थिति की कितनी सुन्दर व्यंजना की गई है—

"जब लिखते थे तुम सरस हंसी, अपनी फूलो के अंचल में।
अपना कल-कण्ठ मिलाते थे, झरनों के कोमल कल-कल में॥"

शृंगार का स्थायी भाव रति है। रति भाव को उद्दीप्त करने के लिए नारी का सौंदर्य-वर्णन अति आवश्यक है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए

प्रसादजी ने कामायनी में श्रद्धा के सौन्दर्य-वर्णन द्वारा मनु के हृदय में रति का उद्रेक किया है। आधुनिक साहित्य के नारी-सौन्दर्य चित्रण में श्रद्धा का सौन्दर्य अनुपम है—

"घिर रहे थे घुंघराले बाल, अंस अवलम्बित मुख के पास।
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास।"

'कामायनी' का वियोग-शृंगार संयोग-शृंगार की अपेक्षा अधिक मार्मिक है। 'कामायनी' में तीन प्रकार के विप्रलम्भ मिलते हैं—मान, करुण तथा प्रवास। कर्म सर्ग में मनु श्रद्धा के पशु को मार कर यज्ञ करते हैं। इस प्रकार श्रद्धा मान कर बैठती हैं। जहाँ श्रद्धा रूठी हुई मृग-चर्म पर पड़ी है, मनु वहीं जाकर उसे मनाते हैं—

"मधुर विरक्त भरी आकुलता, घिरती हृदय-गगन में।
अन्तर्दाह स्नेह का तब भी, होता था उस उर में।"

करुण विप्रलम्भ का आरम्भ मनु के प्रथम प्रयाण में ही होता है जब वे श्रद्धा से रूठकर इड़ा के पास चले जाते हैं। मनु के उस पलायन के पश्चात् श्रद्धा को मनु से मिलने की आशा बहुत कम रह जाती है। अतः यहाँ श्रद्धा का विरह करुण विप्रलम्भ के अन्तर्गत आयेगा। किन्तु सारस्वत प्रदेश से दूसरी बार मनु का श्रद्धा से छिपकर भागना प्रवास के अन्तर्गत आता है, क्योंकि श्रद्धा विश्वस्त रहती है कि उसकी मनु से पुनः भेंट होगी। इस कारण करुण-विप्रलम्भ में प्रवास विप्रलम्भ की अपेक्षा वेदना की अधिक तीव्रता है। करुण-विप्रलम्भ का आरम्भ 'स्वप्न' सर्ग में ही हो जाता है। इसमें स्मृति, चिन्ता, दैन्य, उद्योग, विषाद, उन्माद आदि सभी विरह-दशाओं का नितान्त मार्मिक वर्णन हुआ है। इसमें पुरानी पद्धति के अनुसार षड्ऋतु वर्णन अथवा कथात्मक पद्धति का अनुसरण नहीं किया गया है। विरह-वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी व्यंजनापूर्ण है। विरह की अभिव्यक्ति में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। देखिए—

"एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली झनकार नहीं,
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक साकार रही।
हरित कुंज की छाया भर थी, वसुधा आलिंगन करती,
वह छोटी-सी विरह नदी थी, जिसका है अब पार नहीं।"

विरही का सुख-दुःख समस्त सृष्टि का सुख-दुःख हो जाता है। उससे समस्त प्रकृति सहानुभूति प्रकट करती है। इसी कारण रामचन्द्र ने भी सीता का पता खग-मृग से पूछा था। मन्दाकिनी से श्रद्धा का सुख-दुःख सम्बन्धी प्रश्न कितना स्वाभाविक है—

"जीवन में सुख अधिक या कि दुःख, मन्दाकिनी कुछ बोलोगी।
नभ से नखत अधिक, सागर में या बुद्बुद हैं गिन दोगी।

प्रतिबिम्बित हैं तारा तुम में, सिन्धु मिलन को जाती हो,
या दोनों प्रतिबिम्ब एक के इस रहस्य को खोलोगी ॥"

युद्ध के सम्बन्ध मे वीर रस के स्थायी भाव उत्साह की कवि ने सुन्दर अभिव्यक्ति की है—

तो फिर मैं हूं आज अकेला जीवन रण में,
प्रकृति और उसके पुतलों के दल भीषण में,
आज साहसिक का पौरुष निज तन पर लेखें,
राजदण्ड को वज्र बना-सा सचमुच देखें।
यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र संभाला,
देव-'आग' ने उगली त्यों ही अपनी ज्वाला ॥"

'कामायनी' में रौद्र रस की भी सच्ची अभिव्यक्ति हुई है। स्वप्न तथा संघर्ष सर्गों में मनु हमारे सामने लोकपीडित के रूप में आते है। शासक तथा शासित दोनों का अत्याचार एक-दूसरे के लिए उद्दीपन का कार्य करता है। दोनों के हृदय में उत्पन्न उग्रता, उत्साह, अमर्ष आदि सचारी भाव हैं। देव-शक्तियो का कोप, शिव का नेत्र खोलना आदि रौद्र रस की तीव्रता को बढ़ा देते हैं।

'कामायनी' में अद्भुत रस केवल दो ही स्थानों पर मिलता है। एक तो शिव के ताण्डव-नृत्य में दूसरे त्रिपुर मिलन मे। किन्तु इसका पूर्ण परिपाक दोनो ही स्थानो पर नहीं हो पाया है।

'कामायनी' मे भयानक रस की अभिव्यक्ति केवल तीन स्थानो पर हुई है—प्रलय-वर्णन मे, युद्ध-वर्णन मे तथा रहस्य सर्ग मे। कवि ने तीनों ही जगह रस की व्यजना कराने का प्रयत्न किया है।

वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति 'कामायनी' मे श्रद्धा, मनु तथा मानव के प्रसंग में मिलती है। यद्यपि अन्य रसो के समान वात्सल्य रस का भी कवि ने सक्षिप्त वर्णन किया है, किन्तु वह अत्यन्त हृदयस्पर्शी हुआ है। श्रद्धा मनु के वियोग से व्यथित होने पर भी जैसे ही 'मानव' की दूरागत किलकारी सुनती है। अपनी सारी विरह-व्यथा को भूलकर उत्सुक हो धूल-धूसरित बालक को गोदी में उठाकर कहती है—

"कहां रहा नटखट तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना।
अरे पिता के प्रतिनिधि, तू ने भी तो सुख दु:ख दिया घना।"

कामायनी की भाषा अत्यन्त लक्षणापूर्ण है। इसके लाक्षणिक प्रयोग स्वाभाविक तथा सुबोध है। अधिकाश लक्षणाओं का आधार या तो मानवीकरण है अथवा प्रतीक पद्धति। ये दोनो ही प्रयोग साम्य के आधार पर होते हैं। कामायनी जैसे लाक्षणिक प्रयोग हिन्दी साहित्य मे विरल है।

लक्षणा का एक उदाहरण देखिये—

"पगली हां सम्हाल ले, कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल।
देख बिखरती है मणिराजी, अरि उठा बेसुध चंचल॥"

प्रसादजी ने विशेषण-विपर्यय का प्रयोग भी किया है। इसमें विशेषण ऐसे विशेष्य के साथ लगा दिया जाता है, जहाँ वास्तव में उसे लगाना नहीं चाहिए जैसे :—

"माधवी निशा की अलसाई, अलकों में लुकते तारा-सी।"

यहाँ अलकों को अलसाई बताया है जो वस्तुतः नहीं होती। व्यक्ति आलस्यपूर्ण होता है, अलकें नहीं।

'कामायनी' की भाषा की दूसरी विशेषता विरोधी शब्दों का प्रयोग है। इस प्रकार के प्रयोग की भाषा की व्यंजकता को बढ़ाते तथा सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं।

मनु चिन्ता को सम्बोधन करके कह रहे हैं—

"अरी व्याधि की सूत्रधारिणी अरि आधी मधुमय अभिशाप।
हृदय-गगन में धूमकेतु सी, पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप।"

अलंकार—प्रसादजी ने कामायनी में अलंकारों का प्रयोग भाषा को अलंकृत करने के उद्देश्य से नहीं किया है, प्रत्युत भावोत्कर्ष के लिये ही किया है। प्रसादजी के सादृश्यमूलक अलंकारों की दो विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं—स्वरूप-बोधक तथा भाव-तीव्रता। जहाँ अमूर्त के लिए मूर्त सादृश्य का प्रयोग है वहाँ कवि का लक्ष्य स्वरूप-बोध कराना है—

"कीर्ति किरन सी नाच रही थी।"

जहाँ मूर्त के लिए अमूर्त सादृश्य प्रयुक्त है वहा भाव-तीव्रता मिलती है—

"जल-संघात विलास-वेग सा बढ़ने लगा।"

कामायनी मे सादृश्य-मूलक अलकारो मे सबसे अधिक प्रयोग उपमा अलंकार का हुआ है। उपमा के चार प्रकार के प्रयोग मिलते है—

मूर्त से मूर्त की उपमा, अमूर्त से अमूर्त की उपमा, अमूर्त से मूर्त की उपमा तथा मूर्त से अमूर्त की उपमा। एक उदाहरण देखिये—

"उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ, कुटिल काल के जालों सी।
चली आ रही फेन उगलती, फन फैलाये व्यालों सी।"

'कामायनी' की भावाभिव्यक्ति मे तीन प्रकार के प्रयोग विशेष रूप से पाये जाते है—प्राचीन, व्यक्तिगत तथा विदेशी। प्रसाद के व्यक्तिगत प्रयोग कामायनी मे अनेक हैं। जैसे—

"चाँदनी-सदृश खुल जाय कहीं अवगुण्ठन आज संवरता-सा ।
जिसमें अनन्त कल्लोल भरा लहरों में मस्त विचरता सा ॥"

'लहरों में मस्त विचरता-सा' प्रसादजी का व्यक्तिगत प्रयोग है । जिस प्रकार 'कामायनी' में लाक्षणिक प्रयोग तथा उपमाएँ भावानुकूल हुई है, उसी प्रकार भाषा प्रसंगवश सरल तथा कठिन हो गई है । जहाँ चिन्तन तथा रहस्य का प्राधान्य है, वहाँ की भाषा कुछ कठिन हो गई है और जहाँ भावों की प्रबलता है, वहाँ भाषा में प्रभाव है । चिन्ता सर्ग की भाषा कुछ कठिन है, देखिए—

"मौन नाश विध्वंश अंधेरा शून्य बना था जो प्रकट अभाव ।
वही सत्य है, अरी अमरते, तुमको यहाँ कहाँ अब ठांव ।"

स्वप्न में मनु को घायल देखकर विरहिणी श्रद्धा के हृदय में भावों का स्रोत उमड़ पड़ता है । उस समय की भाषा देखिये—

"आज पड़ा है वह मुमूर्षु-सा, वह अतीत अब सपना था,
उसके ही सब हुए पराये, सब का ही, जो अपना था ।"

'कामायनी' में लगभग एक दर्जन छन्दों का प्रयोग हुआ है । ये छन्द है—त्राटक, रूपमाला, पादाकुलक, रोला, सार इत्यादि । इसके अतिरिक्त कुछ नये छन्दों का प्रयोग भी है ।

प्रश्न ५—इस कथन पर युक्तियुक्त विचार कीजिए कि "प्रसादजी ने कामायनी में साहित्य और दर्शन का सुन्दर सामंजस्य स्थापित कर आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की है ।"

उत्तर—प्रसादजी आनन्दवादी कवि थे । भारत में आनन्दवाद की धारा प्राचीन काल से कभी तीव्र, कभी मन्दगति से वहती चली आ रही है । अतः प्रसादजी का आनन्दवाद कोई नई अथवा अन्य देशीय वस्तु नहीं । इसी श्रद्धा-मूलक आनन्दवाद को अपनाने पर वर्तमान युग का भी प्रभाव पड़ा है । आज के युग में व्यक्ति किस प्रकार बुद्धि द्वारा प्रताड़ित होकर आनन्द की खोज में भटकता है, यह देखकर कवि व्यथित हो उठता है । बुद्धि द्वारा अनेक प्रकार के आविष्कार कर मनुष्य ने सभी प्रकार के विलास-साधन उपस्थित किये, फिर भी उसकी आत्मा अशान्त ही रही । अतः 'कामायनी' में व्यंग रूप में आधुनिक युग के लिए एक सन्देश भी निहित है ।

'कामायनी' के आनन्दवाद के स्वरूप पर विचार करने से पहले यह देख लेना उचित होगा कि प्रसादजी किस प्रकार के आनन्दवादी कवि है । जीवन में प्रायः दो प्रकार के आनन्दवादी देखने को मिलते है । प्रथम तो वे, जो विकट परिस्थितियों में पड़ने पर तथा अनेक प्रकार के विघ्न-बाधाओं के उपस्थित होने पर विश्व से तटस्थ रहे, उसका कल्याण करते हुए आ

और पुरुष की समरसता। व्यक्ति की समरसता श्रद्धा के जीवन में मिलती है। समरसता के अभाव के कारण सारस्वत प्रदेश का समाज विशृंखल हो जाता है। प्रकृति और मनुष्य की समरसता का रूप हमें आनन्द सर्ग में दिखाई देता है। जीवन के दुःखमय रहने का एकमात्र कारण समरसता का अभाव ही है। ज्ञान, इच्छा और कर्म के समन्वय से ही आनन्द की प्राप्ति सम्भव है। यदि मनुष्य कर्म न करे तो इच्छा की पूर्ति संभव नही और यदि ज्ञान नहीं है, तो उचित कार्य करने में असमर्थ रहेगा। अतः जीवन में तीनो के समन्वय के बिना आनन्द की प्राप्ति सम्भव नही। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि ने तीनों का समन्वय कराया है। प्रसादजी का सामंजस्य विवेक अथवा निवृत्ति पर निर्भर न रह कर श्रद्धा पर टिका है। आनन्द की वह अवस्था विषयातीत होती है। इसके प्राप्त कर लेने पर सभी प्रकार की आकांक्षाओं का अवसान हो जाता है। कवि की दृष्टि में आनन्द ही योग है, आनन्द ही मोक्ष है और आनन्द ही ब्रह्म है। आनन्द से परे कुछ नही है। दर्शन परमात्मा के अस्तित्व अथवा अनस्तित्व की घोषणा तर्क द्वारा करता है। किन्तु प्रसादजी ने उसे अनुभूति का विषय माना है। उन्होंने दर्शन की आध्यात्मिकता को व्यावहारिक रूप दिया है। इस प्रकार कवि ने कामायनी में साहित्य तथा दर्शन का सुन्दर सामंजस्य स्थापित कर आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की है। मनु श्रद्धा, इडा तथा मानव को कैलाश की ओर संकेत करके उस आनन्दलोक का वर्णन करते है, जहा पाप-पुण्य का कुछ भी नही है, सब समरस है—

"अपने दुख-सुख से पुलकित, यह मूर्त विश्व सचराचर,
चिति का विराट वपु मंगल, यह सत्य सतत चिर सुन्दर।"

प्रश्न ६—कामायनी के प्रकृति-चित्रण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

उत्तर—प्रसादजी की कामायनी की अधिकांश कथा प्रकृति की गोद में ही घटित हुई, अतः उसमें प्रसादजी जैसे प्रकृति के पुजारी के लिए अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त अवकाश मिल सका। कल्पना पर पूरा अधिकार होने के कारण प्रकृति पर मानवीय चेष्टाओं का आरोप करने में उन्हें अत्यधिक सफलता मिली है। प्रसाद ने प्रकृति के केवल बाह्य रूप-रंग से सन्तुष्ट न रह कर उसमें आभ्यन्तर में प्रवेश किया है। उन्होंने अनुभव किया कि मानव-आत्मा से लेकर प्रकृति तक में उसी अणी का अंश व्याप्त है। सभी जड चेतन एक ही महाचेतन शक्ति से आबद्ध है। हमारे यहाँ प्रकृति मुख्यतः दो रूपों में आती है—प्रस्तुत अथवा वास्तविक रूप में और अप्रस्तुत अथवा आरोपित रूप में।

प्रस्तुत रूप में प्रकृति-वर्णन वहाँ होता है, जहां वह स्वतः आलम्बन रूप में चित्रित की जाती है। प्रस्तुत वर्णन भी दो प्रकार का होता है। प्रथम

प्रकार में केवल वस्तु-परिगणन होता है और दूसरे में वस्तुओं की संश्लिष्ट योजना रहती है। इन योजनाओं के भी तीन रूप देखे जाते हैं। शुद्ध रूप, भावाक्षिप्त रूप और अलंकृत रूप। शुद्ध रूप मे प्रकृति-वर्णन वहाँ होता है, जहाँ कवि प्रकृति का यथातथ्य चित्रण करता है। उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन नही करता। कामायनी मे इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन कही-कही पर ही मिलते है, जैसे 'आशा' सर्ग में शरत्कालीन वन्य-प्रकृति वर्णन—

"स्वर्ण शालियों की कलमें थी दूर-दूर तक फैल रहीं।"

× × ×

अचल हिमालय का शोभनतम, लता कलित शुचि सानु शरीर॥

कामायनी के पात्रो की परिस्थिति अकित करने वाले भावाक्षिप्त वर्णनों की कमी नही। इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन मे प्रकृति मानव परिस्थितियो से पूर्ण तादात्म्य करती चित्रित की जाती है। कवि श्रद्धा की परिस्थिति अकित करने में पूर्ण सफल हुआ है। वह रात्रि सुन्दर होने पर भी श्रद्धा के लिए कितनी भयावह है, कितनी धूमिल है—

उजले-उजले तारक झलमल प्रतिबिम्बित सरिता वक्षस्थल।
धारा बह जाती बिम्ब अटल खुलता, था धीरे पवन पटल॥

कामायनी मे सर्वप्रथम प्रकृति का प्रलयकारी विराट रूप ही चित्रित किया गया है। कवि का अनुमान है कि देवताओ की वासनामूलक अधोगति को देख कर प्रकृति ने रौद्ररूप धारण किया था। देखिये प्रकृति का प्रलयकारी चित्र—

"पंचभूत का भैरव मिश्रण, शपाओं के शकल-निपात।
उल्का लेकर अमर शक्तियां, खोज रही ज्यों खोया प्रात।"

इस प्रकार प्रसादजी ने 'कामायनी' मे सर्वप्रथम प्रकृति का मानव से संघर्ष दिखलाया है। वह मानव जीवन की रात्रि थी। प्रथम प्रकृति ने मानव को पराजित किया, फिर उसे निर्बल समझ उससे स्नेह किया और अन्त में वह मानव द्वारा स्वय पराजित हुई। अब प्रकृति का वह भयावह रूप नही रहा। वह हसती हुई दृष्टिगत होती है—

"वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का, आज लगा हसने फिर से।
वर्षा बीती हुआ सृष्टि में, शरद् विकास नये सिर से॥"

कवि ने 'आशा' सर्ग म नवविवाहिता रमणी के रूप में प्रकृति के मन [illegible] अत्यन्त मनोरम चित्र खीचा है—

सिन्धु-सेज पर धरा-वधू अब, तनिक संकुचित बैठी सी।
प्रलय [illegible]शा की हलचल स्मृति में, मान किए सी ऐंठी स।

अपार जलराशि मे से निकली थोड़ी-सी पृथ्वी ऐसी प्रतीत होती है, जैसे समुद्र की सेज पर कोई दुलहिन सिकुड़ी हुई बैठी है। प्रथम प्रलय रात्रि मे उसे

जो कष्ट मिला है, उसे याद कर वह उसी प्रकार मान कर बैठी है जिस प्रकार कोई नवविवाहित बाला अपने पति के निष्ठुर व्यवहार पर मान कर लेती है।

प्रसादजी के अप्रस्तुत वर्णन सारूप्य तथा साधर्म्य दोनो ही दृष्टि से उपयुक्त है। यदि प्रसाद का प्रस्तुत और अप्रस्तुत के साम्य द्वारा भावोत्कर्ष देखना हो तो श्रद्धा की मोहक मूर्ति देखिये—

घिर रहे थे घुंघराले बाल, अंस अवलम्बित मुख के पास।
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास॥

कहीं-कहीं तो कवि मानवीय रूप से प्रकृति पर और प्रकृति से फिर अन्य प्रकृति के स्वरूपों तक पहुच जाता है, जैसे—

नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघवन बीच गुलाबी रंग॥

'कामायनी' मे उद्दीपन वर्णनो की प्रधानता है। इसके दो प्रधान कारण है। प्रथम तो, कामायनी के पात्रो का विकास प्रकृति की गोद मे ही होता है। दूसरे, कामायनी मे मानव-वृत्तियो के विश्लेषण की प्रधानता है। आनन्द की अवस्था मे प्रकृति हँसती तथा दु.ख की अवस्था मे रोती प्रतीत होती है—

लतिका घूंघट से चितवन की, वह कुसुम दुग्ध-सी मधुधारा।
प्लावित करती मन अजिर रही, था तुच्छ विश्व-वैभव सारा॥

वियोग-अवस्था मे प्रकृति का उद्दीपन वर्णन प्रसादजी ने विलक्षण ढग से किया है। कामायनी मे विरहिणी श्रद्धा प्रकृति को अपनी भावना के अनुरूप ही पाती है—

नील गगन मे उड़ती-उड़ती विहग बालिका सी किरणें।
स्वप्नलोक को चली थकी-सी नींद सेज पर जा गिरने॥
किन्तु विरहिणी के जीवन में एक घड़ी विश्राम नहीं,
बिजली सी स्मृति चमक उठी तब, लगे जभी तम घन घिरने॥

कामायनी मे अलकृत वर्णन भी बड़े सुन्दर है। वे मोहक तथा रमणीय है। प्रसाद ने रूपक आदि अलकारो का प्रयोग चमत्कार-प्रदर्शन के उद्देश्य से नही किया। वस्तुओ की सश्लिष्ट योजना द्वारा बिम्ब ग्रहण करने की उन्होने चेष्टा की है, जिससे भावोत्कर्ष मे सहायता मिलती है। कामायनी मे अलंकृत वर्णन प्रचुर परिमाण मे मिलते है। उदाहरणार्थ—

नवनील कुंज हैं झीम रहे, कुसुमों की कथा न बन्द हुई।
है अन्तरिक्ष आमोद भरा, हिम कणिका ही मकरन्द हुई॥

प्रसादजी प्रकृति मे किसी अव्यक्त सत्ता का सकेत पाते है। वे मानते है कि अवश्य कोई विराट सत्ता इस ससार की सचालिका है। अद्वैत-भावना के

अनुसार प्रसाद "सर्व खल्विदं ब्रह्म:" के समर्थक हैं। "शरीर त्वहं शम्भो" के अनुसार वे प्रकृति को पुरुष का शरीर मानते हैं। प्रसादजी शैवागमी थे। अतएव वे शक्ति के दो रूप मानते थे—वह आनन्दरूपिणी है तथा स्पन्दन-रूपिणी भी। आनन्द रूप मे वह शिव में लीन रहती है तथा स्पन्दन रूप मे प्रकृति को चेतना सम्पन्न पाते है। कवि का अनुभव है कि प्रकृति के खण्ड-खण्ड में वह अखण्ड समाया हुआ है, अत: सभी उसके प्रति आकृष्ट है और उसकी महानता को नतमस्तक हो स्वीकार करते है—

"महानील इस परम व्योम में अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान,
ग्रह नक्षत्र और विद्युतकण किसका करते हैं सन्धान।
छिप जाते है और निकलते आकर्षण में खिचे हुए,
तृण वीरुध लहलहे हो रहे किसके रस में सिंचे हुए।
सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब स्वीकार यहां,
सदा मौन हो प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ।"

कामायनी के प्रकृति-चित्रण में प्रसादजी ने मानव-भावनाओं का प्रकृति के साथ पूर्ण तादात्म्य किया है। जब किसी व्यक्ति का वर्णन करते है, तो उसमे उन्हे मेघ, बिजली, वृक्ष-लता, वन, पर्वत, कमल, मकरन्द आदि दिखाई देने लगते हैं और जब प्रकृति का चित्रण करते हैं तो उसमे उन्हे प्रभात की लाली में रमणी का हास्य और पुष्प के मकरन्द मे मनुष्य का विकास दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की भावव्यजना के लिए कवि ने चित्रमयी लाक्षणिक भाषा का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए, हिमालय की हँसी, वनस्पतियाँ अलसायी, लहरियां अँगड़ाई, पराग क्रीड़ा, सूखे तरु फिर मुस्काये, लतिका घूँघट आदि कवि की इसी भावना के द्योतक है। कामायनी मे प्रकृति और पुरुष का पूर्ण अभेद दृष्टिगत होता है।

इसके अतिरिक्त कामायनी के प्रकृति-चित्रण की एक विशेषता और है। इसमे देशगत, जातिगत तथा कालगत सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं। प्राकृतिक विभूतियों के कारण ही भारत-भूमि आदि काल से ही गौरवान्वित रही है। हमारे ऋषि-महर्षियो की प्रवृत्ति और निवृत्ति की पीठिका प्रकृति ही थी। कामायनी मे भी मनु के जीवन मे प्रकृति इसी क्रम से आकर मिलती है। मनु के चिन्तन के क्षण तथा क्रीड़ा-काल प्रकृति के प्रांगण मे ही व्यतीत होते हैं तथा उन्हे निर्वाण की प्राप्ति भी प्रकृति की पुनीत गोद मे ही होती है। कामायनी के साध्य समरसताजन्य आनन्द की प्राप्ति भी प्रकृति के प्रांगण मे ही होती है।

प्रश्न ७—कामायनी की ऐतिहासिकता पर विचार कीजिए।

उत्तर—बिना कथानक के किसी महाकाव्य की कल्पना असम्भव ही है। कथानक ऐतिहासिक या काल्पनिक किसी भी प्रकार का हो सकता है।

कामायनी के कवि ने सृष्टि के आरम्भ की कथा अपने काव्य के लिए चुनी है। कथानक का चुनाव करते समय कवि के हृदय में यह आशंका स्वयं ही जागृत हो उठी है कि इस युग के पाठक के मस्तिष्क में अवश्य ही इस कथानक के विषय में प्रश्नवाचक चिह्न लगेगा। इसी से उसने अपने ग्रन्थ की भूमिका में उपनिषद्, पुराण आदि के प्रमाण देकर यह समाधान उपस्थित कर दिया कि वह इसे सच्चे अर्थों में ऐतिहासिक कथानक मानता है। कथा का उद्घाटन करते समय कवि को अपनी कल्पना का प्रयोग का जो अधिकार प्राप्त है, उसका उसने पूर्ण उपयोग किया है, इसमें सन्देह नहीं।

आज के दृष्टिकोण से 'कामायनी' का कथानक ऐतिहासिक नहीं है, क्योंकि उसकी कथा प्रागैतिहासिक काल की है। सारे भारतीय वाङ्मय का इतिहास मान लेने पर ही इसके कथानक को ऐतिहासिक कहा जा सकता है और ऐसा मानना उचित भी है।

कामायनी के अधिकांश कथानक के आधार पुराण हैं। पाश्चात्य विद्वान् पार्जिटर ने पुराणों का गम्भीर अध्ययन किया था और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि पुराण इतिहास ही हैं। वे कहते हैं कि पुराणों में क्षत्रिय राजाओं के चरित्र तथा कार्य-कलापों का वर्णन है, यद्यपि उनमें राजाओं की वंशावलियों तथा घटनाओं का क्रमबद्ध रूप नहीं है। मनु की कथा भिन्न-भिन्न पुराणों में, भिन्न-भिन्न रूपों में मिलती है। पुराणों में सबसे अधिक मनु का ही नाम पाया जाता है। अतः प्रतीत होता है कि वह अपने समय का सबसे बड़ा राजा था। पुराणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आदि क्षत्रिय वंश तीन हैं—सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा रघुवंश। इन तीनों वंशों के मूल मनु ही हैं। पुराणों में मनु के दस पुत्रों का उल्लेख है। (कामायनी में इनके एक ही पुत्र सर्यात या मानव का उल्लेख है।)

वास्तव में पुराणों में भारतीय इतिहास के मूल पुरुष मनु ही हैं। प्रसादजी ने पुराणों को प्रागैतिहासिक नहीं, अपितु ऐतिहासिक ही माना है तथा वे मनु को इतिहास का प्रथम पुरुष मानते हैं। उन्होंने कामायनी के 'आमुख' में कहा है—'जलप्लावन' भारतीय इतिहास की एक ऐसी प्राचीन घटना है, जिसने मनु को देवों से विलक्षण, मानवों की एक भिन्न संस्कृति प्रतिष्ठित करने का अवसर दिया, वह इतिहास ही है। 'मानवे वै प्रातः' इत्यादि से घटना का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण के आठवें अध्याय में मिलता है। देवगण के उच्छृंखल स्वभाव, निर्बाध आत्मतुष्टि में अन्तिम अध्याय लगा और मानवीय भाव अर्थात् श्रद्धा और मनन का समन्वय होकर प्राणी को एक नये युग की सूचना मिली। इस मन्वन्तर के प्रवर्तक मनु हुए। मनु भारतीय इतिहास के आदि पुरुष हैं।

कामायनी के मूलाधार ग्रन्थ ऋग्वेद. पुराण तथा शतपथ ब्राह्मण हैं। कामायनी के मुख्य पात्र श्रद्धा, मनु तथा इडा की कथाए अक्रम, असम्बद्ध तथा बिखरी हुई मिलती है। उनमे किसी निष्कर्ष पर पहुचना कठिन हो जाता है। जल-प्लावन की कथा, देव-सृष्टि-वर्णन, श्रद्धा, मनु की प्रणय-कथा थोड़े से उलट-फेर के साथ विष्णु-पुराण, पद्म-पुराण, वायु-पुराण, अग्नि-पुराण, मार्कण्डेय-पुराण, मत्स्य-पुराण, देवी भागवत-पुराण तथा श्रीमदभाग॰॰त आदि में मिलती है। छान्दोग्योपनिषद् तथा त्रिपुर रहस्य मे श्रद्धा की भावमूलक विवेचना की गई है। कामायनी के अन्तिम तीन सर्गों की रचना करने के लिए कितने ही ग्रन्थों का मथन करना पडा था। उन्होने यत्र-तत्र बिखरी घटनाओ को शृंखलित कर कथा को एकरूपता दी तथा उसे काव्यात्मक बनाया।

'कामायनी' के पूर्व भाग की प्राय सभी घटनाएँ ऐतिहासिक है। कामायनी का प्रारम्भ जलप्लावन से होता है। इस घटना का वर्णन हमारे पुराणो तथा धार्मिक ग्रन्थों में ही नही मिलता, प्रत्युत ईसाई, इस्लामी, यहूदी आदि धर्म-ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि यह घटना सत्य है तथा अति प्राचीन है। कामायनी मे जलप्लावन का वर्णन शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड के आठवे अध्याय के आधार पर हुआ है। शतपथ में बताया गया है कि मनु की नाव मत्स्य के पख से बन्ध कर हिमालय प्रदेश में पहुंची थी, किन्तु प्रसादजी की कामायनी में मत्स्य के चपेटे से नाव का हिमवान् पर पहँचना बताते हैं। उनके इस परिवर्तन से ऐतिहासिकता की रक्षा के साथ ही वास्तविकता का भी समावेश हो जाता है। जल-प्लावन कम हो जाने पर मनु जिस स्थान पर उतरे थे, उसका नाम मनोरवसर्पण है। वह स्थान आज पर्यन्त इसी नाम से प्रसिद्ध है। जल-प्रवाह कम होने पर मनु यज्ञ आरम्भ करते हैं। इसका उल्लेख शतपथ के प्रथम काण्ड के पाँचवे अध्याय में है। शतपथ में लिखा है कि यज्ञ के बचे अन्न को मनु एक स्थान पर रख आते थे, उसी अन्न को देखकर श्रद्धा उनके पास आई थी, किन्तु कामायनी मे मनु के द्वारा प्रक्षिप्त अन्न को देखकर श्रद्धा उनके पास आती है। प्रसादजी ने यहाँ थोड़ा परिवर्तन अवश्य कर दिया है, परन्तु इससे उसकी ऐतिहासिकता पर कोई आघात नही पहुँचता। कामायनी में शतपथ के आधार पर ही किलात-अकुली असुरो द्वारा मनु से पशु यज्ञ कराया गया है।

इडा तथा मनु की बातचीत, इड़ा का मनु को उनकी पुत्री बताना, मनु का उसके प्रति आकृष्ट होकर स्वच्छन्द प्रेम स्थापित करने का प्रयत्न, फलतः देवताओ का कोप और मनु का दण्ड पाना आदि शतपथ ब्राह्मण के अनुसार है। सारस्वत प्रदेश मे इड़ा का मनु की पथ प्रदर्शिका होना, 'ऋग्वेद' के आधार पर है। श्रद्धा का मातृ-गृह निर्माण, तकली कातना, दिनचर्या, पशु-पालन,

मनु द्वारा पशु को बलि दे देने पर मान करना, ऊन की पट्टी बुनना आदि कुछ घटनाएँ कवि-कल्पित है, किन्तु इन घटनाओ के समावेश से इसकी ऐतिहासिकता मे किसी प्रकार का आघात नही पहुचने पाया है। मनु का पुत्र-प्रेम से ईर्ष्यालु होकर भाग जाना भी कल्पित ही है। इस प्रकार की कुछ बातों को छोड़कर कामायनी के पूर्व भाग की प्रायः सभी घटनाएँ ऐतिहासिक है।

कामायनी के उत्तर भाग की अधिकांश घटनाएँ कवि-कल्पित है। श्रद्धा का स्वप्न देखकर मनु के निकट जाना, वहाँ श्रद्धा, मनु, कुमार तथा इड़ा का वार्तालाप, मनु का ग्लानिवश भाग जाना, श्रद्धा का मनु की खोज मे पुनः जाना, दोनो का पुनः मिलन और कैलाश पर जाकर रहना, इडा का मानव और नगरवासियो के साथ कैलाश पहुंचना आदि कवि-कल्पित हैं। प्रसादजी ने इन सभी कल्पित घटनाओ का समावेश हृदय तक पहुचने तथा काव्य में एक-रूपता लाने की ही दृष्टि से किया। ऐतिहासिक घटनाओ मे कल्पित घटनाओं का मिश्रण करके भी प्रसादजी ने ऐतिहासिक वातावरण की पूर्णतः रक्षा की है।

इतिहास व्यक्ति की अभिव्यक्ति करता है, तो काव्य व्यक्ति द्वारा जाति की। इतिहास मे श्रद्धा व्यक्ति ही है, किन्तु काव्य मे वह नारी जाति का प्रतिनिधित्व कर रही है। पुराणो की श्रद्धा मे नारीत्व का विकास नही मिलता, वह एक साधारण-सी स्त्री के रूप में ही हमारे समक्ष आती है। श्रद्धा के व्यक्तित्व का विकास दिखाने के उद्देश्य से कवि को घटनाओ का क्रम बदलना पडा है। जहाँ कवि की अपनी कल्पना भी कार्य करती दृष्टिगत होती है। श्रद्धा का मनु को आत्म-समर्पण कवि की अपनी कल्पना है। जहाँ श्रद्धा नारीत्व के सभी गुण—सेवा, दया, माया, ममता, त्याग, करुणा आदि से परिपूर्ण है। श्रद्धा भारतीय इतिहास की अनुपम नारी है। इस प्रकार के भव्य नारीत्व की दृष्टि कवि की कल्पना द्वारा सम्भव हो सकी है।

'कामायनी' मे वेद-पुराणों मे अकित श्रद्धा के सतीस्वरूप की रक्षा मे कवि का सफल प्रयास रहा है। शतपथ मे मनु के असत-चरित्र के कारण देवता उस पर कोप करते हैं। कामायनी के मनु केवल देवताओ के ही कोप-भाजन नही बनते, अपितु समस्त प्रजा भी क्रोधवेश मे उन्हें घायल कर देती है। इस प्रकार कवि ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करते हुए उसमे परिवर्तन भी करता रहता है।

कवि को केवल ऐतिहासिक घटनाओ की ही रक्षा नही करनी पड़ती, उसके लिये पात्रों का ऐतिहासिक व्यक्तित्व बनाये रखना भी अनिवार्य होता है। वेदो तथा पुराणो मे मनु के दो व्यक्तित्व हमारे समक्ष आते है, एक तो स्मृतिकार मनु का व्यक्तित्व और दूसरे मानव-सृष्टि के निर्माता मनु का व्यक्तित्व। प्रसादजी ने मनु को दोनो ही प्रकार के व्यक्तित्वो की रक्षा सुन्दर

ढंग से की है। कामायनी में देव-सृष्टि के विध्वंस के पश्चात् मनु को मानव-सृष्टि का प्रवर्त्तक दिखाया गया है। सारस्वत देश मे कवि ने मनु को नियामक बनाकर उनके स्मृतिकार के रूप को व्यक्त किया है। ऋग्वेद, शतपथ तथा पुराणों में श्रद्धा एक भव्य तथा विश्वासमयी नारी के रूप में चित्रित की गई है। त्रिपुर-रहस्य तथा छान्दोग्योपनिषद मे भी श्रद्धा की भावमूलक व्याख्या ही अधिक पाई जाती है। प्रसादजी ने कामायनी मे श्रद्धा के इसी व्यक्तित्व को विशद मे अंकित किया है। स्त्री-जाति की सेवा, दया, माया, त्याग, करुणा सभी विशेषताओं की मानो वह प्रतीक है। ऋग्वेद मे इडा को मनु की पथ-प्रदर्शिका कहा गया है। शतपथ में भी इडा द्वारा मनु को यज्ञ मे अतुल सम्पत्ति मिली। कामायनी मे भी कवि ने उसके व्यक्तित्व की रक्षा के लिये ही उसे सारस्वत प्रदेश मे मनु की पथ-प्रदर्शिका बनाया है। मनु को सारस्वत प्रदेश का शासक बना देने से अतुल सम्पत्ति की भी प्राप्ति होती है। पशु-यज्ञ में किलात, आकुली को पुरोहित बनाना शतपथ के आधार पर है। कामायनी मे इडा, श्रद्धा, मनु, किलात, आकुली तथा मानव (सर्याती) यह छह ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। कवि को यद्यपि विशृंखल घटनाओं को कथानक रूप देने के लिए थोड़ा उलट-फेर करना पडा है, किन्तु इससे किसी भी ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर आघात नही पहुंचने पाया।

किसी भी ऐतिहासिक रचना मे केवल ऐतिहासिक घटना और पात्र के व्यक्तित्व की रक्षा ही आवश्यक नही होती, उस रचना मे ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि भी अनिवार्य होती है। तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि के लिए कलाकार को उसकी सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक सभी परिस्थितियो को अंकित करना पडता है। उसे उस काल की सभ्यता, शिक्षा तथा आचार-विचार आदि को भी दिखाना पडता है। प्रसादजी कामायनी मे ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि करने मे सफल रहे है।

उस युग में मनुष्य फूस की झोपडी बनाकर रहते थे। कुछ हड्डी या पत्थर के अस्त्र-शस्त्र काम मे लाते थे। पशु-पालन और कृषि भी करते थे। 'कामायनी' मे इस वातावरण की कवि ने सफल अभिव्यक्ति की है। श्रद्धा तथा मनु पुआल की छाजन का एक घर बनाकर रहते है। श्रद्धा ऊन की पट्टियाँ बुनती है तथा पशु-पालन भी करती है। मनु मृगया के लिए जाते है तथा अन्न से यज्ञ भी करते है।

'कामायनी' मे ऐतिहासिकता के साथ ही रूपक-तत्त्व का समावेश हुआ है। इसमे श्रद्धा, मनु तथा इडा के जीवन से हम भावात्मक संदेश मिल जाते है। यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास मे रूपक का भी अद्भुत मिश्रण हो गया है। इसलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक

अस्तित्व रखते हुए साकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करे तो कोई आपत्ति नही है। मनु अर्थात् मन के दोनो पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है। इस प्रकार कामायनी की कथा एक ओर तो देव-सृष्टि के विध्वंस के पश्चात् एक नवीन मानव-सस्कृति की प्रतिष्ठा करती है और दूसरी ओर मन के दोनों पक्षो—हृदय और मस्तिष्क—का सघर्ष भी उपस्थित करती है। अन्त मे कवि हृदय-पक्ष की विजय दिखाकर अखण्ड आनन्द की स्थापना करता है। मनु के जीवन से कवि ने व्यक्त किया है कि बुद्धिवाद में पडकर मनुष्य का जीवन सदैव उलझन मे पडा रहता है। जब उसके हृदय में प्रेम, उदारता आदि उदात्त भावनाओं का आविर्भाव होता है, तभी उसे शान्ति मिलती है। अतः स्पष्ट है कि प्रसादजी का झुकाव इतिहास के भौतिक तत्त्वो की ओर उतना नही है, जितना मनोविज्ञान की ओर। सम्भवतः प्रसादजी ने कामायनी की सृष्टि कुछ उद्देश्यो की पूर्ति के लिए ही की। वे उद्देश्य हैं—मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा ऐतिहासिक।

प्रसादजी इतिहास के भौतिक रूप को उतना महत्त्व नही देते थे, जितना उसके मनोवैज्ञानिक रूप को। इसी कारण कामायनी मे उनका मन घटनाओ के वर्णन मे उतना नही लगा, जितना मानसिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण मे। प्रसादजी का विश्वास है कि किसी भी देश की संस्कृति युग-युग की तपस्या का फल है। अत. उस देश का हित उसे अपनाने मे ही है। तभी वे भारतीय सस्कृति के मूल सिद्धान्तों का उद्घाटन यत्र-तत्र करते है। वे पुराणो मे भी इतिहास का अस्तित्व स्वीकार करते है। उन्हें यह बात सत्य नही लगती कि प्राचीन भारत का इतिहास नही मिलता अथवा वेद, पुराण, प्रागैतिहासिक हैं। उन्होने वेदो, पुराणो तथा उपनिषदो के कथानको को शृंखलाबद्ध कर तर्क, युक्ति तथा प्रमाण द्वारा ऐतिहासिक सिद्ध किया है। साथ ही प्रसादजी ने इस बात को भी स्पष्ट किया है कि भारतीय इतिहास की प्रवृत्ति आरम्भ से ही आदर्शोन्मुख रही है। इस दृष्टि मे 'कामायनी' की ऐतिहासिक भित्ति दार्शनिक भूमि पर खड़ी है। उनकी दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाओ तथा पात्रो का उतना मूल्य नही है जितना युग-युग से उनके हृदय मे छिपी आत्मानुभूति का। दार्शनिक इसे ही चिरन्तन सत्य के नाम से पुकारते है। प्रसादजी का अधिकांश जीवन इसी चिरन्तन सत्य की खोज मे व्यतीत हुआ था। इसी कारण उनकी अन्तिम कृति कामायनी में दर्शन का विकास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर तथा इतिहास का विकास दर्शन की पृष्ठभूमि पर हुआ है।

१. चिन्ता-सर्ग

कथासार—कविवर प्रसाद ने कामायनी की कथावस्तु का श्रीगणेश जल-प्लावन (खंड-प्रलय) के अनन्तर मानवों के आदि-पूर्वज वैवस्वत मनु की चिन्ता-मग्न दशा के अंकन से किया है। उनकी नौका महामत्स्य के प्रबल चपेटे के कारण हिमालय की उत्तुंग चोटी से आ लगी है, जिससे उनकी प्राण-रक्षा हो जाती है। वे अपनी नाव को महावट मे बाँध देते है और वैभव-विलास एवं समृद्धि की दृष्टि से चरमोत्कर्ष को पहुँची देवजाति की विनाश लीला के विषय में विचारमग्न हो उठते है। उनके हृदय मे यह भाव जाग्रत होता है कि देव-जाति अपने विनाश के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है, क्योकि उसने विलासिता की अति कर दी थी तथा वह अत्यधिक दम्भी हो चुकी थी। देवजाति का दम्भ ही उसके विनाश का मूल कारण रहा है। विलासिता में मग्न देव दुर्जेय प्रकृति पर विजय प्राप्त नही कर सके और उसके द्वारा परास्त-विनष्ट कर दिए गए है।

मनु देवजाति के विषय में जितना ही अधिक सोचते है, उनका मन उतनी ही अधिक खिन्नता और अवसाद से युक्त होता जाता है। उनके मनश्चक्षुओं के समक्ष देवों की कामोपासना मूर्तिमंत हो उठती है। देवों के उस उन्मत्त विलास को, उनकी उस सुख-विभावरी को वे स्वप्न अथवा छलना के समान मिथ्या मानने लगते हैं। उन्हें प्रतीत होने लगता है कि देवो का सुरांगनाओं के मधुमय निःश्वासों से संचालित सुख-समृद्धि एवं वैभव-विलास का आगार तथा कीर्ति, दीप्ति और शोभाशाली जीवन—अपने विनाश का स्वयं ही कारण रहा है। देवो के उन्मत्त उच्छृंखल जीवन के कारण सृष्टि ही विशृंखलित हो उठी थी और उसीके फलस्वरूप सृष्टि पर भयंकर आपदाओ की ऐसी वृष्टि हुई है, जिसने उनकी वासना-सरिता को प्रलय-समुद्र में मिला दिया है—उनका सर्वनाश कर दिया है। सम्प्रति सृष्टि मे वसंत का स्थान शिशिर ने (पतझड ने) ग्रहण कर लिया है। देव और देवांगनाओ के प्रेमालिंगन, चुम्बन, अभिसार आदि समस्त विलास क्रीड़ाएं तिरोहित हो गयी है। वे सोचते है कि देव-यज्ञों में अगणित पशुओं का जो बलिदान किया जाता था, उस नृशंस हत्याकांड के कारण ही ऐसी प्रलयंकर वर्षा हुई है कि उसमें समस्त देवजाति डूबकर विनष्ट हो गयी है।

मनु ने अनुभव किया कि अमरता के स्थान पर मृत्यु ही सत्य है, और जीवन उसका एक छोटा-सा अंश मात्र है। जीवन नश्वर है अतः उस पर गर्व करना सर्वथा मिथ्या है। मनु देव-सृष्टि के विनाश के विषय मे इसी प्रकार चिन्तन-ग्रस्त थे, जबकि जल-प्लावन का पानी शनैः-शनैः भाप बनकर उड़ता जा रहा था तथा सूर्य-मंडल के प्रतिभासित होने के कारण प्रलयकालीन रात्रि का स्थान सुनहरा प्रभात लेता जा रहा था।

व्याख्या-भाग

"हिमगिरि के उत्तुंग········जड़ या चेतन।"

शब्दार्थ—उत्तुंग=ऊँची। शिखर=चोटी। प्रलय-प्रवाह=प्रलयकालीन जलराशि। सघन=ठोस। तरल=बहने वाला।

संदर्भ—प्रस्तुत चतुष्पदियाँ छायावादी काल की सर्वोत्तम विभूति कविवर प्रसाद विरचित बहुचर्चित महाकाव्य कामायनी की आरंभिक पंक्तियां है। संदर्भ-गत पंक्तियों में उन्होने खंड-प्रलय की परवर्ती उस अवस्था का वर्णन किया है, जिसमे मनु जीवित बच जाते है और उनकी नौका मत्स्य के चपेटे के फलस्वरूप हिमालय पर्वत की चोटी से आ टकराती है।

भावार्थ—अपनी सर्वोत्तम काव्यसृष्टि कामायनी का श्रीगणेश करते हुए कविवर प्रसाद कहते है कि हिमालय पर्वत की एक ऊँची चोटी की सुशीतल छाया मे (चोटी बर्फ से ढँकी हुई थी, अतः कवि ने उसकी छाया को शीतल कहा है। वैसे छाया स्वभावतः शीतल हुआ ही करती है) एक पुरुष अर्थात् मानव-जाति के आदि पुरुष मनु बैठे हुए, अश्रुस्नात नेत्रों से उस प्रलयकालीन जलराशि पर दृष्टिपात कर रहे थे, जो उनके चतुर्दिक् परिव्याप्त थी। अभिप्राय यह है कि मनु हिमालय पर्वत की ऊँची चोटी की शीतल छाया मे बैठे हुए डब-डबाए नेत्रो से उस जलराशि को देख रहे थे, जिसने उनके समस्त परिजनो का संहार कर दिया था।

द्वितीय चतुष्पदी में कवि ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि उस समय चतुर्दिक् एक ही तत्त्व अपने द्रव और ठोस रूप मे परिव्याप्त था। उसके अनुसार जिस स्थल पर मनु बैठे हुए थे उसके नीचे की ओर जल भरा हुआ था जबकि उनके ऊपर की ओर भी जल का ही ठोस रूप अर्थात् बर्फ विद्यमान थी। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि उस समय जल तत्त्व ही चतुर्दिक् विद्यमान था ("क्षिति जल पावक गगन समीरा" के अनुसार सृष्टि तथा मानव शरीर की रचना के पाँच तत्त्वों में से जल भी एक तत्त्व है)। प्रसादजी की

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में अडिग आस्था थी। उसके प्रकाश मे इस चतुष्पदी का यह अर्थ समीचीन है कि मनु के ऊपर-नीचे एक ही तत्त्व अर्थात् परम ब्रह्म या शिव तत्त्व की जड़ और चेतन रूप मे सत्ता थी। भाव यह है कि प्रवाहमान जल को चेतन तथा जमकर वर्फ बने जल को जड़ कहा जा सकता था किन्तु मूलतः वे एक ही परम तत्त्व अर्थात् परम ब्रह्म के दो रूप थे, क्योंकि विश्व मे एक ही ब्रह्म या शिव तत्त्व जड़ और चेतन नाना रूपों में प्रतिभासित होता है।

विशेष—(१) **छंद**—प्रस्तुत पंक्तियों में १६ और १४ मात्राओ के ताटंक छंद का प्रयोग किया गया है।

(२) **अलंकार**—पांचवी छठी पंक्तियों में यथासंख्य अलंकार हैं।

(३) 'चिन्ता' सर्ग के आरम्भिक छंदों में कवि ने सृष्टि मे सर्वत्र जल और हिम की व्याप्ति दिखाकर ऐसी पृष्ठभूमि की सफल योजना की है, जिससे चिन्ता नामक मनोवेग का उदय पूर्णतया स्वाभाविक प्रतीत होता है।

"दूर-दूर तक............फिरता पवमान।"

शब्दार्थ—विस्तृत=फैला हुआ, व्याप्त। स्तब्ध=शान्त, निश्चल। नीरवता =पूर्ण शान्ति, मूक। शिला-चरण=पहाड़ी का निचला भाग। पवमान=पवन, वायु।

भावार्थ—हिमालय की उत्तुंग चोटी पर बैठे उस पुरुष (मनु) के इतस्ततः सर्वत्र वर्फ-ही-वर्फ फैली हुई थी, जो उसी प्रकार शान्त-स्तब्ध थी, जिस प्रकार उस पुरुष का हृदय विषादाधिक्य के कारण निश्चल और जड़ीभूत-सा था। सभी प्रकार की हलचलों से शून्य पर्वत-शिला से, जो नीरवता की साकार प्रतिमा जैसी प्रतीत हो रही थी, पवन अवश्य बार-बार टकराकर कुछ ध्वनि उत्पन्न कर रहा था।

विशेष—(१) हिमालय की उत्तुंग चोटियों पर छाई हुई नीरवता का कवि ने बड़े उपयुक्त उपमानों द्वारा चित्रांकन किया है।

(२) पवन को पर्वत-चरणों से टकराते दिखाने में इस वैज्ञानिक तथ्य की विवृत्ति (उद्घाटन) मिलती है कि नमी के कारण वायु पर्वतों के निचले भाग में ही चला करती है।

(३) प्रकृति का मानवीकरण किया गया है।

(४) **अलंकार**—प्रथम दो पंक्तियों में प्रतीप (प्रथम) तथा अंतिम दो पंक्तियों मे धर्मलुप्तोपमा अलंकार है।

(५) मूर्त उपमेयो के लिए अमूर्त उपमानो की योजना छायावादी शैली की उल्लेखनीय विशेषता है, जिसका प्रस्तुत पंक्तियों में भी निर्वाह मिलता है।

"तरुण तपस्वी-सा............सकरुण अवसान।"

शब्दार्थ—तरुण=युवक, अपरिपक्व बुद्धि। साधन करता=साधना कर रहा था। सुर-श्मशान=देवो की निवासस्थली हिमालय सम्प्रति देवों का श्मशान बन चुकी थी, क्योंकि वे विनष्ट हो चुके थे। श्मशान-साधन करना=किसी इच्छित सिद्धि की कामना से श्मशान भूमि में रहकर भूत-प्रेत, काली आदि को प्रसन्न करने के लिए तांत्रिक पद्धति से साधना करना। प्रलय सिन्धु=प्रलय-कालीन जल जो समुद्र के समान फैला हुआ था। सकरुण=दयापूर्वक। अवसान =अन्त।

भावार्थ—हिमालय की उत्तुग चोटी पर बैठा हुआ वह पुरुष आयु की दृष्टि से युवक था, और सम्प्रति देवों की श्मशान-भूमि बने हिमालय पर्वत पर तपस्वियों के समान साधना-सी करता प्रतीत हो रहा था। उसे देखकर ऐसा आभास होता था मानो वह किसी लक्ष्य-सिद्धि की कामना से ध्यानावस्थित मुद्रा में बैठा हुआ साधना कर रहा है। हिमालय पर्वत की जिस श्रेणी (चोटी) पर वह युवक बैठा हुआ था, उसके निम्न भाग से अब भी प्रलयकालीन जल की लहरे टकरा रही थी, किन्तु उन लहरो मे अब औद्धत्य के स्थान पर कारुणिकता का सचार हो चुका था। अत. वे उस पर्वतशिला से मन्द गति से ही टकरा रही थी—भाव यह है कि उन लहरो मे अब विनाश के स्थान पर नवजीवन का संदेश अंतर्हित प्रतीत होता था।

विशेष—(१) मनु की उपमा तपस्वी से देने का मूलोद्देश्य उनकी चिन्ता-मग्न स्तब्ध दशा की ओर इंगित करने से है।

(२) लहरों के 'सकरुण अवसान' के द्वारा कवि इस ओर इंगित करता है कि अब प्रलयकालीन जल-ज्वार उतार पर था।

(३) अलंकार—मनु के लिए 'तरुण' विशेषण का साभिप्राय प्रयोग करने के कारण अर्थात् उनके विचारो को अपरिपक्व बताने के कारण परिकर अलंकार है।

(४) 'तरुण तपस्वी-सा वह' मे उपमा, 'तरुण......श्मशान' मे हेतुत्प्रेक्षा, तथा 'नीचे......अवसान' मे मानवीकरण अलंकार है।

"उसी तपस्वी-से.........ठिठुर रहे अड़े।"

शब्दार्थ—हिम-धवल=बर्फ पडने के कारण श्वेत, हिम-स्नात। देवदारु= हिमालय पर उत्पन्न होने वाले लम्बे वृक्ष। ठिठुरे=अकडे हुए। दो चार= ...े से।

भावार्थ—हिमालय के उत्तुग शिखर पर बैठे हुए उस युवक के समान ही

लम्बे कुछ देवदारु के वृक्ष खड़े हुए थे। हिम-वर्षा के कारण वे चारो ओर से अर्थात् तने, शाखाओं और पत्तों सहित वर्फ से ढके हुए थे, अतः श्वेत रंग के दृष्टिगत होते थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो वे शीताधिक्य के कारण अकड़ गये है और इसीलिए पत्थरों के समान अकड़े हुए से स्तब्ध खड़े हुए है।

विशेष—(१) देवदारू के लम्बे वृक्षों से मनु की समता करके कवि ने उनकी शारीरिक लम्बाई कुछ अधिक होने की ओर संकेत किया है।

(२) वर्फ से ढके देवदारू-वृक्षों के उल्लेख से इस तथ्य का परिज्ञान होता है कि वातावरण अत्यधिक शीत प्रधान था। वृक्षों को भी अकड़ा देने वाले शीत को सहन करने वाले मनु की भी इस प्रशंसनीय शारीरिक क्षमता का पता चलता है कि उन्होने प्रलयकालीन आघातों को ही सहन नही किया था, वरन् अतीव शीत को सहन करते हुए भी जीवित बचे हुए थे।

(३) **अलंकार**—प्रथम दो पंक्तियो में प्रतीप तथा अंतिम दो पंक्तियों में उत्प्रेक्षा अलंकार है। प्रकृति पर मानव भावनाओं का आरोप होने के कारण मानवीकरण अलंकार भी है।

"अवयव की दृढ़··· ·····जिनमें संचार।"

शब्दार्थ—अवयव=शारीरिक गठन, शरीर के अंग। मांसपेशियां=त्वचा के नीचे परस्पर जुडे हुए मास-पिड (Muscles)। ऊर्जस्वित=उमड़ा हुआ। स्फीत=पुष्ट, उभरी हुई। शिराएँ=रक्तवाहिनी नलिकाएँ। स्वस्थ-रक्त=शुद्ध रक्त। संचार=आवागमन, संचरण।

भावार्थ—मनु दीर्घकाय ही नहीं थे, अपितु उनके अंग-प्रत्यंग अत्यधिक सुदृढ़-पुष्ट मांसपेशियों से विनिर्मित थे। उन्होंने ब्रह्मचर्य का भी निष्ठापूर्वक पालन किया था, यही कारण था कि उनके ललाट आदि अंगों से वीर्य-तेज उमड़ा पड़ रहा था—उनके अगो से वीर्य का तेज फूटा पड़ रहा था। उनके शरीर की रक्तवाहिनी शिरायें (नसें नलिकाएँ) उभरी हुई थीं जिनमें शुद्ध रक्त संचरणशील रहता था।

विशेष—(१) मनु की इस आकृति-वर्णन के माध्यम से प्रसादजी ने आदर्श आर्य वीरों की आकृति का वर्णन प्रस्तुत कर दिया है। महाकवि कालिदास ने भी महाराज दिलीप का आकृति-वर्णन करते हुए कहा है—

**"व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः।"**

(२) इन पंक्तियों से मनु की शारीरिक दृढ़ता, ब्रह्मचर्य-पालन तथा नीरोगता का परिचय मिल जाता है।

"चिन्ता कातर······मधुमय स्रोत ।"

शब्दार्थ—चिन्ता-कातर=चिन्ता से व्याकुल । वदन=मुख । पौरुप=पुरुषार्थ, कर्मठता । उपेक्षामय=अनादृत, अवहेलित । ओत-प्रोत=युक्त । मधुमय=मधुर, उन्मादक । स्रोत=प्रवाह ।

भावार्थ—मनु की मुखाकृति पर चिन्ता और विषादो की मलिन छाया व्याप्त तो थी, तथापि इस पर उनका पुरुषार्थ भी झलक रहा था—चिन्ताकुल होते हुए भी वे कर्मठता की प्रतिमा प्रतीत होते थे और उनका मुख ओजपूर्ण था। उन्होने अपनी युवावस्था को उपेक्षित-अनादृत ही कर रखा था तथापि यौवनावस्था की मधुर-उन्मादक भावनाएँ उनके हृदय मे गुदगुदी उत्पन्न करती रहती थी—उनके अंतर्मन में नवयुवकोचित रंगीन कल्पनाएँ तो उत्पन्न होती रहती थी, किन्तु वे उनकी ओर ध्यान नही देते थे ।

विशेष—(१) डॉ० गुलाबराय का इस विषय मे कथन है, "मनु जिस रूप में हिमगिरि पर दिखाई देते हैं वह चिन्ताकुल होने पर भी पूर्णतया स्वस्थ और पौरुपमय है। मनु का जैसा स्वस्थ पुरुप-सौंदर्य प्रसादजी ने अंकित किया है, वैसा अन्यत्र वहुत कम देखने को मिलता है।"

(२) मनु ने अपनी युवावस्था की उपेक्षा तो कर रखी थी, किन्तु उसकी रंगीन एवं उन्मादक कामनाएँ जब-तब झलक मारती ही रहती थी।

'बँधी महावट········निकलने लगी मही ।"

शब्दार्थ—महावट=बरगद का विशाल वृक्ष । नौका=नाव । जल-प्लावन=प्रलयकालीन अपार जल । मही=पृथ्वी ।

भावार्थ—मनु की जीवन-रक्षिणी नौका जिसे उन्होने जल-प्लावन के समय विशाल वट-वृक्ष से बाँध दिया था, अव शुष्क पृथ्वी पर पडी हुई थी। कारण यह था कि अव प्रलयकालीन बाढ उतार पर थी जिससे शनैः-शनैः पृथ्वी के ऊँचे भाग जलमुक्त होने लगे थे।

विशेष—प्रसादजी की इन पंक्तियों का आधार शतपथ ब्राह्मण की यह उक्ति—'वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व' रही है अन्यथा महाभारत मे तो मनु द्वारा अपनी नाव को पर्वत-शिखर से बाँधने का उल्लेख मिलता है। हाँ, महाभारत में भी 'महावट' के वचे रहने का उल्लेख मिलता है, अतः प्रसादजी ने शतपथ ब्राह्मण के वृक्ष को महावट की सज्ञा प्रदान कर दी है।

"निकल रही थी········हँसती-सी पहचानी सी ।"

शब्दार्थ—मर्म-वेदना=हार्दिक व्याकुलता, हृदय की बेचैनी ।

भावार्थ—मनु की हृदयगत व्याकुलता करुणा-कलित कहानी के समान अंतर्मन में उमड़ी पड़ रही थी, किन्तु उनकी उस अंतर्व्यथा को सुनने वाली एकमात्र प्रकृति ही थी जो उनसे चिर-परिचित सी थी और ऐसा प्रतीत होता था मानो उनकी उस करुण कहानी को विहँसती हुई सुन रही हो।

विशेष—(१) मनु की अन्तर्व्यथा को प्रकृति विहँसती हुई सुनती है, जिससे स्पष्ट होता है कि दम्भी और विलासी देवजाति को विनष्ट करने के विषय में प्रकृति के हृदय में पश्चात्ताप नहीं था। उसे अपनी जीत पर प्रसन्नता है।

(२) **अलंकार**—'वहाँ अकेली······पहचानी-सी' में सम्बन्धातिशयोक्ति, 'निकल रही थी···कहानी सी' में उपमा, तथा 'करुणा विकल कहानी' में विशेषण विपर्यय अलंकार है।

"ओ चिन्ता की········कम्प-सी मतवाली।"

शब्दार्थ—विश्व-वन=जगत रूपी जंगल। व्याली=सर्पिणी। स्फोट=भयंकर आवाज के साथ फूटना। कंप=कम्पन, कांपना।

भावार्थ—जल-प्लावन से पूर्व निर्द्वन्द्व-निश्चिन्त जीवन यापित करने वाले मनु के हृदय में देव-सृष्टि का अचानक ही विनाश देखकर दुश्चिन्ता-दुविधाएँ उत्पन्न होने लगती हैं। अतः वे चिंता को सम्बोधित करते हुए कहने लगते हैं कि अरी चिन्ता! तेरी प्रथम किरण ही, तेरा प्रथमाभास ही मानव-जीवन को उसी प्रकार भयावह और त्रासदायक बना देता है, जैसे सर्पिणी से युक्त वन में विचरते हुए प्राणी भयभीत रहा करते हैं। तेरा प्रथमोद्रेक ही मानव-जीवन में उसी प्रकार हलचल मचा देता है, जैसे ज्वालामुखी पर्वत के फूटने से पूर्व उसका प्रथम कंपन आस-पास के वातावरण में हलचल और सत्रास व्याप्त कर देता है—जिस प्रकार ज्वालामुखी को आस-पास के लता-वृक्ष, पशु-पक्षी और मानवादि के अहित की चिन्ता नहीं होती, उसी प्रकार तू भी अपने मतवालेपन के कारण प्राणियों के दुःख-भय आदि के विषय में ध्यान नहीं देती।

विशेष - (१) 'चिंता' जैसे अमूर्त भाव को मूर्त उपमानों (व्याली और ज्वालामुखी स्फोट के प्रथम कंप) द्वारा स्पष्ट करने के मूल में कामायनीकार की अप्रतिम काव्यप्रतिभा कार्यरत है। ये पंक्तियाँ उपचार-वक्रता से गर्भित है।

(२) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी चिन्ता का यह वर्णन पूर्णतया संगत है क्योंकि मानव-जीवन में चिन्ता उत्पन्न होने पर ही भय, कंपन, हलचल आदि मनोभाव जागृत होते हैं।

(३) **अलंकार**—'अरी विश्व वन की व्याली' में प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षणा और परंपरित रूपक अलंकार है। अंतिम दो पंक्तियों में उपमा अलंकार है।

और अमंगलकर ही न होकर सुखद और प्रीतिकर भी होता है—भाव यह है कि चिन्ता प्राणी को अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त करने की ओर अग्रसर करती है, जिससे उसे उन उपादानों की उपलब्धि होने पर आत्म-तोष भी मिलता है। तेरा किसी प्राणी के हृदय-गगन मे उदित होना उसी प्रकार अमांगलिक होता है, जैसे आकाश में पुच्छल तारे का उदय विनाश और अमंगल का ही प्रतीक होता है। तेरा अस्तित्व पुण्यजगत मे पाप के ही समान होता है, किन्तु ऐसे पाप के समान जो अंशतः सुन्दर होता है जिसमे कुछ भलाई और हित भी निहित रहते हैं। भाव यह है कि तेरे कारण चिन्तित व्यक्ति अपनी मनोभिलाषाओं की परिपूर्ति का प्रयास करते है, यह तेरा शुभ पक्ष भी है।

विशेष—(१) कवि ने चिन्ता के स्वरूप का विरोधी विशेषणों के प्रयोग से बडा ही यथातथ्य और प्रभावशाली अंकन किया है। चिन्ता निस्संदेह दुःखमय और अप्रीतिकर भाव है, किन्तु उसकी उपयोगिता भी निर्विवाद है। यदि मनुष्य मे अलभ्य वस्तुओं को प्राप्त करने की चिन्ता ही नही जगती, तो फिर इतने अनुसन्धान नही हो सकते थे। इसीलिए प्रसादजी ने चिन्ता को 'मधुमय अभिशाप' तथा 'सुन्दर पाप' विशेषणो से समाहित किया है।

(२) अलंकार—रूपक, उपमा, विरोधाभास, उल्लेख, मानवीकरण।

"मनन करावेगी············रही है नींव।"

शब्दार्थ—मनन=चिन्तन। निश्चित=चितारहित, निर्द्वन्द्व। जीव=प्राणी। अमर=देव।

भावार्थ—मनु चिन्ता को कुछ चुनौती-सी देते हुए कहते है कि अरी चिन्ता, तू मुझसे कितना मनन-चिन्तन कराना चाहती है?—तू मुझे अत्यधिक चिन्ता-ग्रस्त रखकर भी मेरा कुछ नही बिगाड सकती, क्योकि मै तो उस अमर देव-जाति का वंशज हूँ जिस पर दुविधाओ और चिन्ताओं का प्रभाव पड़ता ही नहीं है अथवा बहुत कम दुष्प्रभाव पडता है। इसलिए तू अपने अस्तित्व की मेरे हृदय मे चाहे जितनी गहरी नींव डाल ले, मेरे हृदय मे चाहे जितनी प्रचुर मात्रा में व्याप्त हो जा, मैं तुझसे घबराने वाला नही हूँ।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियो मे मनु के दृढ आत्मविश्वास की अभिव्यक्ति हुई है—वे चिन्ताकुल तो है, किन्तु साहस नही खोते।

(२) अलंकार—'अमर मरेगा क्या?' मे प्रश्न और काकुवक्रोक्ति अलंकार हैं।

"आह घिरेगी············निगूढ़ घन-सी।"

शब्दार्थ—करका घन=ओलो की वर्षा करने वाले बादल। अंतरतम=हृदय। निगूढ=गुप्त, छिपे हुए।

भावार्थ—देवों का जीवन चिन्ता-द्विविधारहित था—उस समय चिन्ता का अस्तित्व ही नही था और वे निर्द्वन्द्व-निश्चिन्त होकर भोग-विलासों में लिप्त रहते थे, किन्तु अपने हृदय में चिन्ता का उद्रेक देखकर मनु इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भविष्य मे यह चिन्ता-वृत्ति प्राणियों के हृदय को व्यथित-मथित किया करेगी। अपनी इस भावना को व्यक्त करते हुए वे खेदपूर्वक कहते है कि आह! तू प्राणियों के आनन्दमग्न हृदयों के उल्लास को उसी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट कर दिया करेगी जैसे ओलो की वर्षा करने वाले बादल खेतो की लहलहाती फसलों को नष्ट-भ्रष्ट कर डालते हैं। ओलों की वर्षा से जैसे हरियाली वीरानगी मे परिणत हो जाती है, उसी प्रकार तू अपनी चिन्ताओं की वर्षा से प्राणियों के खिलते हृदय-पुष्पों को उजाड़कर वीरान कर दिया करेगी। तेरा अस्तित्व सभी प्राणियो के हृदय में छिपे हुए खजाने के समान रहा करेगा—जैसे गुप्त-कोष का अचानक ही चाहे जब ज्ञान हो सकता है, उसी प्रकार तू भी चाहे जब प्रकट हो जाया करेगी। इन पंक्तियो से यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि जिस तरह प्राणी के संकटकाल में उसका गुप्त धन सहायक बनता है, उसी प्रकार तू प्राणियों को उनके संकटकाल मे, उस सकट के प्रतिकार का मार्ग सुझाया करेगी।

विशेष—मालोपमा अलंकार के विनियोजन द्वारा कवि ने 'चिन्ता' के दुःख-सुखात्मक प्रभावों का सुष्ठु अंकन किया है—चिन्ता ओलों की वर्षा के समान संहारक भी है तथा गढ़े धन के समान कष्टों मे सहायक भी। भाव यह है कि वह मधुमय अभिशाप है, आवश्यक बुराई है।

'हृदय लहलहे खेतों' मे रूपक अलंकार है।

"बुद्धि-मनीषा ············ कुछ तेरा काम।"

शब्दार्थ—बुद्धि = तात्कालिक ज्ञानमयी शक्ति। मनीषा = नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा या प्रतिभा, इच्छा, समझ। मति = भविष्य के विषय में मनन कराने वाली शक्ति, संकल्प।

भावार्थ—मनु चिन्ता को सम्बोधित करते हुए आगे कहते है कि तू अनेक सुन्दर अभिधानों (नाम) के रूप मे मानवों के हृदय मे व्याप्त होती है। उदाहरणार्थ, तात्कालिक ज्ञानमयी शक्ति के रूप में तू बुद्धि कही जाती है क्योकि बुद्धि द्वारा प्राणी जो निश्चय करते है, उसके मूल में तेरा ही अस्तित्व अर्थात् चिन्तन-मनन रहता है। तू मनीषा भी कही जाती है, क्योंकि मनीषा में इच्छा, समझदारी, नूतन तथ्यों-तर्कों के ज्ञान का जो भाव रहता है, वह भी चिन्तन-मनन का ही परिणाम होता है। तुझे मति भी कहा जाता है क्योंकि मति में

करती है और भक्षक बनकर विनाश भी, उसी प्रकार तुमने भी पहले तो असुर, तथा अन्य दुर्बल देवजातियों का विनाश किया और बाद मे जल-प्लावन रूपी महामत्स्य के शिकार बन गये हो, तुम्हारा विनाश हो गया है।

आह सर्ग के अग्रदूत ! का अन्य अर्थ 'सागर' भी होता है, क्योंकि सृष्टि के आरम्भ में जल ही जल होने का विश्वास प्रचलित है। इस रूप में मनु के कथन का अभिप्राय यह है कि हे सागर (जल-प्लावन) तुमने सृष्टि-चक्र से देवजाति को पूर्णतया मिटाने का जो प्रयास किया था उसमें तुम असफल ही रहे हो, क्योंकि मै जीवित बचा हुआ हूँ। तुम्हें देवजाति का भक्षक कहा जाय अथवा रक्षक, किन्तु तुमने आचरण उस मीन जैसा ही किया है जो कुछ खाता है, कुछ बिगाड़ता है—तुमने अधिकांश देवजाति का तो भक्षण कर लिया है, किन्तु मुझे जीवित छोड दिया है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पक्तियों मे देवजाति पर 'मत्स्य न्याय' का आरोप किया गया है। मछलियो को स्थूलतया तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है : १–लघु आकार की, २–मध्यम आकार की, ३–दीर्घाकार की। इनमें से मध्यम आकार की मछलियाँ लघु आकार की मछलियों की भक्षक होती है, क्योंकि वे उन्हें खाती रहती हैं। वे दीर्घाकार की मछलियों की प्राण-रक्षक होती है, क्योंकि वे इन मध्यम आकार की मछलियों को खाकर जीवित रहती हैं। जिस प्रकार बड़ी मछलियाँ प्राकृतिक कोप का शिकार बनती है, उसी प्रकार देव जाति भी प्राकृतिक कोप का शिकार हो गयी है।

(२) **अलंकार**—श्लेष तथा परिकर।

"अरी आँधियो !············तेरा प्रत्यावर्त्तन।"

शब्दार्थ—नर्त्तन=नृत्य। वासना=भोग-विलास। उपासना=आराधना, लीन रहना। प्रत्यावर्तन=बार-बार लौटकर आना।

भावार्थ—देव-जाति के विनाश के विषय मे चिन्ताकुल मनु, उसके विनाश के लिए उसी को दोषी बताते हुए प्रलयकालीन आँधियों और बिजली की कड़क को सम्बोधित करते हुए कहते है कि तुमने तो अहोरात्रि भयंकर झंझावातो और कानो को बहरा करने वाली कड़कों के द्वारा देवो को दंभपूर्ण और विलासी जीवन त्यागने की चेतावनी दी थी, किन्तु वे अपनी कामोपासना से विरत नहीं ए—उनके कानो पर जूँ तक न रेंगी। जब तुम्हारी चेतावनियो का उन पर भी प्रभाव नही पड़ा, तभी तुम अत्यन्त भयंकर अर्थात् प्रलयंकर रूप मे पुनः अवतरित हुई और उन्हें विनष्ट कर डाला।

विशेष—अलंकार—मानवीकरण। आँधियो! के साथ 'तेरा' का प्रयोग होने से वचन दोष है।

"मणि दीपों के······बन गया हविष्य।"

शब्दार्थ—मणि-दीपों=मणियो के बने हुए दीपक। देव-दम्भ=देवों का घमंडी स्वभाव। महामेध=महायज्ञ। हविष्य=यज्ञ मे आहुति के रूप मे प्रयोग की जाने वाली सामग्री।

भावार्थ—देवो के विनाश के विषय मे चिन्ताकुल मनु आगे सोचते है कि वह देव-जाति जिनके प्रासाद (महल) मणियों के दीपको से जाज्वल्यमान रहा करते थे—जो दिन ही नही अपितु रात्रि मे भी अत्यधिक प्रकाशमान वातावरण में निवास करते थे, उनका भविष्य कितना अंधकारमय निकला। इसका कोई अन्य कारण नही था अपितु उनका घमंडी स्वभाव ही था, जिसके कारण कामोपासना में लीन हुए वे किसी बात की चिन्ता ही नही करते थे। उनके इस घमंड रूपी महायज्ञ मे ही उनका सर्वस्व और वे स्वयं होम हो गये है—वे सपरिकर (सर्वस्वसहित) विनष्ट हो गये है।

विशेष—(१) कामायनीकार ने देव-जाति के विनाश का मूलकारण दंभ-वृत्ति बताते हुए इस ओर इंगित किया है कि दंभ से बचना चाहिए।

(२) **अलंकार**—'मणिदीपों के अधकारमय' मे विरोधाभास तथा 'देवदंभ के महायज्ञ' में रूपक अलंकार है।

"अरे अमरता········दीन विषाद।"

शब्दार्थ—अमरता=देवत्व। अमरता के चमकीले पुतलो=अमर होने की मिथ्या भावना से गर्भित वैभव सम्पन्न देवगण। जयनाद=विजय घोष। प्रतिध्वनि=गूज। दीन विषाद=दीनतामिश्रित दुःख, शोक।

भावार्थ—विनष्ट हुए देवों को सम्बोधित करते हुए मनु सोचते हैं कि अरे अपने अमरत्व की मिथ्या धारणा पर गर्व करने वाले तथा अपने वैभव की चकाचौंध में मदान्ध रहने वाले देवो! तुम वास्तव मे विमूढ ही थे कि अपनी विजयों पर गर्वोन्मत्त होकर जय-जयकार किया करते थे—अपनी शक्ति-सामर्थ्य के समक्ष किसी को कुछ समझते ही नही थे। घमंडी को अवश्य ही पराभूत होना पड़ता है, यही कारण है कि आज तुम्हारे वे जय-घोष सागर की लहरों में विलीन हो गये हैं और दीनतामिश्रित अवसाद के रूप मे अनुगुंजित हो रहे हैं। भाव यह है कि तुम्हारे अभिमानपूर्ण जय-निर्घोष आज तुम्हारे पतन की कहानी सुनाते हुए समुद्र की लहरों पर सविषाद थिरक रहे है—उनसे यह ध्वनि निकल

रही है कि तुम्हारा जीवन कितना क्षुद्र-तुच्छ नगण्य था कि प्रकृति-कोप के एक साधारण से थपेड़े को भी नही सहन कर सका।

विशेष—अलकार—वस्तूत्प्रेक्षा तथा मानवीकरण। 'पुतलो' के साथ 'तेरे' शव्द के प्रयोग से इन पक्तियो मे च्युत संस्कृति अर्थात् वचन दोष है।

"प्रकृति रही दुर्जेय········के नद में।"

शव्दार्थ—दुर्जेय=जिसे कठिनता से जीता जा सके। मद=अभिमान, घमड। निरते=तैरते, मग्न रहते। भोले=अज्ञानी, मूर्ख। नद=महानदी।

भावार्थ—मनु देव-जाति की विलासिता और दंभ की निन्दा करते हुए कहते है कि हमने प्रकृति को जीतने की चेष्टा की थी। और इस तथ्य की ओर ध्यान न देते हुए कि प्रकृति पर विजय पाना सहज-सम्भव नही है, हम उससे पराजित होकर भी यह गर्व करते थे कि हमने प्राकृतिक शक्तियो पर विजय प्राप्त कर ली है—प्राकृतिक शक्तियाँ हमारा वाल-वॉका नही कर सकती। यह हमारी मूर्खता ही थी कि प्राकृतिक शक्तियो के वशीभूत होकर भी हम स्वयं को विजयी समझते थे, और उनकी चेतावनियो की ओर ध्यान न देकर मदोन्मत्त दशा में भोग-विलास की महानदी मे क्रीड़ा-मग्न रहते थे—नाना प्रकार के भोग-विलासो मे लिप्त रहते थे।

विशेष—अलकार—'विलासिता के नद मे रूपक।

'वे सब डूबे········का नाद अपार।"

शव्दार्थ—विभव=वैभव, ऐश्वर्य। पारावार=सीमाहीन। जलधि=समुद्र। नाद=शोर। अपार=अनन्त, अगणित।

भावार्थ—देवजाति के विनाश के विषय मे चिन्ताकुल मनु सोचते है कि विलासिता के महानद मे क्रीडामग्न समस्त देव तो डूबे ही, उनके वैभव-विलास और ऐश्वर्य के समस्त उपादान भी उन्हीं के साथ जलमग्न होकर अनन्त जल-राशि के रूप मे परिणत हो गये है। देवों के सुखों पर दु:खो का समुद्र उमड़ता रहता था, और अंतत: उसने उनके सुखो को पूर्णतया अपने अंक मे छिपा लिया है—आज उनके सुख दु:ख-सागर मे निमग्न हो गए है और समुद्र गरज-गरजकर उनके विनाश की सूचना दे रहा है।

विशेष—अलकार—'वन गया पारावार' मे परिकरांकुर तथा 'दु:ख-जलधि' मे रूपक।

"वह उन्मत्त विलास········की कलना थी।"

शव्दार्थ—उन्मत्त=पागलपन से भरा। छलना=छलावा। विभावरी=रात्रि। कलना=मिथ्या या भ्रान्त चमक।

भावार्थ—देवजाति के विनाश पर पश्चात्ताप करते हुए मनु यह विचिकित्सा व्यक्त करते हैं कि देवों का वह उन्मादक विलास अंततः कहाँ चला गया है?—उनका वह विलास वास्तविक था अथवा स्वप्न या छलावा मात्र ही था? भाव यह है कि जिस प्रकार स्वप्न आख खुलते ही मिट जाता है उसी प्रकार देवों का वह विलास-वैभव लुप्त हो गया है। हम जिसे देव-जाति के भोग-विलासमय जीवन की सुखमयी रजनी समझते थे उसमे कही तारागणों की मिथ्या आभा ही तो नही व्याप्त थी? भाव यह है कि उनके सुख सहसा ही ऐसे विलीन हो गये है, जैसे प्रातःकाल होने पर तारे विलीन हो जाते है, उनका वह सुख क्षण-स्थायी सिद्ध हुआ है।

विशेष—(१) 'ताराओं की कलना' से प्रसादजी का अभिप्राय उस प्रकार की रात्रि से रहा है जिसमें यदा-कदा तारे इतने तीव्र प्रकाश से चमकते हैं कि आकाश अत्यधिक सुन्दर दिखाई देता है तथा प्रभात होने का भ्रम होने लगता है। प्रभात के भ्रम में यात्रारंभ करने वाले यात्रियों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता, जब उनके चलते जाने पर भी रात्रि समाप्त नहीं होती। इस प्रकार वह प्राणियों को विभ्रमचित्त कर देने का प्रतीक है।

(२) अलंकार—'स्वप्न रहा या छलना थी' में सन्देह, तथा 'सुख-विभावरी' में रूपक अलंकार है।

"चलते थे सुरभित········का सुख निश्वास।"

शब्दार्थ—सुरभित=सुगंधित। अंचल=साड़ी का छोर। मधुमय=उन्मादक, सरस। निश्वास=सांसें, लक्षणा से अर्थ है जीवन। मुखरित=निनादित, गुंजित।

भावार्थ—देवों के सुरांगनाओं के साथ व्यतीत होने वाले भोगविलासमय जीवन का स्मरण करते हुए मनु कहते है कि उनकी प्रमत्त-उन्मादक जीवन-यात्रा देवांगनाओ के सुवासित अंचलों की छाया में चला करती थी—उनके जीवन का बहुलांश नाना प्रकार के अंगरागों से चर्चित और सुवासित वस्त्रों से सुसज्जित सुरांगनाओं के साथ भोग-विलास में व्यतीत होता था। काम-क्रीड़ाओं में मग्न हुए उनके मुखों मे अनंग पीड़ा की अभिव्यंजक जो सीत्कार आदि सरस-उत्तेजक ध्वनियाँ निकला करती थी, उनसे इस तथ्य का परिचय मिल जाता था कि उनका जीवनोद्देश्य भोग-विलासपरक जीवन व्यतीत करना ही है—वे काम-पूजा में अगाध आस्था रखते है।

विशेष—(१) 'चलते थे·····निश्वास' में बड़ी मार्मिक व्यंजना की गयी

है जिसका अभिव्यंग्य यह है कि देव-जीवन सुरांगनाओं के सुवासित अंगों और सुरभित वस्त्रों से संचालित रहता था—उनकी दुनिया देवागनाओं की विलासोन्मादक काय-वल्लरियों तक परिसीमित रह गयी थी—उनके जीवन की मूल-प्रेरणा का उत्स काम-वासना मे निहित था। उनके जीवन-विश्वास का काम-क्रीड़ा की शब्दावली मे मुखरित होना भी बड़ा सांकेतिक-मार्मिक है—भोग-विलास मे लिप्त हुए देव-देवांगनाएं जो चुहलवाजी करते थे, वही उनके जीवन-ध्येय की उद्घोषणा प्रतीत होती थी—उससे प्रकट होता था कि इनके जीवन का मूलमंत्र भोग-विलास ही है।

(२) अलंकार—इन पंक्तियों मे प्रयोजनवती लक्षणा-शक्ति तथा विशेपण-विपर्यय अलंकार है।

"सुख, केवल सुख······ होता जितना।"

शब्दार्थ—केन्द्रीभूत=संचित । छाया-पथ=आकाश गंगा, आकाश । तुषार=कुहरा, हिमकण । सघन=घनीभूत, अतीव घना ।

भावार्थ—देवजाति के विनाश के लिए उनके भोगविलासमय जीवन को उत्तरदायी ठहराते हुए मनु आगे कहते हैं कि उनका जीवन भोग-विलास एवं सुख-समृद्धि का अनन्य-अपार भंडार वन गया था। उनके जीवन में सुख एवं वैभव-विलास ऐसी प्रचुर मात्रा में सघनीभूत हो गये थे, जैसे कि आकाश गंगा में तारे अथवा आकाश में कुहरे के हिम-कण अत्यधिक घनी मात्रा में एकत्र हो जाते है—भाव यह है कि उनके जीवन मे नाना प्रकार के सुख झिलमिलाने लगे थे, किन्तु वे आकाश गंगा के तारों अथवा कुहरे के समान सहसा ही विलुप्त हो गए है।

विशेष—'छाया पथ' का प्रयोग प्रसाद जी ने आकाश गंगा के ही अर्थ पर किया है।

"सब कुछ थे·········का सुख-संचार।"

शब्दार्थ—स्वायत्त=उपलब्ध, वश मे। उद्वेलित=तरंगित, उछलना। सुख-संचार=सुखों का आगमन और गमन।

भावार्थ—देव-जाति के बल-वैभव और समृद्धि का स्मरण करते हुए मनु कहते है कि विश्व मे बल, वैभव, सुख आदि जितने भी काम्य पदार्थ है, वे सभी देवों को उपलब्ध थे, उन पर उनका आधिपत्य था। इसके साथ-साथ उनके समीप उस समृद्धि से जनित सुख भी समुद्र की उच्छल-तरंगो के समान आते रहते थे—नाना प्रकार के सुख और वैभव-विलास उनके चरणों मे लोटते रहते थे।

विशेष—**अलंकार**—उपमा।

"कीर्ति, दीप्ति·········आनन्द विभोर।"

शब्दार्थ—कीर्ति = यश । दीप्ति = आभा, प्रकाश । अरुण = लाल, स्वर्णाभ । सप्त-सिन्धु = सातों महासागरों या प्रदेश-विशेप । द्रुम-दल = वृक्षों के पत्ते । आनद-विभोर = आनंद विह्वल होकर ।

भावार्थ—सुख-समृद्धि और वैभव-विलास की चोटी पर पहुंची देव-जाति का स्मरण करते हुए मनु आगे कहते है कि देवजाति की यश-प्रशस्ति, उनकी रूप कांति और शोभा-सुषमा विश्व में चारों ओर सूर्य की स्वर्णाभ किरणों के समान प्रसरित होती रहती थी—दिगन्त उन्हीं की कीर्ति-दीप्ति से परिव्याप्त थे । यही नहीं, सातों सागरों के आर्द्र-सिक्त कणों एवं वृक्षो के पत्र समूह में भी देवों की कांति-शोभा और प्रशस्ति आनन्द-विह्वल होकर नृत्य करती रहती थी ।

विशेष—(१) कवि का अभिव्यंग्य यह है कि सुख-समृद्धि और वल-वैभव के चरमोत्कर्ष पर पहुंची देव-जाति की प्रशस्ति, उनकी शोभा-सुपमा का यश जल-थल सर्वत्र परिव्याप्त था—जलकण और पत्रदल तक उनके यश से अभिभूत प्रतीत होते थे ।

(२) **अलंकार**—'कीर्ति, दीप्ति शोभा थी नचती' मे दीपक और मानवीकरण, तथा 'कीर्ति,दीप्ति·····चारों ओर' मे उपमा अलंकार है ।

"शक्ति रही·········ही आक्रांत।"

शब्दार्थ—पद-तल = पैरों तले । विश्रांत = थकी हुई, शांत । विनम्र = विनीत, झुकी हुई । धरणी = पृथ्वी । आक्रांत = मथित होकर, रौदी जाकर ।

भावार्थ—अपने वल-वैभव के चरमोत्कर्ष पर पहुंची देवजाति इतनी शक्ति सम्पन्न हो गयी थी कि उससे भयभीत हुई प्राकृतिक शक्तियां विनीत होकर उसके चरणो में झुकी और शांत रहती थी—उसके प्रतिकूल आचरण करने का साहस न करके विनीत सेविका के समान मुख जोहा करती थी—उनके आदेशो की प्रतीक्षा करती रहती थी—उनके बलशाली चरणों के नीचे दबकर धरा भी कांपने लगती थी, और वे उसे सर्वदा रौदते ही रहते थे ।

विशेष—(१) कवि का इंगित इस तथ्य की ओर है कि वल-पराक्रम की पराकाष्ठा को पहुँची देवजाति ने एक बार तो प्राकृतिक शक्तियों को भी जीत लिया था । ऋग्वेद मे भी उल्लेख मिलता है कि "**द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते**" अर्थात् इन्द्र के चरणो मे आकाश और पृथ्वी दोनों ही नमस्कार करते थे तथा उससे पर्वत भयभीत रहते थे ।

(२) **अलंकार**—अतिशयोक्ति व वीप्सा ।

"स्वयं देव थे·········की वृष्टि ।"

शब्दार्थ—विशृंखल=अस्त-व्यस्त, उच्छृंखल । वृष्टि=वर्षा ।

भावार्थ—मनु सोचते है कि जब हम स्वयं देव होते हुए भी विलासिता, अहंकार, मिथ्याभिमान आदि दूषणो से युक्त हो गये थे, देवोचित पावन-निरभिमान जीवन व्यतीत नही करते थे, तो फिर सृष्टि में उच्छृंखलता क्यों न फैलती? जब हमारा आचरण ही संयमित-उदात्त नही था, तब हमारे वशीभूत हुई प्राकृतिक शक्तियाँ ही कैसे मर्यादाबद्ध रहती? यही कारण था कि सृष्टि पर अचानक ही ऐसी कठिन आपत्तियों की वर्षा हुई कि जिसमे देवजाति ही विनष्ट हो गई।

विशेष—'स्वयं देव······सृष्टि' मे काकुवक्रोक्ति अलंकार है तथा इनका अभिव्यंग्यार्थ यह है कि मनु जिस जाति के वंशज थे उसमे देवोचित गुण नही थे, फिर भी वह स्वयं को देव-जाति कहकर गर्व किया करती थी। प्रसादजी ने मनु से आगे भी कहलवाया है—"देव न थे हम और न ये है सब परिवर्तन के पुतले।"

"गया, सभी कुछ·········निश्चित विहार ।"

शब्दार्थ—मधुरतम=अत्यधिक आनन्ददायक । ज्योत्सना=चाँदनी । यौवन-स्मित=यौवनावस्था की अल्हड मुस्कराहट । मधुप=भौंरा । विहार=भ्रमण ।

भावार्थ—देवजाति के विनाश के विषय मे मनु कहते है कि सम्प्रति तो उसका सर्वस्व ही विनष्ट हो चुका है। देव-बालाओं का आज वह मनभावन शृंगार-सज्जित स्वरूप विलीन हो चुका है। उनका उषा के समान आरक्त यौवन, चाँदनी के समान स्वच्छ हँसी तथा भ्रमरो के समान निर्द्वन्द्व होकर विहार करते फिरना सभी कुछ मिट चुका है—ये बाते स्वप्न के समान विलीन हो चुकी हैं।

विशेष—अलंकार—'गया, सभी कुछ गया', में पुनरुक्ति, 'उषा ज्योत्स्ना-सा, यौवनस्मित' मे यथासंख्य (क्रमालंकार) और उपमा तथा 'मधुप सदृश निश्चित विहार' मे उपमा अलकार है।

"भरी वासना-सरिता·········उठा कराह ।"

शब्दार्थ—वासना-सरिता=भोग-विलास रूपी नदी । मदमत्त=पागल करने वाला । प्रवाह=बहाव । संगम=मिलन । प्रलय-जलधि=प्रलय रूपी समुद्र ।

भावार्थ—देव और देवांगनाएँ जिस भोग-विलास की नदी में स्नान करने में मग्न थे उसका प्रवाह कैसा उन्मादक निकला कि वह प्रलय रूपी समुद्र में जा मिली और वे उसमे डूबकर विनष्ट हो गये। उन्हे इस प्रकार काल-कवलित होते देखकर हृदय से कराह निकलने लगती थी।

विशेष—अलंकार—'वासना-सरिता' और 'प्रलय-जलधि' में रूपक ।

"चिर किशोर-वय········अनन्त वसंत।"

शब्दार्थ—चिर=सदैव। किशोर-वय=किशोरावस्था। दिगंत=दिशाएँ, अन्तिम सीमा तक। तिरोहित=विलीन। वसंत=यौवन।

भावार्थ—देवजाति के विनाश के विषय मे चिन्ताकुल मनु सोचते हैं कि सदैव युवा बने रहने वाले तथा विलासमग्न देवगण, जिनसे दिशाएँ सुवासित होती रहती थी, उनका वह माधुर्यपूर्ण उन्मादक-सरस यौवन आज कहाँ विलीन हो गया है? उनके कारण सृष्टि में वसंत-ऋतु जैसी जो उन्मादकता छाई रहती थी, वह कहाँ विलुप्त हो गई है?

विशेष—(१) मधु और वसंत शब्दों का छायावादी लाक्षणिक शैली में प्रयोग किया गया है, जिनके क्रमशः अर्थ है आनन्दोल्लास या उन्मादकता तथा यौवन।

(२) अलंकार—'मधु से पूर्ण अनंत वसंत' मे प्रयोजनवती साध्यवसाना गौणी लक्षणा शब्द शक्ति है, तथा 'अनंत वसंत' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है क्योंकि उपमेय के स्थान पर मात्र उपमान का प्रयोग किया गया है।

"कुसुमित कुंजों में········अब बीन।"

शब्दार्थ—कुसुमित=पुष्पित, खिले हुए फूलों वाले। पुलकित=रोमांचित। प्रेमालिगन=प्रेमियों का परस्पर प्रेमपूर्वक गले मिलना या आलिंगन करना। मौन=शान्त। मूर्च्छित तानें=संगीत में सातो स्वरों का आरोह-अवरोह मूर्च्छना कहलाता है। बीन=वीणा।

भावार्थ—देवजाति के विनाश के विषय में चिन्तनमग्न मनु यह खेद व्यक्त करते है कि देव और देवागनाएँ जिन पुष्पित-सुरभित कुँजों मे परस्पर प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध रहा करते थे, वे कुज और प्रेमी-युगल आज विलुप्त हो चुके हैं। इसके साथ ही उन कुजों से जो मधुर स्वर लहरी निःसृत होती रहती थी वह भी शान्त हो गयी है, और कही भी वीणा-वादन का स्वर सुनाई नही देता।

विशेष—अलंकार—'पुलकित प्रेमालिगन' में विशेषण-विपर्यय तथा 'मौन हुई मूर्च्छित है तानें में' मानवीकरण अलंकार है।

"अब न कपोलों········अब माप।"

शब्दार्थ—भुज-मूलों=बगलों। शिथिल वसन=खिसके हुए वस्त्र। व्यस्त=कार्यरत। माप=नाप, परिमाण।

भावार्थ—मनु सोचते है कि परस्पर चुम्बन करते हुए देव और देवांगनाओं के मुखों पर एक-दूसरे के सुरभित श्वास-वायु की जो भाप छाया के समान पड़ा

करती थी, अब उसका अस्तित्व नहीं रहा है। इसी प्रकार अब कहीं वे दृश्य भी नहीं दिखाई देते जिनमें एक-दूसरे को आलिंगन-बद्ध करने वाले देव देवांगनाओं के भुज-मूलों से वस्त्र शिथिल होकर खिसक जाते थे और वे उन्हे बार-बार संभालने मे व्यस्त रहते थे।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों मे देवजाति की अत्यधिक विलासी मनोवृत्ति का अंकन किया गया है। प्रथम दो पंक्तियो में उपमा अलंकार है।

"कंकण क्वणित·········होता अभिसार।"

शब्दार्थ—क्वणित=खनखनाते थे, बजते थे। रणित=मधुर ध्वनि मे बजते थे। नूपुर=पायजेब, बिछुए। मुखरित=शब्दायमान, निनादित। अभिसार=मधुर मिलन, प्रिय से मिलने जाना। कलरव=मधुर ध्वनि।

भावार्थ—देवांगनाएँ जब उल्लसित मनोभाव से नृत्य-गान करती थीं तो उनकी कलाइयो के कंगन क्वण-क्वण की ध्वनि करते हुए बजने लगते थे। उनके तीव्र गति से पद-संचालन करने पर पगों मे पहने हुए पायजेब और घुंघरू आदि मधुर ध्वनि मे बजने लगते थे जबकि उनकी अँग-भगिमाओं के साथ-साथ उनके वक्षस्थल पर हार हिलने लगते थे। उनकी स्वर-लहरी से वातावरण निनादित हो उठता था। जैसे उनकी कंठ-ध्वनियाँ अत्यधिक मधुर थी, वैसे ही उन्हें गीतों की लय अर्थात् आरोह-अवरोह-क्रम का भी सम्यक् ज्ञान था; यही कारण था कि उनके गीतों में स्वर और लय का मधुर सामंजस्य होता था—वे अतीव श्रवण-सुखद होते थे।

विशेष—अलंकार—कंकणों के बजने के लिए क्वणित और नूपुरों के बजने के लिए रणित शब्द का प्रयोग करके उनकी यथार्थ ध्वनि को व्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है, अत: यहाँ ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार है। स्वर और लय को प्रेमी-प्रेमिका के समान अभिसार (मधुर-मिलन) करते दिखाने के कारण मानवीकरण अलंकार है जबकि क्वणित और रणित मे छेकानुप्रास की सुष्ठु योजना की गई है।

"सौरभ से·········रहे समीर।"

शब्दार्थ—सौरभ=सुगंधि। दिगंत=दिशाएं। पूरित=भरी हुई, व्याप्त। =आकाश। आलोक-अधीर=प्रकाश से परिपूर्ण। अचेतन गति=उद्दाम ।।

—देव और देवांगनाएँ सुवासित वस्त्रों एवं सुगन्धित अंगरागों का मात्रा मे प्रयोग करते थे कि उनकी सुरभि से समस्त दिशाएँ पूर्णतय

आपूरित रहती थीं। उनके मुख-चन्द्र निशि-दिन आह्लाद से ऐसे दैदीप्यमान रहते थे कि आकाश उनके प्रकाश से सदैव परिपूर्ण रहता था—वह इस दृष्टि से व्याकुल ही रहता था कि उसे विश्राम के लिए अपेक्षित अंधकार सुलभ नहीं हो पाता। उन देव-देवांगनाओं में भोग-विलास के प्रति ऐसी उद्दाम एवं अप्रतिहत लालसा व्याप्त थी कि उनके मनों के समान चांचल्य पवन में भी नहीं था—उनके मन काम-क्रीड़ाओं की ओर समीर से भी अधिक तीव्र-गति से दौड़ते रहते थे।

विशेष—(१) 'अचेतन' शब्द का प्रयोग कवि ने अशरीरी कामदेव के लिए किया है तथा 'अचेतन गति' से उद्दाम काम क्रीड़ाओं की ओर इंगित किया है।

(२) अलंकार—अंतिम दो पंक्तियों में व्यतिरेक अलंकार है।

"वह अनंग पीड़ा······आवर्त्तन।"

शब्दार्थ—अनंग=कामदेव। अनंग पीड़ा=काम-पीड़ा। अंग-भंगियों=अंगों की चेष्टाएँ। नर्तन=नृत्य। मधुकर=भ्रमर। मरंद=वसन्त ऋतु। मदिर=उन्मादक, उत्तेजक। आवर्त्तन=पुनरावृत्ति।

भावार्थ—देवांगनाओं की कामोत्तेजक अंग-भंगिमाओं का स्मरण करते हुए मनु सोचते हैं कि वे क्रिया-विदग्धाएँ कितनी कामोत्तेजित रहा करती थीं कि अपने विविध अंगांगों का इस प्रकार संचालन करती थीं मानो उन्हें अत्यधिक काम-पीड़ा का अनुभव हो रहा है—भाव यह है कि वे अपने मदभरे नेत्रों के कटाक्ष, वक्षस्थल के उतार-चढ़ाव तथा कटि-भंगिमाओं आदि के माध्यम से यह भाव व्यंजित करती थीं कि उन्हें कामदेव अत्यधिक पीड़ा दे रहा है और उनकी मनोभिलाषा है कि उनके प्रियतम उस काम-ज्वर को शान्त करने की अनुकम्पा करें। जिस प्रकार वसन्त-ऋतु में भ्रमर एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर जाते हुए पुष्पों के मधुपान का उत्सव मनाते हैं, उसी प्रकार वे विलासिनी सुरांगनाएँ भी अपनी कामोत्तेजक अंग-भंगिमाओं की बार-बार आवृत्ति करके देवों के सुप्त शोणित में कामाग्नि प्रज्वलित करती रहती थीं—उन्हें कामातुर-कामोत्तेजित करती रहती थीं। उनकी इन कामोत्तेजक क्रीड़ाओं की कोई सीमा नहीं थी, वरन वे सदैव ही ऐन्द्रिय-तुष्टि का पर्व मनाती रहती थीं।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों का अभिव्यंग्य यह है कि स्वभावतया विलासी देवों की काम-लालसा को देवांगनाएँ और भी अधिक अभिवृद्ध करती रहती थीं।

(२) प्रथम दोनों तथा अंतिम दोनों पंक्तियों में जिन उपमाओं की योजना की गयी है वे प्रभाव साम्य की दृष्टि से बड़ी रमणीय हैं।

"सुरा सुरभिमय········पीत पराग।"

शब्दार्थ—सुरा=शराब। सुरभि=सुगंधि। वदन=मुख। अरुण=गुलाबी, लाल। कल=सुन्दर। विछलता=फिसलता। पीत=पीला। पराग=पुष्प-रज।

भावार्थ—मुख्यतया देवांगनाओं तथा उनके साथ-साथ देवों की मुख-सुषमा का स्मरण करते हुए मनु सोचते है कि उनके स्वभावतया ही सुवासित रहने वाले गुलाबी मुख मदिरापान के कारण और भी लालिमायुक्त हो जाते थे। निशि-दिन भोगविलास मे लिप्त रहने तथा सुरापान कर लेने के कारण उनकी उनीदी-सी आंखों मे प्रेमामंत्रण की रक्तिमा प्रतिभासित होती रहती थी—भाव यह है कि उनके नेत्रो के लाल डोरे उनकी हृदय-गत प्रेम-भावना का प्रकटन करते रहते थे (काव्य मे अनुराग का रंग लाल माना जाता है)। उनके उन कपोलों की मसृणता (चिकनापन) और सुन्दरता के विषय मे क्या कहा जाये, जिन पर जब वे पाउडर के रूप में कल्पवृक्ष के पराग कणों का प्रयोग करते थे तो वे फिसलते रहते थे और उनकी कपोल-कांति रक्ताभ-पीत हो उठती थी—उनके गुलाबी कपोल पीतिमायुक्त दृष्टिगत होने लगते थे।

विशेष—प्रथम दो पंक्तियो मे सुरापान की हुई गौरवर्णा देवांगनाओ की मुख-सुषमा का बडा सजीव-सटीक अंकन किया गया है। 'सुरा सुरभि' तथा 'कल-कपोल' में छेकानुप्रास अलंकार है। पराग-कणो मे कुछ चिपचिपापन होता है, किन्तु उनके कपोल इतने अधिक चिकने थे कि उन पर पराग-कण भी नही टिकने पाते थे। 'कल कपोल था' मे च्युत-संस्कृति (वचन) दोष है, क्योंकि था के स्थान पर थे शब्द का प्रयोग होना चाहिए था।

"विकल वासना········गले, गये।"

शब्दार्थ—विकल=व्याकुल, अधीर।

भावार्थ—अत्यधिक विलासी-कामुक देव-जाति के विनाश पर अनुताप व्यक्त करते हुए मनु कहते है कि वे सब भोग-विलास एवं काम-वासना के मूर्तिमंत रूप थे, वे सदैव काम-पीडा से अधीर-व्याकुल रहा करते थे। कितने खेद का विषय है कि आरम्भ में तो वे भोग-विलास के कारण शक्तिहीन हुए, तदनंतर कामाग्नि में जलते रहे, जबकि अन्ततः उन्हें प्रलय के जल ने गला ही डाला—भाव यह है कि कामाग्नि मे निरन्तर दग्ध होते रहने के कारण शक्तिहीन और मृतप्राय से तो वे पहले से ही थे, जल-प्लावन ने उनका पूर्ण विनाश ही कर डाला।

विशेष—अन्तिम दो पंक्तियाँ बड़ी मार्मिक है। साधारण आग जल से बुझ

जाती है किन्तु देवों को तो जलाने वाली कामाग्नि थी जो जल से भी नहीं बुझ सकती थी। परिणामतः वे कामाग्नि को हृदय में छिपाए हुए ही गल गए।

"अरी उपेक्षा········दर्शन की प्यास।"

शब्दार्थ—उपेक्षा=अनादर, अवहेलना। अमरते=देवजाति। निर्बाध=अबाध, बिना व्यवधान के। द्विधा=दुविधा, चिन्ता। अपलक=पलक न झपाना, निर्निमेष।

भावार्थ—प्रस्तुत पंक्तियों मे मनु देवों की अमरत्व, अतृप्ति और विलास-भावनाओ की निन्दा करते हुए कहते है कि तुम वास्तव मे ही तिरस्कार के योग्य हो, तुम्हारी जितनी भी अवमानना—उपेक्षा की जाये वही कम है। कारण यह है कि अपने अमरत्व पर गर्व करते हुए उन्होने प्राकृतिक शक्तियों की चेतावनियों पर ध्यान नही दिया तथा उनकी कभी तृप्त न होने वाली भोग-लालसा उन्हें सदैव निर्द्वन्द्व भाव से रति-पूजन में अनुरक्त रखती रही। उनके नेत्र सदैव सौदर्य-पिपासु रहे, उनके चक्षु एक-दूसरे के अवलोकन के ऐसे भूखे रहते थे कि वे निर्निमेप दृष्टि से स्व-स्व प्रियतम-प्रियतमाओ को देखते रहते थे। फिर भी उनकी अवलोकन-क्षुधा-तृपा शान्त होने के स्थान पर बढती ही रहती थी—भाव यह है कि उनके हृदयों मे दरस-परस की उद्दाम भावना-तरंगे उठती ही रहती थी।

विशेष—'भूख भरी दर्शन की प्यास' पंक्ति लाक्षणिक है जिसका अभिव्यंग्य रूप-दर्शन की उत्कट लालसा की ओर इंगित करना है। इनमे विशेषण विपर्यय अलंकार भी है।

"बिछुड़े तेरे······को सता रहीं।"

शब्दार्थ—पुलक=रोमांच, आह्लाद। कातरताएँ=विह्वलता, उत्कंठा।

भावार्थ—देवजाति के विनाश से पूर्व के भोग-विलासमय जीवन का स्मरण करते हुए मनु कहते है कि आज उसके आलिगन-चुम्बन व्यापार विलुप्त हो चुके हैं। देव और देवागनाओ को एक-दूसरे का आलिगन करते हुए जो स्पर्श-सुख मिलता था, जिस स्पर्श-सुख के कारण उनके शरीरांग रोमांचित हो उठते थे, सम्प्रति उनका अस्तित्व ही शेष नही है। आज उनके वे कामातुर मुख दिखाई नही देते जिन पर मधुर-चुबनों के कारण काम-विह्वलता का भाव छाया रहता था, जो कामार्त्त प्रतीत होते थे।

विशेष—इन पक्तियो मे देवों के घोर विलासी जीवन का चित्रांकन किया गया है।

'रत्न सौध······भीड़ अधीर ।"

शब्दार्थ—रत्न-सौध=रत्नों से जटित महल । वातायन=झरोखा, खिडकी । मधु-मदिर=अत्यधिक शीतल और उन्मादक । समीर=पवन । तिमिगलो=वड़े आकार की मछलियाँ ।

भावार्थ—मनु कहते हैं कि देवों के रत्नों से जटित वे महल जिनके झरोखों से कभी मदिरा के समान उन्मत्त वना देने वाली शीतल-मद और सुगंधित वायु प्रविष्ठ हुआ करती थी और उसके सेवन से देव-देवागनाएं उन्मत्त हो उठते थे, उन महलो के झरोखो मे आजकल समुद्र की तिमिगल नामक दीर्घाकार मछलियाँ टकराती रहती होगी ।

विशेष—अलंकार—'मधु-मदिर समीर' मे उपमा।

"देव-कामिनी······· भीषण वृष्टि ।"

शब्दार्थ—नलिनो=कमलो । सृष्टि=रचना, आभास ।

भावार्थ—यह वदले हुए समय-चक्र का ही परिणाम है कि जिन स्थानों पर पहले देवांगनाओ के नीलोत्पल जैसे नेत्रों को देखकर नीलकमलो का आभास हुआ करता था आज उन स्थानो पर प्रलयंकर घनघोर वर्षा हो रही है।

विशेष—(१) 'देवकामिनी के······सृष्टि' से कवि का अभिप्राय यह नही है कि देवागनाओं के नेत्र नीलकमलों की खेती करते थे, जैसा डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना आदि टीकाकारों ने ग्रहण किया है, अपितु इसका अभिव्यंग्य यह है कि उनके नीलकमलों जैसे सुन्दर नेत्रो को देखने पर नीलकमलो का आभास मिलता था।

(२) अलंकार—इसी प्रकार इनमे व्यतिरेक अलकार नही है वरन् उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

"वे अम्लान··· ·····सुर वालायें ।"

शब्दार्थ—अम्लान=प्रसन्न, खिले हुए । मणि-रचित=मणियो से वनी हुई । शृंखला=जंजीर, वेड़ियाँ । सुर-वालाएं=देव कन्याएं ।

भावार्थ—देवांगनाओ के पतन का कारण मनु की दृष्टि मे यह है कि वे प्रफुल्लित-सुगंधित पुष्पो एवं मणियों से वनी हुई जो मालाएँ पहना करती थीं, अंततः वे मालाएँ ही उनके लिए ऐसी जंजीर वन गयी कि वे भोगविलासों से छुटकारा नही पा सकी और विनिष्ट हो गयी । कवि का अभिव्यंग्य यह है कि स्वभावतया विलासिनी सुरांगनाओ की काम-पिपासा नाना शृंगार-प्रसाधनों से और भी अभिवृद्ध होती रहती थी और वे ऐन्द्रिय-तर्पण मे ऐसी लिप्त रही कि अंतत विनष्ट हो गयी ।

विशेष—अलंकार—पचम विभावना।

"देव यजन········की माला।"

शब्दार्थ—यजन=यज्ञ। पूर्णाहुति=यज्ञ की समाप्ति पर समस्त सामग्री की अन्तिम आहुति देना। पशु-यज्ञ=ऐसे यज्ञ जिसमें पशुओं की बलि दी जाती थी।

भावार्थ—देवों के विनाश का एक कारण उनका पशु-बलि देकर किए जाने वाले यज्ञो को बताते हुए मनु कहते है कि देवगण दिव्य शक्तियो को प्रसन्न करने के लिए अपार पशु-समूह के बलिदान से युक्त जो पशु-यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए पूर्णाहुतियाँ दिया करते थे, उनके उन यज्ञों की भीषण यज्ञाग्नि सम्प्रति समुद्र की लहरों में बडवानल के रूप में प्रज्वलित हो रही है।

विशेष—अलंकार—रूपक

"उनको देख········हलाहल नीर।"

शब्दार्थ—अंतरिक्ष=आकाश। अधीर=व्याकुल। व्यस्त=अविरल, लगातार। अश्रुमय=आँसुओ से युक्त। प्रालेय=प्रलय करने वाला। हलाहल=विष।

भावार्थ—देवो की विलासिता के अतिरिक्त उनकी हिसक वृत्ति को उनके विनाश का कारण मानते हुए मनु कहते है कि उनके द्वारा यज्ञों में जो असंख्य पशुओं का वध करते हुए आहुतियाँ दी जाती थी, उस नृशस हत्याकांड से द्रवित होकर न जाने आकाश में कौन-सी शक्ति रो उठी थी, कि उसके आँसू प्रलय-कालीन घनघोर वर्षा के रूप में अविरल गति से विष की वर्षा करने लगे थे, और उसने देवों को विनष्ट कर डाला है।

विशेष—अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा तथा 'हलाहल नीर' में रूपक।

'हा-हा-कार हुआ········था क्रूर।"

शब्दार्थ—क्रंदन=चीत्कार। कुलिश=बिजली, वज्र। बधिर=बहरे। भीषणरव=भयंकर शोर। क्रूर=निष्ठुर।

भावार्थ—देवों की हिसक प्रवृत्ति से कुपित होकर उस रहस्यमय शक्ति ने अश्रुपात के रूप मे विष वर्षा ही नही की थी अपितु अट्टहास के रूप में वज्र वर्षा (बिजली की भयंकर कडक) भी की, जिससे देव-सृष्टि में सर्वत्र हाहाकार और चीत्कार मच गया था। बिजली की कड़क की बार-बार ऐसी भयंकर और क्रूर गर्जना होती थी कि उससे दिशाएँ तक बहरी हो जाती थी।

विशेष—अलंकार—हा-हाकार और बार-बार में पुनरुक्तिप्रकाश।

"दिग्दाहों से········चलते झटके।"

शब्दार्थ—दिग्दाहो=दिशाओं का जलना। धूम=धुआँ। जलधर=

बादल। क्षितिज=वह स्थान जहाँ आकाश और पृथ्वी मिले हुए दिखाई देते हैं। सघन=बादलों से युक्त। भीम=भयंकर। प्रकंपन=काँपना। झंझा=तूफान।

भावार्थ—देवों के विनाश के मूल में उनकी हिंसक मनोवृत्ति से रुष्ट हुई अज्ञात सत्ता का कोप बताते हुए मनु आगे कहते हैं कि उस रहस्यमय शक्ति ने जो भयंकर वज्रपात किया था उससे दिशाओं मे आग लग गई थी और उनका धुआं बादलों के रूप में आकाश में छा गया। इस पंक्ति का अन्य अर्थ यह भी संभव है कि देवों के नृशंस हत्याकांड को देखकर उस अज्ञात शक्ति के हृदय मे जो रोषाग्नि प्रज्वलित हो उठी थी उससे दिशाएं भी जलने लगी थी और उनका धुआ आकाश में बादलो के रूप मे छा गया था अथवा क्षितिज-तट ही बृहदाकार मेघो के रूप में परिणत होकर आकाश में छा गये थे। सम्पूर्ण आकाश मेघो से पूर्णतया आच्छादित और उनके गर्जन से विकम्पित था। यही नही, भयंकर अंधड और तूफानो से भी धरा और आकाश झकझोरे जा रहे थे।

विशेष—(१) 'भीम' शब्द का प्रकरण के अनुसार भीमसेन के स्थान पर 'भयंकर' अभिप्राय होने के कारण प्रकरण-संभवा अभिधामूला व्यंजना शक्ति है। 'दिग्दाहो से……तट के' मे सन्देह अलंकार है। सघन-गगन मे छेकानुप्रास का सुष्ठु प्रयोग है।

(२) इन पंक्तियो मे ऐसी शब्दावली का प्रयोग है जिससे विराटता और भयंकरता की ध्वनि निकलती है।

"अंधकार में………जमती पीन हुई।"

शब्दार्थ—मित्र=सूर्य। आभा=प्रकाश, चमक। लीन=मग्न, विलीन। वरुण=जल के देवता। पीन=सघन, मोटी। स्तर=परत। मलिन=मन्द-तेज। व्यस्त=अनुरत।

भावार्थ—आकाश मे घटाटोप छाते जाने वाले बादलों के कारण सूर्य का प्रकाश मन्द होते-होते यहाँ तक क्षीण हो गया कि उसकी चमक अधकार में ही खो गई—सूर्य का चमकना बन्द हो गया। इधर जल के देवता वरुण जल-वर्षा करने मे अनुरत थे, जिससे वर्षा की झड़ी के कारण अंधकार और भी बढ़ता गया और सृष्टि मे अंततः अधकार की प्रगाढ़ परतें जम गई—भाव यह है कि सृष्टि में सूचीभेद्य अंधकार छा गया और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो अंधकार की दबा-दबाकर परते जमा दी गयी हों।

विशेष—अलंकार—उत्प्रेक्षा। 'मलिन मित्र' में प्रकरण संभवा अभिधा-मूला व्यंजना है।

"पंचभूत का········खोया प्रात।"

शब्दार्थ—पंचभूत=जल, वायु, अग्नि, आकाश और पृथ्वी पंचभूत कहे जाते है और सृष्टि-रचना इन्ही से मानी जाती है। भैरव=भयंकर। मिश्रण=गड्डमड्ड होना, मिल जाना। शंपाओ=विजली, वज्र। शकल=टुकडे। उल्का=टूटता हुआ तारा। अमर शक्तियाँ=प्राकृतिक शक्तियाँ। निपात=गिरना।

भावार्थ—उस प्रलयकाल में पंच-महाभूत अर्थात् जल, पवन, आकाश, पृथ्वी और अग्नि अपने-अपने पृथक अस्तित्व को भुलाकर एक-दूसरे से उच्छृंखल भाव से मिलने लगे थे—उनका वह मिलन सामंजस्यपूर्ण न होकर बड़ा विशृंखलित और भयंकर था। आकाश से जव वज्र-खंड गिरते थे तो ऐसा प्रतीत होता था मानो उल्काओं (टूटते हुए ग्रह-नक्षत्रों के टुकडे जो तीव्रगति और वायु के घर्षण के समान तीव्र प्रकाश से चमकने लगते है) रूपी मशाले लेकर शाश्वत शक्तियाँ सृष्टि के अंधकाराच्छन्न वातावरण में यह खोजने का प्रयास कर रही है कि प्रभात कहाँ छिपा हुआ है।

विशेष—(१) "उल्का लेकर······प्रात" मे कवि ने वड़ी रमणीक कल्पना की है—सृष्टि मे छाए हुए घोर अंधकार के कारण हाथों-हाथ नही सूझता था, अतः शाश्वत शक्तियो ने उल्का-रूपी मशालो के प्रकाश मे यह खोजने का प्रयत्न किया कि प्रभात कहाँ पर छिपा हुआ है।

(२) अलकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

"बार-बार उस ······ हेतु अशेष।"

शब्दार्थ—भीषण रव=भयंकर शोर। विशेष=मुख्यतया। नील-व्योम=अधकार के रूप में नीलाकाश। अशेष=सम्पूर्ण।

भावार्थ—सृष्टि मे प्रलय के तांडव नृत्य का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं कि वज्र-पात और अंधडो के भयंकर शोर से भयभीत हुई पृथ्वी को विशेषतया कापते देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो उसका प्रेमी संपूर्ण नीलाकाश अंधकार के रूप मे नीचे उतर आया है और पृथ्वी को आलिगन-बद्ध करके समाश्वासन देने की चेष्टा कर रहा है।

विशेष—अलंकार—हेतूत्प्रेक्षा, क्योंकि कवि ने अंधकाराच्छन्न धरा के विपय में यह मनोहर कल्पना की है कि उसका प्रेमी उसे भयभीत जानकर उसको अपने अंक से चिपटाकर धीरज बँधाने की चेष्टा कर रहा है।

"उधर गरजती········व्यालों सी।"

शब्दार्थ—लहरियाँ=लहरे। कुटिल=भयानक, विकराल। व्याल=भयंकर सांप।

भावार्थ—जल-प्लावन के समय समुद्र की गरजती हुई लहरें ऐसी भयानक प्रतीत होती थीं, मानो वे क्रूर-भयंकर मृत्यु के सुदृढ पाश हों। वे फन फैलाए हुए क्रुद्ध सर्पो के समान विप-रूपी झाग उगलती हुई बढ़ी चली आती थीं—भाव यह है कि समुद्र की परस्पर टकराती हुई बड़ी-बडी लहरें जिन पर झाग छाया रहता था, फुकारकर विप उगलते नागों के समान भयंकर प्रतीत होती थी।

विशेष—अलंकार—उत्प्रेक्षा व उपमा। मानवीकरण। स्त्रीलिंग उपमेयों के लिए पुल्लिग उपमानो का प्रयोग होने से इनमें च्युतिसंस्कृति दोप है।

"धँसती धरा········ था ह्रास।"

शब्दार्थ—निश्वास=सास छोड़ना। धरा=पृथ्वी। अवयव=अंग, हिस्से। ह्रास—क्षीणता, कमी।

भावार्थ—प्रलयकाल की भयावहता का वर्णन करते हुए मनु आगे कहते है कि भयंकर वज्रपात एवं लहरो के प्रवल थपेड़े आदि से पृथ्वी पाताल की ओर धँसकती जा रही थी। प्रलयकाल मे वड़वानल (समुद्र की अग्नि) तो धधक ही रही थी, ज्वालामुखी पर्वतो के विवरों के मुखों से भी अग्नि की प्रचंड ज्वाला निकलने लगी थी। ज्वालामुखी पर्वतों के विवरों में पानी भर जाने से उसका आन्तरिक भाग ठंडा होकर संकुचित भी होता जा रहा था। इस प्रकार गर्मी के कारण फैलने तथा जल से सिकुडने के कारण पृथ्वी के अंग टूटते जा रहे थे, उसके आकार को क्षति पहुंच रही थी।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों में कामायनीकार का अभिव्यंग्य इस तथ्य पर प्रकाश डालना रहा है कि पृथ्वी के अत्यधिक गर्म आन्तरिक (नीचे के) भागों मे जल पहुंचने के कारण वह सिकुड़ती जा रही थी जिससे उसमें बड़ी टूट-फूट होने लगी थी।

(२) अलंकार—प्रथम पंक्ति मे वृत्यनुप्रास अलंकार के साथ-साथ ध्वन्यर्थ व्यंजना अलकार है।

"सवल तरंगाघातों········विकलित सी।"

शब्दार्थ—सवल=प्रचंड, वलशाली। तरगाघातों=तरंगो के प्रहार। विचलित=अस्थिर, व्याकुल। व्यस्त=व्यथित। ऊभ-चूभ=डूबती-उतराती। विकलित=व्याकुल। महा-कच्छप=वृहदाकार कछवा।

भावार्थ—प्रलयकाल में पृथ्वी की कैसी दुरावस्था हो गयी थी, इस विषय मे मनु कहते हैं कि समुद्र की लहरों के प्रचंड थपेड़ों के कारण धरा अस्थिर हो उठी थी और उसकी लहरों में ऐसी डूबती-उतराती फिरती थी, मानो वह

धरा न होकर वृहदाकार कछवा हो और वह समुद्र की लहरों में डूबता-उतराता फिरता हो।

विशेष—अलंकार—उपमा। स्त्रीलिंग पृथ्वी के लिए कच्छप के पुल्लिंग उपमान के कारण च्युत-संस्कृति दोष है।

"बढ़ने लगा······· आलिंगन प्रतिघात।"

शब्दार्थ—भैरव=भयंकर। जल-संघात=जलराशि। तरल तिमिर=घोर अंधकार। प्रलय-पवन=प्रचंड अंधड़। प्रतिघात=चोट के बदले चोट करना।

भावार्थ—प्रलयकाल में घनघोर वर्षा के कारण समुद्र के जल में जो भयंकर ज्वार आया था वह उसी प्रकार बढ़ता गया जैसे काम-वासनाएं शांत-क्षीण होने के स्थान पर उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है—समुद्र का जल अधिकाधिक प्रचंड वेग से समस्त धरा को जलमग्न करता गया। उस समय घोर अंधकार भी छाया हुआ था और अत्यधिक प्रचंड वेग से तूफान भी चल रहे थे जो एक दूसरे में समा जाने के लिए आलिंगन-बद्ध से हो रहे थे और ऐसा आभासित होता था मानो अंधकार तूफान को और तूफान अधकार को पराभूत करने के लिए एक-दूसरे पर प्रेमालिंगन के घात-प्रतिघात कर रहे है—उनमें यह स्पर्धा है कि देखें कौन किसमें समा जाता है।

विशेष—(१) वातावरण की भयावहता की सम्यक् अवतारणा के लिए प्रसादजी ने अंधड और अधकार की प्रगाढ़ मैत्री की सुन्दर कल्पना की है। जब घोर अंधकार भी छाया हुआ हो और प्रचंड तूफान भी आया हुआ हो तो प्राणियों की कैसी दुरवस्था हुई होगी इसकी सहज कल्पना की जा सकती है।

(२) अलंकार—उपमा।

"वेला क्षण-क्षण············हीन हुआ।"

शब्दार्थ—वेला=समुद्र का किनारा। क्षीण=कम, अस्पष्ट। लीन=विलुप्त। उदधि=समुद्र। अखिल=समस्त। मर्यादा-हीन=सीमारहित, नियम भंग करने वाला। क्षण-क्षण=शनैः शनैः।

भावार्थ—प्रलयकालीन दशा का वर्णन करते हुए मनु आगे कहते है कि उस समय तो अपनी सीमा का अतिक्रमण न करने के लिए प्रसिद्ध समुद्र भी अपनी इस मर्यादा को त्याग बैठा था। अपनी जल-सीमा को तोड़ने वाले समुद्र के आरम्भ में तो किनारे शनैः-शनैः निकट आते गए थे जिससे क्षितिज अस्पष्ट और धुंधला प्रतीत होने लगा था और अंततः वह (क्षितिज) जल में विलुप्त

हो गया था। तदनन्तर यह दशा हुई कि समुद्र ने समस्त धरामंडल को ही अपने जल मे डुबा दिया जिससे चारों ओर समुद्र-ही-समुद्र दिखाई देने के कारण सागर की यह मर्यादा भंग हो गयी कि वह अपनी सीमा का परित्याग नही करता।

विशेष—समुद्र के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह अपने तटों की मर्यादा का उल्लघन नही करता जिसका कारण यही है कि अति-विस्तृत समुद्र पर गर्मी अथवा वर्षा का विशेष प्रभाव नहीं पडता, किन्तु प्रलयकाल मे वह भी अपनी मर्यादा त्याग देता है क्योकि घनघोर वर्षा के कारण धरा पर जल-ही-जल व्याप्त हो जाता है।

"करका क्रन्दन······कब का।"

शब्दार्थ—करका=ओले। क्रन्दन-करती=गडगडाते हुए। ताडवमय= प्रलयंकर, शिव का प्रलयकालीन नृत्य। कब का=बहुत समय तक।

भावार्थ—प्रलयकाल मे गडगड़ाते हुए आकाश से ओलों की भयकर वर्षा होने लगी थी जिससे सभी प्राणी कुचलकर मरते जा रहे थे। जल, पवन, अग्नि, पृथ्वी और आकाश सभी पच महाभूत अपनी सहज स्वाभाविक गति को भूलकर बड़े समय तक प्रलयंकर रूप में नर्त्तनरत रहे थे, जिससे देवजाति विनष्ट हो गयी।

विशेष—प्रलय के समय शिव के ताडव नृत्य करने की प्रसिद्धि है, जिससे तांडव नृत्य विनाश का वाचक हो गया है। पच तत्त्वों के तांडव नृत्य से इस ओर इगित किया गया है कि वे अपनी स्वाभाविक गति छोड़कर उद्धत-उद्दंड हो चुके थे।

"एक नाव थी········पगली बारम्बार।"

शब्दार्थ—डॉडे=नाव खेने की बल्ली। पतवार=नाव मे पीछे की ओर लगी हुई वह तिकौनी लकड़ी जिसके द्वारा नाव का इधर-उधर घमाते या मोडते है।

भावार्थ—प्रलयकाल मे मनु की प्राणरक्षा कैसे हुई थी इस विषय में मनु कहते है कि मेरे पास एक नाव थी। वह इतनी अथाह जलराशि पर तैर रही थी कि उसे न तो बल्लियो के द्वारा आगे बढाया जा सकता था और न वह पतवारों के द्वारा इधर-उधर ही मोडी जा सकती थी। वह नौका समुद्र की प्रचंड लहरों में पगलियों के समान इधर-उधर चक्कर लगा रही थी—कभी स्थिर हो जाती थी जबकि कभी आगे की ओर और कभी पीछे की ओर वह जाती थी।

विशेष—अलंकार—अन्तिम दो पंक्तियो मे मानवीकरण।

"लगते प्रबल········पथ बनी वहीं।"

शब्दार्थ—प्रबल=जोरदार। कातरता=व्याकुलता। थपेड़े=लहरों के धक्के। नियति=भाग्य।

भावार्थ—मनु प्रलयकालीन दृश्य का स्मरण करते हुए कहते है कि मेरी नाव को प्रचण्ड लहरो के बार-बार धक्के लगते थे, तथा समुद्र के धुधले-से किनारे का बाद मे यह पता ही नही था कि वह कहाँ विलुप्त हो गया है। उस समय मेरे हृदय मे व्याकुलतामय नैराश्य की भावना थी—मुझे अपना भविष्य अंधकारपूर्ण प्रतीत होता था, किन्तु मुझे निराश-हताश देखकर मेरे भाग्य का नियमन करने वाली नियति नटी ही मेरी पथ-प्रदर्शिका बन गयी थी।

विशेष—अलंकार—'कातरता से भरी निराशा' मे विशेपण विपर्यय।

"लहरें व्योम ....संसृति रचतीं।"

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। चपलायें=विजली। गरल=विष। जलद=बादल। निज=अपनी। संसृति=सृष्टि। रचती=निर्माण करती।

भावार्थ—मनु अपनी नौका के प्रलयकालीन समुद्र मे फँसे होने का स्मरण करते हुए आगे कहते है कि उस समय सागर मे गगनचुम्वी ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थी तथा आकाश मे वार-वार चारों ओर से विजलियाँ कौध उठती थी। वादलो से अविरल रूप में होने वाली मूसलाधार वर्षा अपनी बूंदों से एक नूतन जलमय सृष्टि की रचना कर रही थी—भाव यह है कि घनघोर वर्षा ने एक ऐसे जगत् का निर्माण कर डाला था जिसमे सर्वत्र जल ही जल दृष्टिगत होता था।

विशेष—अलकार—मानवीकरण, सम्वन्धातिशयोक्ति। 'लहरे व्योम चूमती उठती' मे रुढिलक्षणा भी है।

"चपलायें.........रोती थीं।"

शब्दार्थ—विराट=विशाल। चमत्कृत=आश्चर्यचकित, चमकती। वाड़व=समुद्र की आग, बड़वानल।

भावार्थ—प्रलयकालीन उस अथाह-अपार जलराशि रूपी विश्व मे बिजलियां चकित हुई-सी बार-वार चमक उठती थी—उनका प्रतिबिम्ब जल मे चमकने लगता था। जल मे अनक स्थानो पर चमकने वाली उन बिजलियो को देखकर ऐसा आभासित होता था, मानो विशाल बड़वाग्नि अनेक टुकड़ो मे विभक्त होकर रुदन कर रही है।

विशेष—अलकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

"जलनिधि के.........सुख पाते ?"

शब्दार्थ—जलनिधि=समुद्र। तल-वासी=निचले भाग मे रहने वाले। जलचर=जलजन्तु। विकल=व्याकुल। विलोड़ित=उथल-पुथलमय।

भावार्थ—समुद्र के तल मे निवास करने वाले जलजन्तु समुद्र के जल में

भयंकर उथल-पुथल मचने तथा जल का दबाव बढ़ जाने के कारण व्याकुल होकर ऊपर की ओर आ गये थे और इधर-उधर तैरते फिर रहे थे। जब घर में ही उथल-पुथल मच गयी हो तब कौन-सा जीव ऐसा है जिसे कहीं सुख मिल सके।

विशेष—अलंकार—अर्थान्तरन्यास।

"घनीभूत हो उठे········होती थी रूद्ध।"

शब्दार्थ—घनीभूत=सघन। रुद्ध=रुकावट पड़ना, जी घुटना। बिलखाती=बिलख-बिलख कर रोना। विफल=असफल। चेतनता=सजीवता।

भावार्थ—उस प्रलयकाल में अंततः वायु इतनी सघन हो उठी थी कि श्वास लेने में भी कठिनाई होती थी, जिससे प्राणियों का जी घुटने लगा था। सांस न ले पाने के कारण सभी सजीव प्राणी, अपनी जीवन-रक्षा के लिए व्याकुल हो उठे थे—उनकी सजीवता बिलख-बिलख कर रोने लगी थी। वे अपनी प्राण-रक्षा के लिए जब इधर-उधर देखते थे तो उन्हें किसी भी दिशा में अपना परित्राण दिखाई नहीं देता था, अतः उनकी निराश दृष्टि क्षुभित हो उठती थी।

"उस विराट आलोड़न········से जगते।"

शब्दार्थ—आलोड़न=मंथन, उथल-पुथल। ग्रह=सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति आदि ग्रह। बुद-बुद=बुलबुले। प्रखर=तेज। पावस=वर्षा। ज्योतिरिंगणों=जुगुनुओं।

भावार्थ—उस प्रलयकाल में पंच महाभूतों का जो आलोड़न-विलोड़न (उथल-पुथल) मचा हुआ था तथा घोर अंधकार छाया हुआ था उसमें सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि ग्रह तथा तारे पानी के बुलबुले जैसे प्रतीत होते थे। उन्हें देखने पर ऐसा आभास होता था जैसे वे ग्रह-नक्षत्र होकर वर्षा-ऋतु में टिमटिमाने वाले जुगनू हों।

विशेष—अलंकार—उपमा।

"प्रहर दिवस ········कोई पा सकता।"

शब्दार्थ—प्रहर=तीन घंटे का समय। सूचक=सूचना देने वाले। उपकरणों=साधनों, उपादानों।

भावार्थ—यह प्रलयकाल प्रहरों से लेकर कितने दिवसों तक व्याप्त रहा था इस तथ्य का उत्तर कोई नहीं दे सकता और न मैं ही इस विषय में बता सकता हूँ। कारण यह है कि सूर्य, चन्द्र, दिन-रात आदि वे उपादान जिनसे समय-चक्र का ज्ञान होता है, उस समय उनका अस्तित्व ही नहीं रहा था, वे अपने स्वाभाविक रूप में कार्यरत नहीं थे।

विशेष—अलंकार—काव्यलिंग।

"काला शासन-चक्र........मरण रहा।"

शब्दार्थ—काला शासन-चक्र=अन्यायी अत्याचारी शासन-प्रणाली। स्मरण =याद। महामत्स्य=वृहदाकार मछली। चपेटा=धक्का, टक्कर। दीन पोत =जीर्ण-शीर्ण नाव।

भावार्थ—मृत्यु का यह अन्यायी-अत्याचारी दमन-चक्र कब तक चला था, इसका मुझे स्मरण नही है—भाव यह है कि प्रलयकाल में मृत्यु उचित-अनुचित का विचार त्यागकर सभी प्राणियों के पीछे हाथ धोकर पड़ गयी थी और उन्हें अकाल ही मारती जा रही थी। मुझे तो मात्र यह स्मृति रह गयी है कि मेरी जीर्ण-शीर्ण नाव महामत्स्य के भयंकर धक्के से छिन्न-भिन्न-सी होकर समुद्र में इधर-उधर को डगमगाने लगी थी।

विशेष—अलंकार—मानवीकरण, विशेषण विपर्यय।

"किन्तु उसीने........लेने फिर से।"

शब्दार्थ—उत्तर-गिरि=भारत के उत्तर मे स्थित हिमालय पर्वत। शिर= चोटी। ध्वस=विनाश। देव-सृष्टि=देवजाति। श्वास लेने लगा=जीवित हो उठा।

भावार्थ—महामत्स्य के भयंकर चपेट को स्मरण करते हुए मनु कहते हैं कि उसके धक्के से यद्यपि मुझे ऐसा अनुभव हुआ था कि मैं अपनी नौका सहित समुद्र मे डूब जाऊँगा, किन्तु इसके सर्वथा विपरीत मेरी नाव महामत्स्य के चपेटे से इस उत्तर दिशा मे स्थित पर्वत (हिमालय) की चोटी से आ टकरायी। इसका परिणाम यह निकला कि मेरे जीवित बच रहने के कारण जो देव-जाति पूर्णतया विनष्ट होने जा रही थी, वह जीवित हो उठी है—मेरे रूप में देव-जाति की आंशिक प्राण-रक्षा हो गयी है।

विशेष—'देवसृष्टि.....फिर से' में प्रयोजनवती शुद्धा लक्षण-लक्षणा है, तथा विरोधाभास और मानवीकरण अलंकार हैं।

"आज अमरता........सा विष्कंभ।"

शब्दार्थ—अमरता=देवजाति। जर्जर=थोथा, क्षुद्र। दंभ=अहंकार। सर्ग=सृष्टि, अध्याय। प्रथम अंक=प्रारम्भ, काव्य या नाटक का प्रथम अध्याय। अधम पात्रमय=नीच (जाति के) पात्रो से युक्त। विष्कंभ=अंकों के आरम्भ या मध्य में नियोजित किया जाने वाला वह दृश्य जिसके द्वारा कथानक के ऐसे विगत या भावी अंशों की सूचना दिलाई जाती है, जिनका रंगमंच पर दिखाना उचित नहीं माना जाता।

भावार्थ—मनु अपने पूर्वजों अर्थात् देवजाति के अहंकार की भर्त्सना करते

हुए कहते है कि सम्प्रति मैं देवों के चूर्ण कर दिए गए उस मिथ्या एवं थोथे अभिमान की निशानी के रूप में जीवित हू, जिसके कारण वे विनाश को प्राप्त हुए हैं —भाव यह है कि जो देवजाति अहंकार के कारण अपने समक्ष किसी को कुछ समझती ही नही थी, वही अपने दंभ के कारण विनष्ट-प्राय हो गयी है, उनमे से मात्र मैं ही जीवित बचा हूं। अपनी भी अवमानना करते हुए वे सोचते हैं कि मेरी स्थिति भी कितनी गर्हित है, क्योंकि मैं अपने पूर्वजों के विनाश का उसी प्रकार परिचायक हू, जैसे नीच-पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से नाटको में अंक के आरंभ में किसी दुर्वृत्तान्त या अशुभ घटना की सूचना दिलाई जाती है।

विशेष—(१) विष्कंभ या विष्कंभक की योजना के द्वारा नाटककार कथा-वस्तु के उन अशों की सूचना दिलाते हैं, जिनकी कथावस्तु को समझने के लिए जानकारी आवश्यक होने पर भी, उन्हे रंगमंच पर दिखाना अनावश्यक होता है। प्रसादजी ने भी देवजाति के विनाश की सूचना मनु के मुख से दिलाई है, अतः उनका स्वयं को अंक के आरम्भ के विष्कंभ से उपमित करना विशेष सारगर्भित है।

(२) **अलंकार**—सर्ग मे श्लेष, 'अधम पात्रमय-सा विष्कंभ' मे उपमा तथा 'भीषण जर्जर दम्भ' में विशेषण विपर्यय।

"ओ जीवन की.........जर्जर अवसाद।"

शब्दार्थ—मरु-मरीचिका=मृग-तृष्णा। अलस विषाद=आलस्ययुक्त खिन्नता। पुरातन=पुराना। पुरातन अमृत=अमरत्व की प्राचीन भावना। अगतिमय=दुर्गतिपूर्ण। मोहमुग्ध=मोह के कारण विमूढ़। जर्जर अवसाद= दुर्बलता या शिथिलता से पूर्ण दुःख-भावना।

भावार्थ—प्रस्तुत पंक्तियो मे मनु देवो की अमरत्व की भावना की निन्दा करते हुए कहते हैं कि अरी देवों के विनाश का मूल कारण बनने वाली अमरत्व की प्राचीन धारणा! तेरे ही कारण देवों की विलास-भावना मृग-तृष्णा के समान कभी शान्त ही नही होती थी—वे निर्द्वन्द्व होकर कामोपासना की ओर वैसे ही दौडते रहते थे जैसे मरुस्थलो मे मृग चिलचिलाते सूर्य की किरणों को जल समझकर उनकी ओर दौडते रहते हैं। तेरे ही कारण उनमे खिन्नतापूर्ण आलस्य-भावना का समावेश हो गया था—वे किन्ही कर्मो मे रुचि ही नही लेते थे, जिससे उनकी जीवन के प्रति कायरता का परिचय मिलता था। अरी अमर भावना! तेरे ही कारण देवगण माया-मोह में ग्रस्त होकर विमूढ-चित्त हो गये थे, जिससे वे पतनोन्मुख होते गये, उनके जीवन में अकर्मण्यता आती गयी और अन्ततः उनके हाथ दुःख और विनाश ही लगे—उनका पूर्ण नाश हो गया!

विशेष—अलंकार—'अमृत अगतिमय' में विरोधाभास, 'अमरता' के लिए साभिप्राय प्रयोग किए गए मरीचिका, अलस-विषाद, मोह-मुग्ध आदि विशेषणों के कारण परिकर तथा द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ पंक्ति में विशेषण विपर्यय अलङ्कार है।

"मौन ! नाश ! ....अब ठाँव ।"

शब्दार्थ—विध्वंस=विनाश। शून्य=सब कुछ मिट जाना। ठाँव=स्थान, महत्व।

भावार्थ—अमरत्व की भावना का तिरस्कार करते हुए मनु कहते है कि अब यहाँ तेरे लिए कोई स्थान नही है—देव-सृष्टि के साथ-साथ तू भी विनष्ट हो चुकी है। जब तेरा देवों के मानस पर आधिपत्य था, वे स्वयं को अमर समझते थे, तब सर्वत्र आनन्दपूर्ण कोलाहल मचा रहता था और वे स्वयं को अजर-अमर और अभाव-हीन समझा करते थे। किन्तु इस समय तो देवों के साथ-साथ अमरत्व आदि सभी भावनाओं का विनाश हो गया है, और सम्प्रति मूकता, विनाश, विध्वंस और अंधकार का साम्राज्य है। पहले अभाव-हीनता का बोल-बाला था—सभी पदार्थ उपलब्ध थे, किन्तु अब सर्वत्र सुनसानपन और अभावों का ही आधिपत्य है। मेरी दृष्टि में अमरत्व के स्थान पर मरण, अभाव-हीनता के स्थान पर अभाव, प्रकाश के स्थान पर अंधकार ही सत्य प्रतीत होते हैं। अरी अमरत्व की भावना ! मेरी दृष्टि में तेरा कुछ भी महत्व नही है, तू मुझ पर अपना जादू चलाने की चेष्टा मत कर।

विशेष—हताश-निराश मनु की मानसिक दशा का प्रस्तुत पंक्तियों में बडा मनोवैज्ञानिक अंकन किया गया है।

"मृत्यु, अरी ....की-सी हलचल ।"

शब्दार्थ—चिर-निद्रा=अनन्त काल तक सोते रहना अर्थात् मृत्यु। अंक=गोद। हिमानी=वर्फ का ढेर। अनंत=हृदय। काल-जलधि=मृत्यु समुद्र।

भावार्थ—मनु मृत्यु को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि अरी मृत्यु ! तू अनन्त-काल तक सोते रहने के समान होती है तथा तेरी गोद हिम-समूह के समान सुशीतल होती है—तेरी गोद में पहुंचकर प्राणी जगत की समस्त प्रकार की बाधा-व्यथाओं से छुटकारा पा जाता है। तू प्राणियों के हृदय में उसी प्रकार भय की कंपनें उत्पन्न करती रहती है जैसे काल-समुद्र में लहरें उत्पन्न हो रही हों—भाव यह है कि जिस प्रकार सागर के जल में लहरों के कारण कम्पन होती रहती है, तू भी उसी प्रकार प्राणियों के हृदय में मृत्यु-आशंका की सिहरन उत्पन्न करती रहती है।

विशेष—अलंकार—'हिमानी-सा शीतल' में उपमा, 'अनंत' में श्लेष, 'काल-जलधि' मे रूपक तथा 'चिर निद्रे' मे परिकर अलकार है।

"महा नृत्य·········अभिशाप।"

शब्दार्थ—विषम=भयंकर, ताल का बिगड़ना। महा-नृत्य=तांडव नृत्य। सम=लय के समाप्त होने पर ताल के आरम्भ होने की स्थिति। अखिल=तमाम। स्पदंन=धडकन। माप=निकष, कसौटी। विभूति=ऐश्वर्य, धन। अभिशाप=शापग्रस्त।

भावार्थ—मनु मृत्यु को सम्बोधित करते हुए कहते है कि अरी मृत्यु! तू विनाशकारी प्रलयंकर नृत्य की उस स्थिति के समान है जिसमें जीवन की लय समाप्त हो जाती है और एक नयी ताल का आरम्भ होता है—अथवा मृत्यु तेरे ही कारण प्राणियों के जीवन का सामंजस्य समाप्त होकर वैषम्य में परिणत हो जाता है। जगत् में जितने भी जीवधारी है उनके जीवित-मृत होने की एक-मात्र कसौटी तू ही है—उनके हृदय की धडकनों का अन्त तू ही करनी है। सृष्टि भी जब शापग्रस्त होती है, उसको विनाश का अभिशाप मिलता है तो वह तेरी ही सम्पत्ति बन जाती है। भाव यह है कि सृष्टि का सर्वनाश होने पर उस पर मृत्यु का ही अधिकार हो जाता है, सृष्टिवासियों का जीवन मृत्यु के कोष को समृद्ध करता है।

"अंधकार के·········रहस्य है नित्य।"

शब्दार्थ—अट्टहास=भयावह हँसी। सतत्=लगातार। चिरंतन=शाश्वत। मुखरित=ध्वनित।

भावार्थ—मृत्यु को सम्बोधित करते हुए मनु आगे कहते हैं कि तेरा अस्तित्व अन्धकार की भयावह हँसी अर्थात् घोर अन्धकार के समान होता है, क्योंकि जिस प्रकार अन्धकार सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को अपने अंक मे विलीन कर लेता है, उसी प्रकार तू भी किसी प्राणी को जीवित नही छोडती। तू ऐसा सत्य है जो शाश्वत रूप मे सुनाई देता है। भाव यह है कि तेरा अस्तित्व भूत-भविष्य और वर्तमान सभी कालो तथा स्थानों में रहता है। यह एक सुन्दर रहस्य है कि तू सृष्टि के कण-कण मे व्याप्त रहती है फिर भी दिखाई नही देती तथा उनका विनाश करती रहती है जिससे उन्हें नवजीवन प्राप्त होता है।

विशेष—अलंकार—उपमा।

"जीवन तेरा क्षुद्र·········उजाला में।"

शब्दार्थ—क्षुद्र=तुच्छ, नगण्य। अंश=भाग, टुकड़ा। व्यक्त=प्रकट।

घन-माला=मेघों की पंक्तियां। सौदामिनी=बिजली। संधि=मिलन।

भावार्थ—मनु मृत्यु को सम्बोधित करते हुए कहते है कि जगत् में व्याप्त जीवन भी तो तेरा ही तुच्छ-क्षुद्र अंश है, जिसकी स्थिति ठीक उसी प्रकार होती हे जैसे श्याम मेघ-राशि मे क्षण भर के लिए बिजली चमक उठती है और पुनः उसी मेघ-राशि मे विलीन हो जाती है—कवि का अभिव्यंग्य यह है कि मृत्यु का अस्तित्व मेघराशि के समान है, जबकि उसकी तुलना मे जीवन की स्थिति पलभर के लिए चमक जाने वाली बिजली के समान होती है। बिजली के समान ही जीवन भी क्षणभर को अपनी आभा बिखेरकर पुनः मृत्यु रूपी श्याम मेघराशि में विलीन हो जाता है।

विशेष—अलंकार—उपमा।

"पवन पी रहा……के पास।"

शब्दार्थ—निर्जनता=वीरानगी। प्रतिध्वनि=अनुगूंज।

भावार्थ—आरंभ मे मनु चिन्ताग्रस्त दशा मे देवजाति के विनाश के विषय में चिन्तन-लीन ही थे, किन्तु अंततः वे मृत्यु को सम्बोधित करते हुए बड़बड़ाने भी लगे थे। इस प्रकार मनु के मुख मे निकली ध्वनियाँ वायु में मिश्रित होकर वहाँ पर जो पूर्ण वीरानगी और शांति छाई हुई थी, उसको समाप्त कर रहे थे—निर्जनता की साँस उखड़ने लगी थी। भाव यह है कि निर्जनता के पैर लड़खड़ाने लगे थे। मनु मृत्यु को सम्बोधित करते हुए जो बातें कह रहे थे, उनके वे शब्द हिम-शिलाओं से टकराकर दीनताभरी गूंज के रूप मे परिणत हो जाते थे।

विशेष—अलंकार—पवन द्वारा शब्दों के पीने, निर्जनता की साँस उखडने में मानवीकरण।

"धू-धू करता………थे भृत्य।"

शब्दार्थ—धू-धू=भयंकर रूप में। अनस्तित्व=विध्वंस, सर्वनाश। आकर्षण-विहीन=आकर्षण शक्ति खो बैठे थे। विद्युत्कण=अणु-परमाणु आदि। भारवाही=बोझा ढोने वाली। भृत्य=सेवक।

भावार्थ—कवि अपनी ओर से कथावस्तु में हस्तक्षेप करता हुआ कहता है कि विनाश-लीला का जो क्रूर चक्र चलना आरम्भ हुआ था वह अभी समाप्त नहीं हुआ था, किन्तु भयंकर शब्द करते हुए अब भी विध्वंस-लीला चल रही थी—जल-प्लावन सृष्टि को तहस-नहस किए जा रहा था। पंचभूतों के भैरव मिश्रण के कारण ग्रह-नक्षत्र अपनी आकर्षण शक्ति खो बैठे थे तथा अणु और परमाणु भी सृष्टि-रचना में सहायक न होकर भाड़े के टट्टुओं—बोझा ढोने वाले

सैन्यों के समान विध्वंस के इंगितों पर नृत्य करते फिरते थे।

विशेष—अलंकार—प्रथम दो पंक्तियों में ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार है। अन्तिम पक्तियों मे रूपक अलंकार है।

"मृत्यु सदृश·······थी वृष्टि।"

शब्दार्थ—परम-व्योम=महदाकाश। कुहासों=कुहरा। आलिंगन पाती थी=अनुभव होता था।

भावार्थ—उस विनाश-लीला पर जिधर भी दृष्टि डालिए उधर ही मृत्यु की जैसी शांति, शीतलता और निराशा अनुभव होती थी। किन्तु वातावरण मे शनैः-शनैः यह परिवर्तन अवश्य आने लगा था कि आकाश मे भौतिक कणों अर्थात् पृथ्वी या जल के कणो जैसी घने कुहरे की वर्षा होने लगी थी—चारों ओर सघन कुहरा छाने लगा था।

विशेष—अलंकार—उपमा। 'आलिंगन पाती थी दृष्टि' में प्रयोजनवती शुद्ध लक्षण-लक्षणा शब्द शक्ति है।

"वाष्प बना······· होता प्रातः।"

शब्दार्थ—वाष्प=भाप। जल-संघात=जल की अपार राशि। सौर-चक्र=चंद्र-सूर्य, पृथ्वी, मंगल आदि ग्रहों का मंडल। आवर्तन=घूमना, चक्कर लगाना। प्रलय-निशा=प्रलय रूपी रात्रि।

भावार्थ—कवि कहता है कि जल-प्लावन के समय सृष्टि में सर्वत्र जो जल ही जल व्याप्त हो गया था वह शनैः-शनैः भाप बनकर उड़ता जा रहा था—जल का परिमाण कम होने लगा था और वही कुहरे के रूप में आकाश में छाने लगा था। सौर्य-मंडल के ग्रह-उपग्रह अपनी-अपनी गति को प्राप्त करते हुए चक्कर लगाने लगे थे, जिससे यह आशा बँधने लगी थी कि अब प्रलय रूपी रात्रि समाप्त होने वाली है और सृष्टि (रचना) रूपी प्रभात का उदय होने वाला है। भाव यह है कि प्रलय की समाप्ति और पुनः सृष्टि-विकास की आशा बँधने लगी थी।

विशेष—प्रथम दो पंक्तियाँ इससे पूर्व की चतुष्पदी की अन्तिम दो पक्तियों से सम्बन्धित हैं, जिन्हें मिलाकर इनमें सन्देह अलंकार है। 'प्रलय-निशा' में रूपक अलकार है। 'प्रलय-निशा का होता प्रात' में प्रयोजनवती शुद्धा उपादान लक्षणा है।

३. श्रद्धा-सर्ग

कथासार—सृष्टि-प्रलय और देवजाति के विनाश को देखकर मनु चिन्तित हैं किन्तु शनै:-शनै: उनके हृदय में प्राकृतिक-परिवर्तन को देखकर आशा का संचार होता है कि अचानक हिमालय-क्षेत्र में विचरण करती हुई श्रद्धा मनु के समीप आकर पूछ बैठती है—हे मनुष्य ! तुम कौन हो जो इस निर्जन-विजन में चुप-चाप बैठे अपनी प्रभा-दीप्ति मे चारों ओर प्रकाश फैला रहे हो। यद्यपि तुम मेरे लिए नितान्त अपरिचित हो तद्यपि तुम्हारे मुख पर छाए भावों को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि तुम मेरे लिए एक रहस्यमय प्राणी हो। मनु ने जब श्रद्धा का यह मधुर स्वर सुना तो उन्हें ऐसा लगा जैसे कोई मधुकरी मधुर गुंजार कर रही हो। मनु लुटे हुए से उसके मुख की ओर निरखने लगे एवं अपने कौतूहल को मौन न रख सके। उन्होने एक लम्बी काया को, जो हृदय की साकार अनुकृति थी, अपने सम्मुख खड़े पाया। श्रद्धा ने अपने कोमल शरीर पर नील रोम वाले मेषों का चर्म धारण किया हुआ था। नील परिधान के बीच में उसका कोमल अधखुला अंग ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मेघों के मध्य गुलाबी रंग का बिजली का फूल खिल गया हो। उसके बाल घुघराले थे जो कंधो तक आकर चंद्रमुख को घेरे हुए थे। मनु श्रद्धा के अप्रतिम सौंदर्य से इस प्रकार विस्मय-विमुग्ध हो उठे। श्रद्धा के शब्दों ने, ऐसा लगा, मनु को रोमांचित कर उन्हें नया जीवन प्रदान किया। उन्होंने श्रद्धा के प्रश्न के उत्तर में अति विनम्रता में कहा—"मैं एक अभागा व्यक्ति हूँ, जीवन के निर्दिष्ट लक्ष्य से हीन, हतभाग्य। पहेली से व्यस्त जीवन की समस्या को सुलझाने का अभिमान लिए विस्मृति के मार्ग पर अनजान बनकर चल रहा हूँ। मैंने अपने नेत्रों से सृष्टि-प्रलय एवं देवजाति के विनाश को प्रत्यक्षत: देखा है। मुझे यह पूर्णत: निश्चित हो गया है कि जीवन का अन्त सदैव घोर निराशा में होता है।" और इस प्रकार श्रद्धा और मनु दोनों का पारस्परिक परिचय होता है। श्रद्धा मनु को समझाते हुए कहती है—"हे तपस्वी ! तुम इतने क्लान्त क्यों हो ? वेदना का यह कैसा वेग है ? तुम इतने हताश क्यों हो ? क्या तुम्हारे हृदय में जीवन की लालसा शेष नहीं रह गई है ? भले ही तुम्हारा अतीत दु:खमय रहा हो किंतु भविष्य तो स्वर्णिम हो सकता है। जीवन का उद्देश्य वैराग्य तो नहीं हैं। काम मंगल से मण्डित श्रेय

को जीवन में अपनाओ और उसे सार्थक बनाओ।" श्रद्धा के मुख से प्रेरणायुक्त बातों को सुनकर मनु का दुःखावेग कम नहीं हुआ तो श्रद्धा ने उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि इस प्रकार निराश होने से काम नही चल सकेगा। तुम जीवन के दाव को हार बैठे हो। वीर व्यक्ति तो मरकर इसको जीतते हैं। जीवन का सत्य मात्र तप करने में तो नही है। काम-जन्य आशा का आह्लाद भी तो अपना महत्व रखता है। प्रकृति के यौवन का शृंगार कभी भी बासी फूल नही कर सकते और न ही प्रकृति पुरातनता के निर्मोक को सहन करती है। वास्तव में परिवर्तन तो प्रकृति का शाश्वत नियम है और इसी से आनंद की उपलब्धि होती है। अतः तुम पुरुषार्थी बनकर जीवन को जीओ। इसमें मेरा पूर्ण सहयोग तुम्हें मिलेगा। मैं वचन देती हूँ कि आज से मैं अपने को आपको समर्पित कर रही हूँ। मुझे विश्वास है कि मेरा साथ पाकर तुम संसार के सभी सुखों का भली प्रकार उपभोग कर सकोगे। इस प्रकार श्रद्धा ने मनु को उत्प्रेरित करते हुए कर्मक्षेत्र में अवतरित किया। उनके जीवन मे आशा की किरण जगमगाई।

"कौन तुम ?..............अभिषेक।"

शब्दार्थ—संसृति=संसार। जलनिधि=समुद्र; सागर। तीर=किनारा। तरंगों=लहरों। निर्जन=विजन; एकान्त। प्रभा=शोभा; कांति। अभिषेक=राजतिलक; शोभाशाली बनाना।

भावार्थ—एक दिन मनु जब सृष्टि के प्रलय और देव-जाति के विनाश को देखकर चिन्ताकुल अवस्था में बैठे थे तभी अचानक किसी ने आकर उनसे पूछा—समुद्र-लहरे जिस प्रकार अपने थपेड़ों से मणियों को समुद्र के गर्भ से निकालकर किनारे पर फेंक देती है उसी प्रकार संसार-सागर के थपेड़ों को खाकर इस शून्य एवं निर्जन प्रदेश में रह रहे व्यक्ति तुम कौन हो ? जिस प्रकार मणि की कान्ति संपूर्ण वातावरण को आलोकित-प्रकाशित कर देती है उसी प्रकार तुम भी मौन बैठे हुए इस निर्जन एवं एकांत प्रदेश को जगमगा रहे हो। अपनी सुन्दरता से इस निर्जन को शोभाशाली बना रहे हो।

विशेष—(१) निर्जन-प्रदेश में मनु को मौन बैठे हुए देखकर श्रद्धा के मन में जिज्ञासा एवं कौतूहल का भाव जाग्रत होना स्वाभाविक ही है। मनु की यौवन-गत दृढ़ता एवं तेजस्विता भी ध्यातव्य है।

(२) अलंकार—रूपक और परिकर।

(३) यहाँ शृगार छंद का प्रयोग हुआ है।

(४) 'मणि' में लिंगत्व दोष है।

"मधुर विश्रान्त............मन का आलस्य ।"

शब्दार्थ—मधुर=मधुरता से युक्त। विश्रान्त=थके हुए। एकान्त=अकेले; नीरवता से पूर्ण। जगत=संसार। रहस्य=भेद। मौन=चुप; शान्ति।

भावार्थ—श्रद्धा मनु से कहती है—हे अपरिचित व्यक्ति ! तुम्हारी आकृति मधुरता से पूर्ण है, चिन्ताग्रस्त होने के कारण तुम थके हुए हो और इस एकान्त वातावरण मे ऐसे शान्त भाव से बैठे हुए हो जैसे संसार के संपूर्ण रहस्यों को तुमने भली प्रकार से जान लिया है। तुम्हारे चुप और शान्त रहने से जहाँ तुम्हारी वाह्य सुन्दरता का आभास मिलता है वहाँ यह भी भलीभाँति स्पष्ट हो रहा है कि तुम्हारा हृदय करुणा से आपूरित है और तुम्हारे मन की सम्पूर्ण चंचलता ने आलस्य अथवा अकर्मण्यता का रूप धारण कर लिया है। मन की चंचलता शान्त हो गई है।

विशेष—(१) प्रो० विश्वम्भर मानव के शब्दों में, मन को अशान्त रखने वाले दो कारण हैं—लोक में नारी के रूप का आकर्षण जो मन को चंचल रखता है और अध्यात्म के क्षेत्र में इस तत्व की जिज्ञासा कि यह ससार क्या है ? इसकी उत्पत्ति क्यों हुई ? आदि। जब रूपासक्ति मिट जाती है और अपने तथा सृष्टि के स्वरूप का ज्ञान प्राणी को हो जाता है तब एक अपूर्व शांति की उपलब्धि उसे होती है। यहाँ मनु के मुख पर शात की झलक पा यह समझ लिया गया है इसका मन अचंचल है और तत्व ज्ञान इसे हो चुका है।

(२) अलंकार—(i) निरंग रूपक—रहस्य, मौन, आलस्य में।
(ii) विशेपण विपर्यय—'करुणामय सुन्दर मौन' में।
(iii) विरोधाभास—'चंचल मन का आलस्य' में।

"सुना यह मनु............ज्यों सुन्दर छंद ।"

शब्दार्थ—मधु=मधुर; मीठी। गुजार=आवाज; ध्वनि। मधुकरी=भ्रमरी; भौरी। प्रथम कवि=आदि कवि वाल्मीकि।

भावार्थ—कवि का कहना है कि जब मनु ने श्रद्धा की मधुर वाणी सुनी तो उन्हें परम आनन्द की उपलब्धि हुई। उस समय मनु को श्रद्धा की वाणी ऐसी जान पड़ रही थी जैसे कोई भ्रमरी मधुर गुजार कर रही हो। दूसरे शब्दों मे, श्रद्धा के उस स्वर मे भ्रमरी के स्वर जैसी मिठास थी और वह वाणी अनायास ही ऐसे निकल पड़ी थी जैसे क्रौंच-वध को देखकर महर्षि वाल्मीकि का स्वर कविता के रूप में प्रस्फुटित हो गया था।

विशेष—(१) प्रस्तुत छंद में कवि ने श्रद्धा के मुख से निकले मधुर स्वर का सादृश्य आदि कवि वाल्मीकि के मुख से निकले निम्न छंद से किया है :

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

अर्थात् हे निषाद ! तुझे जीवन-पर्यन्त कभी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होगी, क्योंकि तूने काम-क्रीडा में निमग्न क्रौंच के जोड़े में से एक पक्षी का वध कर डाला है ।

(२) अलंकार—उपमा ।

"एक झटका-सा············फिर मौन ।"

शब्दार्थ—झटका-सा लगा=धक्का लगना; शरीर मे बिजली सी दौड़ना। सहर्ष=प्रसन्नता के साथ। निरखने=देखने । लुटे-से=आश्चर्यचकित-से; हक्के-बक्के-से । कुतूहल=कौतूहल; उत्सुकता ।

भावार्थ—श्रद्धा की मधुर वाणी को सुनकर मनु हक्के-बक्के रह गए। उन्हें आश्चर्य हुआ और साथ ही एक प्रकार के आनन्द की भी अनुरति हुई; शरीर में बिजली-सी दौड़ गई और वह जानने के लिए आकुल हो उठे कि यह मधुर वाणी किसकी है ? उस मधुर वाणी को सुनते ही मनु का मौन टूट गया। दूसरे शब्दों में, अपने मन की उत्सुकता को वह अधिक समय तक दबा रखने में असमर्थ रहे ।

विशेष—(१) प्रस्तुत छद में कवि ने मनु की स्थिति और हतप्रभता का मनोवैज्ञानिक रूप मे वर्णन किया है ।

(२) 'सुंदर संगीत' में उपादान लक्षणा है ।

(३) अलंकार—विशेषण विपर्यय—अन्तिम पंक्ति में ।

"और देखा वह······ ·····लिपटा घनश्याम ।"

शब्दार्थ—अभिराम=सुन्दर; आकर्षक। इन्द्रजाल=जादू । कुसुम-वैभव =पुष्प-भार से लदी हुई। चन्द्रिका=चन्द्र ज्योत्स्ना । घनश्याम=बादल ।

भावार्थ—जिज्ञासा की परितुष्टि हेतु जब मनु ने ऊपर की ओर देखा तो उन्होंने एक सुन्दर मूर्ति को देखा जो श्रद्धा थी । उनको श्रद्धा के नेत्रों मे आकर्षण का जादू जान पडा। अर्थात् श्रद्धा की आँखें बड़ी ही आकर्षक थी । श्रद्धा का शरीर ऐसा था जैसे पुष्पों के भार से लदी हुई कोई लता हो अथवा कोई श्याम बादल चन्द्र-ज्योत्स्ना से घिरा हुआ हो ।

विशेष—(१) यहाँ श्रद्धा के अतीन्द्रिय सौंदर्य का सुन्दर वर्णन हुआ है ।

(२) प्रो० विश्वम्भर मानव के शब्दों मे, 'चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम' से यह भ्रम न होना चाहिए कि प्रसाद की श्रद्धा श्याम वर्ण की थी। नीले रोम वाले चर्मखण्डों से उसका शरीर ढका था, इसी से 'घनश्याम' शब्द लाए हैं।

(३) अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—दृश्य, इन्द्रजाल, घनश्याम के आरोप में।

(ii) उपमा—लता समान मे।

"हृदय की अनुकृति·········सौरभ संयुक्त।"

शब्दार्थ—अनुकृति=प्रतिकृति; नकल। बाह्य=बाहरी अंग; शारीरिक सौदर्य। काया=शरीर। उन्मुक्त=खुला हुआ; स्वच्छन्द। मधु पवन=बसंत ऋतु मे प्रवाहित होने वाली वायु। क्रीड़ित=खेलता हुआ; क्रीड़ा करता हुआ। शिशु साल=शाल का छोटा वृक्ष। सौरभ संयुक्त=सुगंधि से परिपूर्ण।

भावार्थ—कवि प्रस्तुत छंद में श्रद्धा के शारीरिक सौदर्य का अंकन करते हुए कह रहा है—श्रद्धा का बाह्य शारीरिक सौदर्य वैसा ही प्रभावी और आकर्षक था जैसाकि उसका हृदय। दूसरे शब्दों में, उसका बाह्य शरीर और उसका सौदर्य हृदय की सच्ची प्रतिकृति था। हृदय के आन्तरिक भाव ही बाह्य शरीरांगों के रूप मे दीप्त थे। उसकी काया भी पर्याप्त लम्बी थी। हृदय की उदारता और विशालता के समान ही उसका शरीर भी विस्तृत और लम्बा था। श्रद्धा के शरीर से भीनी-भीनी सुगंध आ रही थी और साथ ही मधुरता से युक्त होने के कारण वह अत्यन्त प्रभावपूर्ण दीख पड़ता था जैसे कोई छोटा-सा शाल का वृक्ष हो जिससे गंध फूट रही हो और जो सरस पवन के झोंकों से झूमता हुआ अत्यन्त प्रिय जान पड़ता था।

विशेष—(१) 'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार' के द्वारा कवि ने श्रद्धा के हृदय की उदारता, विशालता, गम्भीरता, मधुरिमा, ममता, अगाध विश्वास आदि उदात्त भावों की ओर संकेत किया है।

(२) ऋग्वेद मे भी श्रद्धा का सम्बन्ध हृदय से जोड़ा गया है। यथा—

श्रद्धां हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु।

(३) अलकार—उपमा।

"मसृण गान्धार देश·········वह कोमल वर्म।"

शब्दार्थ—मसृण=चिकने। गान्धार देश—कंधार देश (अफगानिस्तान स्थित)। मेषों—भेड़ों। चर्म=खाल। वपु=शरीर। कान्त=सुन्दर। वर्म=कवच।

भावार्थ—गांधार प्रदेश में उत्पन्न होने वाली भेड़ों की नीले रोम वाली चिकनी खाल से उस सुन्दरी श्रद्धा का शरीर भली भांति ढका हुआ था, जिसके कारण वह और भी अधिक आभायुक्त हो रही थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो श्रद्धा ने अपने लावण्य एवं आभा से युक्त शरीर के विभिन्न अवयवों की रक्षा के हेतु मेषों की चर्म को रक्षा-कवच के रूप मे धारण कर लिया हो।

विशेष— (१) 'मेष चर्म' की एक कवच के रूप मे कवि ने एक सुन्दर कल्पना की है।

(२) अलंकार—गम्योत्प्रेक्षा।

"नील परिधान बीच............देता हो छविधाम।"

शब्दार्थ—परिधान=वेशभूषा; वस्त्र। मृदुल=कोमल। मेघ=नीले बादल। व्योम=आकाश। घनश्याम=काले बादल। अरुण=लाल। रवि-मण्डल=सूर्य मण्डल। छविधाम=अपार सौंदर्य से युक्त।

भावार्थ—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने श्रद्धा के अपार सौंदर्य का वर्णन किया है। कवि का कहना है—श्रद्धा अपने शरीर पर गांधार देश के नीले मेषों के चर्म को धारण किए हुए थी। उसकी इस नीलवर्णी वेशभूषा में श्रद्धा का कोमल और अधखुला अंग अत्यन्त ही चित्ताकर्षक लग रहा था। श्रद्धा के इस अनिंद्य रूप-सौंदर्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेघों के समूह के मध्य गुलाबी रंग का बिजली का फूल खिल रहा हो।

श्रद्धा के मुख का तो कहना ही क्या! वह तो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो पश्चिम के आकाश मे काले बादल घिर आए हों और उन्हें भेदता हुआ अरुणिमायुक्त सूर्यमण्डल प्रभासित हो रहा हो।

विशेष—(१) प्रो० विश्वम्भर मानव का कथन है—"यहाँ नील रोओं वाले चर्म-खण्डों के लिए बादल और उनसे अनावृत—जैसे ग्रीवा के नीचे या नाभि के आसपास के अंग के लिए 'बिजली के फूल' आया है। श्रद्धा ने कंधों, वक्ष और कटिप्रदेश को ही केवल ढका होगा। यह उदाहरण कितना उपयुक्त और रम्य है।"

(२) 'आह' शब्द के द्वारा कवि ने श्रद्धा के मुख के अद्वितीय सौंदर्य की ओर संकेत किया है।

(३) अलंकार—(i) वस्तूत्प्रेक्षा—'खिला हो ज्यो बिजली का फूल' में।
(ii) रूपक—'मेघवन बीच गुलाबी रंग' में।

(४) संश्लिष्ट बिम्ब-योजना ध्यातव्य है।

(५) प्रथम छंद से मिलाइए :

सुसूक्ष्मेणोत्तरीयेण मेघवर्णेन राजता।
तनुरभ्रावृता व्योम्नि चन्द्रलेखेव गच्छति ।। —कालिदास

अर्थात् अत्यन्त महीन मेघ के समान श्याम रंग की सुन्दर ओढनी ओढे तन्वगी उर्वशी आकाश में बादलों से ढकी हुई चंद्रलेखा-सी चली जा रही थी।

"या कि, नव············में अश्रान्त।"

शब्दार्थ—इन्द्रनील=नीलम। लघु शृंग=पर्वत की छोटी चोटी। कान्त=सुन्दर। अचेत=शान्त; विस्फोट रहित। माधवी रजनी=बसन्त ऋतु की रात्रि। अश्रान्त=निरन्तर; लगातार।

भावार्थ—प्रस्तुत अवतरण में कवि पश्चिम के आकाश में घिरे काले बादलों और उन्हे भेदते हुए अरुणिमायुक्त सूर्यमण्डल से प्रभासित मुख (श्रद्धा का) का वर्णन करते हुए कह रहा है कि श्रद्धा के मुख की शोभा वैसी ही जान पड़ती थी जैसे कि छोटा-सा ज्वालामुखी नीलम के छोटे-से एवं शान्त पर्वत की किसी नवीन और छोटी-सी चोटी को फोडकर धधक रहा हो। ऐसी थी वसन्त रात्रि मे उसके मुख की अपार शोभा !

विशेष—(१) प्रस्तुत छद के विपय मे एक विद्वान् आलोचक का कथन है—"श्रद्धा की अवस्था थोड़ी है, इसीसे उसे छोटा-सा पर्वत कहा। नील परिधान से उसका शरीर ढका है, इसीसे उस पर्वत को नीलम का बताया। चोटी शब्द का प्रयोग उसके कंधे से ऊपर के भाग के लिए किया। श्रद्धा का यौवन काल है। इसी से उस पर्वत को वसन्त की रात में धधकते देखा। ज्वालामुखी की कान्त लपटों को उसके मुख की आभा बताया। पर श्रद्धा ने अभी कही प्रेम नही किया है, यही कारण है कि उसके अन्तर के ज्वालामुखी (उद्दाम भावनाओ) को अचेत या सुप्त दिखलाया।"

(२) सादृश्य-योजना ध्यातव्य है।

अलंकार—सन्देह एवं वस्तूत्प्रेक्षा।

"घिर रहे थे············विधु के पास।"

शब्दार्थ—अंस=कन्धा। अवलम्बित=लटके हुए; सहारा लिए हुए। घन शावक=छोटे-छोटे बादल। विधु=चन्द्रमा। सुधा=अमृत।

भावार्थ—श्रद्धा के उस सौंदर्यपूर्ण मुख के समीप ही कोमल और घुंघराले बाल दोनो कंधो का सहारा लिए हुए थे और पीछे की ओर को लटके हुए थे। कोमल और घुंघराले नीले बालों से घिरा हुआ मुख ऐसा प्रतीत होता था जैसे छोटे-छोटे बादल अमृत का पान करने हेतु चंद्रमा के समीप आ गए हों।

विशेष—(१) यहाँ घुंघराले श्याम बालों के लिए नील घन शावक, मुख के लिए विधु, और मुख की मधुरता की अभिव्यक्ति के हेतु 'सुधा' शब्द का प्रयोग हुआ है।

(२) प्रस्तुत छंद मे रंग, गुण और प्रभाव साम्य स्पष्ट देखा जा सकता है।

(३) 'नील घन शावक' मे पशु-विम्ब है।

(४) अलंकार—पूर्णोपमा।

"और उस मुख········हो अभिराम।"

शब्दार्थ—मुसक्यान=मंद-मंद मुस्कराहट। रक्त=लालिमापूर्ण। किसलय=कमल; कोमल-कोमल पत्तियाँ। अरुण=प्रात.कालीन सूर्य। अम्लान=स्वच्छ; स्पष्ट। अलसाई=आलस्य मे पड़ी हुई। अभिराम=सुन्दर।

भावार्थ—मनु को देखकर श्रद्धा के अधरों पर मंद-मंद मुस्कराहट विकीर्ण हो गई थी। श्रद्धा के मुख पर आई वह मुस्कान इतनी स्वाभाविक और प्राकृतिक थी कि कहा नही जा सकता। उसके लालिमापूर्ण अधरो पर वह मुस्कान बड़ी ही भव्य और विशेष रूप से कान्तिमान हो रही थी। उस मुस्कराहट को अवलोक कर ऐसा जान पड़ता था मानो प्रात:कालीन लालिमायुक्त सूर्य की उज्ज्वल किरणें नई-नई कोपलों पर विश्राम कर रही हों और वहीं अंगड़ाई लेती हुई अलसा रही हो।

विशेष—(१) प्रो० विश्वम्भर मानव ने इस छद के सौंदर्य पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—"यहाँ अरुण अधर के लिए रक्त किसलय और मुसिकान की रेखा के लिए उज्ज्वल किरण का प्रयोग हुआ है। ऐसी कल्पना तो कोई सामान्य कवि भी कर लेता। पर जैसे शयन करती कोई गौरवर्णी कोमलांगी रमणी आकर्षक लगती है, उसी प्रकार प्रसाद जी ने किसलय पर उजली किरण को अलसाते देखा और इधर अधर पर मुसिकान को रुकते।"

(२) सादृश्य-योजना दृष्टव्य है।

(३) अलंकार—मानवीकरण और वस्तुत्प्रेक्षा।

"नित्य यौवन छवि········जड़ में स्फूर्ति।"

शब्दार्थ—नित्य यौवन=शाश्वत अथवा चिरस्थायी रहने वाला यौवन। छवि=सौंदर्य। दीप्त=झलकना; देदीप्यमान; सुशोभित। करुण कामना मूर्ति=करुणा से युक्त कामना की सजीव मूर्ति। स्पर्श का आकर्षण=चिरकाल तक अपने समीप रखने की अभिलाषा जागृत करने वाली। जड़=चेतनाहीन; भावना विहीन। स्फूर्ति=चेतना; जागृति; कर्मण्यता।

भावार्थ—श्रद्धा का अनिद्य सौदर्य नित्य एवं शाश्वत यौवन की छवि से देदीप्यमान था। वह कभी भी नष्ट होने वाला नही था। उसमें स्थायित्व था, चित्त को आर्कषित करने वाला था। उसके रूप में ऐसा लगता था कि सारे संसार की करुण भावना ने ही शरीर धारण कर लिया हो। दूसरे शब्दों में, श्रद्धा संसार की करुण-कामना से युक्त थी। जो भी उसकी अलौकिक छवि का दर्शन करता था उसके मन में आलिंगन या स्पर्श का भाव स्वभावतः ही जाग्रत हो जाता था। श्रद्धा के उस अलौकिक सौदर्य में इतनी शक्ति विद्यमान थी कि उसके स्पर्श मात्र से ही जड़ वस्तुएं चेतनायुक्त हो जाती थी।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने श्रद्धा को 'नित्य यौवन छवि से दीप्त' कहकर उसे 'विश्व की करुण-कामना मूर्ति' कहा है। ऋग्वेद में भी हमें श्रद्धा का चित्रण ऐसे ही स्फूर्तिदायक रूप में मिलता है। श्रद्धा-सूक्त में खिला है—

श्रद्धयाग्निः समिद्ध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे विदासतः।
प्रियं भोगेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि।
श्रद्धां देव यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्याऽऽकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥

(२) **अलंकार**—रूपक, विरोधाभास और उत्प्रेक्षा।

"उषा की पहिली········द्युति की गोद।"

शब्दार्थ—लेखा=किरण। कान्त=सुन्दर; उज्ज्वल। माधुरी=मधुरिमा। भीगी=युक्त; डूबी हुई। भर मोद=प्रसन्नता से युक्त। मदभरी=मस्ती से भरी हुई। सलज्ज=लज्जा से पूर्ण। भोर=प्रातःकाल। तारक=तारागण। द्युति=प्रकाश।

भावार्थ—श्रद्धा का अनिद्य सौदर्य ऐसा लग रहा था जैसे प्रातःकालीन तारागणों के शात प्रकाश की गोद मे मधुरिमा से युक्त, प्रसन्नता से परिपूर्ण, मस्ती मे भरी हुई, लजीली जैसे उपा की प्रथम किरण उठती है, वैसे ही श्रद्धा के उस शान्त और अप्रतिम सौदर्य से युक्त मुख पर मधुरता, प्रसन्नता, मस्ती से भरी लजीली मुस्कान परिव्याप्त थी।

विशेष—(१) यहाँ प्रयुक्त प्रकृति-विम्व का प्रयोग द्रष्टव्य है।
(२) **अलंकार**—वस्तूत्प्रेक्षा और मानवीकरण।

"कुसुम कानन·················मधु का आधार।"

शब्दार्थ—कुसुम=पुष्प; फूल। कानन अंचल=वन प्रदेश; वन-खण्ड। मंद=धीमी-धीमी। पवन-प्रेरित=पवन के चलने से। सौरभ=सुगंधी। साकार=दिखाई देना। रचित परमाणु पराग=पुष्पों के मकरन्द कणों से वना हुआ। ले मधु का आधार=पुष्प रस में सान कर वनाया गया।

भावार्थ—श्रद्धा के नित्य यौवन छवि से दीप्त शरीर से नारी-सुलभ स्वाभाविक सुगंधि विकीर्ण हो रही थी। साथ ही उसके अलौकिक दिव्य मुख पर उज्ज्वल मुस्कान भी व्याप्त थी। अतः उन्हे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह श्रद्धा पुष्पों से लदे हुए वन-प्रदेशो में से वसंत की मंद-मंद सुगंधित समीर को साकार रूप में वहाकर लाई हो। उसके शरीर का निर्माण पुष्प रस में सान कर पराग के परमाणुओं मे किया गया हो—ऐसा आभासित होता है।

विशेष—वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।

"और पड़ती हो···········सदृश अवाध।"

शब्दार्थ—शुभ्र=श्वेत; उज्ज्वल; निर्मल। नवल=नवीन। मधुराका= वसंत ऋतु की पूर्णिमा की चांदनी रात। मन की साध= मन को प्रिय; मन को अच्छी लगने वाली। मद विह्वल प्रतिविम्व=मस्ती एवं चंचलता की साकार प्रतिमा। मधुरिमा=माधुर्य से भरी हुई। खेला=खेल। सदृश=समान। अबाध=बाधारहित; निर्विघ्न।

भावार्थ—प्रस्तुत छंद मे कवि श्रद्धा के मुख की छवि का वर्णन करता हुआ कह रहा है—और उस पर मन को प्रिय लगने वाली वसन्त रजनी की नवीन, उज्ज्वल एवं निर्मल पूर्णिमा की अत्यन्त मनमोहक एवं चित्ताकर्षक चन्द्रिका पड़ रही हो! उस झलक में मकरन्द से युक्त सुगंध की वह उज्ज्वल लहर जैसी लगती श्रद्धा के सुरम्य अधरों की छवि—ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वयं मधुरिमा ही आकर अवाध क्रीडा करने मे संलग्न हो।

विशेष—(१) उपर्युक्त दोनो छंद मे कवि ने श्रद्धा के सौन्दर्य का एक अतीन्द्रिय एवं अपार्थिव चित्र मार्मिक और प्रभावी रूप मे अंकित किया है।

(२) **अलंकार**—उपमा और वस्तूत्प्रेक्षा।

(३) श्रद्धा के अतीन्द्रिय सौदर्य की तुलना तुलसीदास के निम्न चित्रण से देखिए·

जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारु। मथै पानि पंकज निज मारु॥

एहि बिधि उपजै सलच्छि जब सुन्दरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय समतूल ॥

"कहा मनु ने············हूँ असहाय ।"

शब्दार्थ—नभ=आकाश । धरणी=पृथ्वी । रहस्य=पहेली; उलझन । निरुपाय=जिसका कोई उपाय न हो । उल्का=टूटा तारा; प्रज्वलित । भ्रान्त=भटकता हुआ; इधर उधर भटकने वाला । शून्य=आकाश; निर्जन प्रदेश । असहाय=वेसहारा; निराश्रित ।

भावार्थ—उस अतीन्द्रिय एवं अपार्थिव सौदर्यमयी श्रद्धा का प्रश्न सुनकर तथा उसे परिचय जानने के लिए अपने समीप खड़ा देखकर मनु कहने लगे—इस आकाश और पृथ्वी के मध्य मेरे जीवन की उलझन दूर होने का कोई उपाय दिखाई नही देता है। मेरा यह एकाकी जीवन अभी तक पहेली ही बना हुआ है। जिस प्रकार टूटा हुआ तारा निराश्रित होकर आकाश में इधर-उधर भटकता फिरता है उसी प्रकार मैं अपनी अन्तर्वेदना को लेकर इस शून्य एवं निर्जन प्रदेश में भटकता फिर रहा हूँ और ऐसी स्थिति मे कोई भी मुझे सहारा देने वाला नही है।

विशेष—(१) प्रस्तुत छंद में कवि ने मनु को उलझनमयी स्थिति एवं दिनचर्या का यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

(२) अलंकार—पूर्णोपमा एवं श्लेप ।

"शैल निर्झर······ ···· ···हूँ पाषण्ड ।"

शब्दार्थ—शैल=पर्वत । निर्झर=झरना । हतभाग्य=अभागा; भाग्य-हीन । हिमखंड=वर्फ का टुकड़ा । जलनिधि=समुद्र । अंक=गोद । पाषण्ड=वंचक; ठग ।

भावार्थ—मनु अपना परिचय देते हुए अत्यन्त निराशाजनक शब्दों मे श्रद्धा से कहते हैं—हे अपरिचित रमणी ! मै तो उस अभागे पर्वत के समान हूँ जिससे कभी झरना नही फूटा है, मै उस अभागे बर्फ के टुकडे के समान हूँ जो कभी नही पिघल सका है और जिसके कारण समुद्र की गोद उसे प्राप्त नही हो सकी है। हाय ! संसार में आकर मेरा यह जीवन तो निरर्थक ही रहा है। कहने का आशय यह है कि मेरे जीवन का कोई लक्ष्य ही नही है। संसार के लिए मेरा यह निरर्थक जीवन प्रवंचक रूप ही रहा है।

विशेष—(१) प्रस्तुत छंद में कवि ने मनु के निरर्थक जीवन की तुलना पर्वत तथा वर्फ के टुकड़े से की है जो संसार के लिए सार्थक नही रहे है।

(२) अलंकार—लुप्तोपमा ।

"पहेली-सा············बनकर अनजान।"

शब्दार्थ—व्यस्त=उलझ हुआ। अभिमान=मिथ्याहंकार। विस्मृति=भूल; कुछ समझ मे न आना। चल रहा हूं=जीवन यापन कर रहा हूँ; दिन काट रहा हूँ। अनजान=अज्ञानी।

भावार्थ—मनु अपनी दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए श्रद्धा से कहते हैं—मेरा जीवन तो मात्र एक पहेली बनकर रह गया है और मैं इसी मे उलझ कर रह गया हूँ। मैं अहंकार के साथ इस पहेली को सुलझाने का—जीवन की समस्याओं को सुलझाने का—निरन्तर प्रयास करता हूँ किंतु कुछ समझ में ही नही आता। जीवन की समस्याएं सुलझने के बजाय और उलझती ही जाती है। यही कारण है कि अब मैं एक अनजान व्यक्ति की भाँति निरर्थक जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने मनु की उलझनग्रस्त स्थिति का स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रण किया है।

(२) अलंकार—पूर्णोपमा।

"भूलता ही जाता············का यह संगीत।"

शब्दार्थ—सजल=रमणीक; सुन्दर। अभिलाषा=इच्छाएं। कलित=युक्त; भरा हुआ। अतीत=भूतकाल; बीता हुआ समय। तिमिर गर्भ=अंधकार मे; निराशा का अंधेरा। नित्य=सदैव। संगीत=गान की तान।

भावार्थ—मनु अपने जीवन के विषय मे स्पष्ट करते हुए श्रद्धा से कहते हैं—मै अब रात-दिन अपने अतीतकाल को भूलता जा रहा हूँ—उस अतीतकाल को, जो आनन्द और उल्लास से परिपूर्ण था, जिसमें रंगीन अभिलाषाएं भरी हुई थी। मुझे ऐसा आभासित हो रहा है कि मेरा खोया हुआ अतीत अब लौटने वाला नही है। दूसरे शब्दो में, मेरे जीवन में पहले जैसी ही रगीन बहार आ जाएगी—इसकी मुझे तनिक भी आशा नही रह गयी है। यही कारण है कि मेरे इस असहाय जीवन के गान की तान नित्यप्रति अंधकार के गर्भ मे विलीन होती जा रही है। कहने का अभिप्राय यह है कि मेरा भविष्य अधकारमय होता जा रहा है।

विशेष—(१) प्रस्तुत छद मे कवि ने मनु की निराशाजन्य स्थिति का सजीव वर्णन किया है।

(२) अलंकार—रूपक और विशेषण-विपर्यय।

"क्या कहूँ············उजड़ा-सा राज।"

शब्दार्थ—उद्भ्रान्त=लक्ष्यहीन; भटका हुआ। विवर=बिल; गुफा;

अवकाश; खोखला। गगन=आकाश; शून्य। नील गगन का विवर=आकाश और पृथ्वी के मध्य का अन्तरिक्ष। शून्यता का उजड़ा-सा राज=अभावों से भरा हुआ राज।

भावार्थ—मनु अपने जीवन के विषय में स्पष्ट करते हुए श्रद्धा से कहते है—मैं अपने विगत और निरर्थक जीवन के विपय मे क्या कहूँ? कुछ कहा नही जाता। मै तो एक लक्ष्यहीन और दिशा विहीन व्यक्ति की भांति इस निर्जन प्रदेश में उसी प्रकार भटकता हुआ मारा-मारा फिर रहा हूँ जिस प्रकार अन्तरिक्ष में वायु की लहर इधर-उधर भटकती हुई मारी-मारी फिरती है। तुम मुझे उजड़े हुए और अभावों से भरे हुए राज की तरह समझो जिसके चारों ओर सूनापन व्याप्त हो गया है। इस प्रकार, मैं अपने इस जीवन के विपय मे क्या कह सकता हूँ?

विशेष—(१) मनु के लक्ष्य-भ्रष्ट एवं दयनीय जीवन का सजीव वर्णन हुआ है।

(२) अलंकार—उपमा।

"एक विस्मृति का............संकलित विलम्ब।"

शब्दार्थ—विस्मृति=विस्मरण; भूल। स्तूप=टीला; राशि; ढेर। ज्योति=प्रकाश। संकलित=इकट्ठा; एकत्रित। विलम्ब=देर में और देर; अत्यधिक देरी।

भावार्थ—मनु अपने जीवन की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए श्रद्धा से कहते हैं—मेरा यह अभावपूर्ण जीवन विस्मृति का एक चेतनाहीन ढेर-मात्र है, जिसे कुछ भी तो स्मरण नही रह गया है और सुन्दर भूतकाल की सभी बातें भूल गया है। मेरा यह जीवन तो प्रकाश के एक धुधले प्रतिबिम्ब के समान है जिसमें न तो किसी प्रकार का आनन्द और उल्लास ही शेष रह गया है और न ही भविष्य को उज्ज्वल और गौरवपूर्ण बनाने की कामना शेष रह गई है। मेरा जीवन तो जड़ता का जीता-जागता एक ढेर है। कारण, इसमें प्राण तो है किन्तु आशा-आकांक्षाएं सभी समाप्त हो गयी है। सफलता की कहीं कोई आशा अथवा संभावना नही रह गई है।

विशेष—(१) उपचार-वक्रता के माध्यम से मनु के भ्रमित और अनाश्रित जीवन का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

(२) अलंकार—मालोपमा।

"कौन हो तुम············हलचल शान्त।"

शब्दार्थ—बसन्त के दूत=बसन्तागमन की सूचना देने वाली कोयल; लक्षणा से अर्थ होगा—सुख की संभावना बंधाने वाले। विरस पतझड़=नीरसता से भरा पतझड़, लक्षणा से अर्थ होगा नीरस सूने जीवन मे। घन तिमिर=गहन अंधकार अर्थात् घोर निराशा। चपला की रेख=बिजली की रेखा; आशा की किरण। तपन=ग्रीष्मकाल; वेदना और व्यथा से भरा हुआ जीवन। शीतल मंद बयार=धीरे-धीरे चलने वाली ठण्डी हवा; कोमल एवं मधुर वाणी। नखत=नक्षत्र; तारागण। कान्त=कमनीय, उज्ज्वल; रमणीक। दिव्य=पवित्र। लहरी=लहर। मानस=मानसरोवर; चित्त।

भावार्थ—अब तक मनु ने श्रद्धा के सम्मुख अपने दयनीय जीवन का ही प्रस्तुतिकरण किया है किंतु वह आगन्तुका श्रद्धा के सम्बन्ध में भी जानने के लिए परम उत्सुक है। इसीलिए वह परिचय प्राप्त करने हेतु श्रद्धा को सम्बोधित कर कहते है—हे सुकुमारी! बतलाओ, तुम कौन हो? तुम्हारा परिचय जानने की मुझमें तीव्र उत्कण्ठा है! तुमने तो आकर ही मेरे नीरस सूने जीवन मे, आशा-आकाक्षा से रहित जीवन में सुख की अपार संभावना को भर दिया है। तुम्हारे आगमन मात्र से मेरा जीवन सरस हो उठा है। तुम्हारे द्वारा दिया गया आशा का संदेश ठीक वैसे ही है जैसे निर्जन प्रदेश मे नीरसता से भरे पतझर में कोयल का माधुर्यपूर्ण सगीत वसन्त के शुभ आगमन का समाचार सम्प्रेषित करता है। हे बाले! जिस प्रकार गहन अंधकार में बिजली की रेखा प्रकाश की किरण विकीर्ण कर वातावरण को तनिक देर के लिए आलोकित-प्रकाशित कर देती है उसी प्रकार तुम्हारे आगमन से मेरे घोर निराशापूर्ण जीवन में आशा की किरण चमक गयी है अर्थात् मुझे जीवन में सार्थकता का भान होने लगा है।

हे अपरिचित रमणी! जिस प्रकार एक निराश व्यक्ति को तारागणों में से आशा की किरण फूटती दिखाई देती है और उसी के सहारे वह व्यथामयी रात्रि को काट देता है उसी प्रकार तुम्हारी मधुर वाणी में भी मुझे जीवन जीने की आशा की किरण दिखाई पडती है। मात्र इतना ही नही, तुम्हारी मधुर वाणी मेरे हृदय की अशान्ति को उसी प्रकार शमित कर रही है जिस प्रकार कि कवि की कोमल कल्पना की दिव्य लहरी पाठकों के चित्त रूपी सरोवर की हलचल को समाप्त कर देती है, और कुछ समय के लिए वह रसविभोर हो साधारणीकरण की स्थिति को प्राप्त हो जाता है।

विशेष—(१) श्रद्धा के शुभ आगमन से मनु को प्राप्त होने वाले आनंद का वर्णन मार्मिक और हृदयस्पर्शी रूप में किया गया है।

(२) प्रतीकात्मक एवं लाक्षणिक शैली का प्रयोग हुआ है।

(३) कवि ने यहाँ श्रद्धा के लिए 'वसंत का दूत' शब्द का प्रयोग किया है जिसे फारसी प्रभाव ही कहा जा सकता है। फारसी मे प्रेमिका को पुलिंग रूप मे ही प्रयुक्त किया जाता है।

(४) **अलंकार**—उल्लेख, रूपकातिशयोक्ति, उपमा और श्लेष।

"लगा कहने आगन्तुक·········मधुमय संदेश।"

शब्दार्थ—आगन्तुक=आने वाला व्यक्ति, यहाँ श्रद्धा से अभिप्राय है। उत्कण्ठा=मन की जिज्ञासा; उत्सुकता। सविशेप=पूर्णरूप से। सुमन=पुष्प। मधुमय सन्देश=वसन्त की सूचना; आशा से भरा हुआ संदेश।

भावार्थ—जब मनु सृष्टि-प्रलय और देवजाति के विनाश को देखकर अत्यन्त व्यथा का अनुभव कर रहे थे तभी श्रद्धा आकस्मिक रूप मे वहाँ आ उपस्थित होती है। मनु उस आगन्तुका से प्रभावित हो उससे परिचय प्राप्त करना चाहते है तभी श्रद्धा मनु की सम्पूर्ण जिज्ञासा को शान्त करने के लिए कहने लगी। मनु के जिज्ञासायुक्त सुन्दर मन को आशा से भरा हुआ संदेश देने वाली श्रद्धा ऐसी जान पडती थी मानो कोकिल अपनी मधुर वाणी में सुमन को वसन्त के आगमन की शुभ सूचना दे रही हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत छंद की मार्मिकता और प्रेपणीयता ध्यातव्य है।

(२) **अलंकार**—श्लेष और वस्तूत्प्रेक्षा।

"भरा था मन·········प्यारी सतान।"

शब्दार्थ— नव=नया। ललित कला=वास्तु, चित्र, मूर्ति, संगीत और काव्य कला को ललित कला (Fine Arts) कहा जाता है। गंधर्व=एक जाति विशेप।

भावार्थ—श्रद्धा आत्मपरिचय देती हुई मनु को वतलाती है—मैं अपने पिता की प्यारी संतान हूँ। मेरे मन मे यह नया उत्साह भरा हुआ है कि इस गंधर्व देश में रहकर मैं ललित कला—वास्तु, चित्र, मूर्ति, संगीत और काव्य—का भली प्रकार ज्ञान प्राप्त कर लू।

विशेष—(१) गधर्व देश का वर्णन पुराणो में स्थान-स्थान पर मिलता है।

(२) श्रद्धा का ललित कला के ज्ञान की प्राप्ति की ओर संकेत किया गया है।

"घूमने का मेरा............सुन्दर सत्य ।"

शब्दार्थ—मुक्त व्योमतल=खुले हुए आकाश के नीचे। कुतूहल=कौतूहल; जिज्ञासा; आश्चर्य की भावना। व्यस्त=लगे हुए; तल्लीन। हृदय-सत्ता=भाव-जगत्।

भावार्थ—इधर गंधर्व देश में रहते हुए खुले आकाश के नीचे मैं नित्यप्रति घूमने का अभ्यास करती रहती हूँ अर्थात् घूमना मेरे लिए नित्य की आवश्यकता है और मेरे घूमने का अभ्यास दिन-प्रतिदिन बढता ही चला जाता है। इसका कारण है कि मेरा हृदय जिज्ञासा की भावना से युक्त है। इस जिज्ञासा में लगे रहने के कारण मै भाव-जगत् के सुन्दर सत्य को जानना चाहती हूँ जो विधाता की इस कलामयी सृष्टि मे परिव्याप्त एवं अन्तर्निहित है।

विशेष—(१) यहाँ एक जिज्ञासु की भावना का मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रण हुआ है।

(२) **अलकार**—मानवीकरण और विशेषण-विपर्यय।

"दृष्टि जब जाती ....क्या है पीर ?"

शब्दार्थ—हिमगिरि=हिमालय। अधीर=बेचैन। धरा=पृथ्वी। पीर=वेदना; पीडा।

भावार्थ—श्रद्धा अपनी उत्सुकता के सम्बन्ध मे मनु को बतलाती हुई कहती है—घूमते-घूमते जब मेरी दृष्टि हिमालय की ओर बरबस खिंच जाती है, तब हिमालय के इन उच्च-शिखरो को देखकर मेरा यह समुत्सुक मन बार-बार प्रश्न करने लगता है कि क्या इन ऊँची-ऊँची पर्वत-चोटियो के रूप मे यह धरा ही भयभीत होकर सिकुड गई है ? यह पृथ्वी ऐसे कौन से दुःख से दुःखी है, इसके हृदय में कौन-सी ऐसी व्यथा है जिसके कारण सिकुड़कर पर्वताकार रूप में हो गई है।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने हिमालय को पृथ्वी की सिकुड़न कहकर इसके माध्यम से सिकुडी हुई एवं भयभीत नारी का संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है।

(२) **अलंकार**—मानवीकरण और समासोक्ति।

"मधुरिमा में अपनी............सुन्दर सम्भार।"

शब्दार्थ—मधुरिमा=सुन्दरता; माधुर्य। सोया=सुप्त; छिपा हुआ। चेतना=उत्सुकता। मचल उठी=आग्रह करने लगी; अत्यधिक तीव्र हो गई। आँख की भूख=दर्शन करने की तीव्र इच्छा। सम्भार=द्रव्य; सामग्री।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को सम्बोधित कर कहती है—अपने ही सौंदर्य में मौन हिमालय को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके हृदय में कोई सन्देश छिपा हुआ है जो मुझे सजग और सावधान कर निरन्तर आगे बढ़ने की ओर संकेत करता था, जिसके फलस्वरूप हिमालय के उस सौंदर्य का अवलोकन करने के लिए अचानक मेरी उत्सुकता भी अधिक वृद्धि को प्राप्त हो गई और मैं उसके सम्बन्ध में कुछ जान सकने में असमर्थ रही। शैल-मालाओं के स्वाभाविक और प्राकृतिक सौंदर्य का अवलोकन करने के लिए मेरे मन में उत्साह जाग्रत हुआ। परिणामतः मेरे पैर भी स्वतः ही उधर की ओर को बढ़ने लगे। हिमालय के दिव्य, रमणीक और अलौकिक रूप को देखकर मेरी आँखों की भूख मिट गई। आशय यह है कि हिमालय के प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर मुझे परम शांति प्राप्त हुई।

विशेष—(१) कवि की बिम्ब-योजना व्यातव्य है।
(२) **अलंकार**—मानवीकरण।

"एक दिन सहसा.........घूम रहा विश्रब्ध।"

शब्दार्थ—सिंधु अपार=अनन्त सागर। नग=हिमालय। तल=तलहटी। क्षुब्ध=क्रोध। निरुपाय=असहाय; उपाय रहित। विश्रब्ध=शान्त; निर्भीक।

भावार्थ—श्रद्धा मनु से कहती है—एक दिन सहसा ही अनन्त सागर क्रोधित होकर हिमालय पर्वत की तलहटी से टकराने लगा। तब से लेकर आँज तक मैं यह असहाय जीवन लेकर लगातार घूमती रहती हूँ—इस शून्य निर्जन प्रदेश में निर्भीकता के साथ अकेली ही भ्रमण कर रही हूँ।

विशेष—(१) श्रद्धा के अद्वितीय धैर्य और चातुर्य की अभिव्यक्ति हुई है।
(२) भाषा प्रभावपूर्ण और विषयानुकूल व्यवहृत हुई है।

"यहाँ देखा कुछ.........मन में अनुमान।"

शब्दार्थ—बलि=यज्ञ। भूत-हित-रत=प्राणियों के कल्याण में लगे हुए। सजीव=जीवित।

भावार्थ—श्रद्धा मनु से कहती है—यहाँ समीप ही मैंने बलि का अन्न देखा तो मेरे मन में स्वभावतः यह जिज्ञासा भाव जाग्रत हुआ कि प्राणियों के हित में लगे हुए किस मनुष्य का यह दान है? इस बलि के अन्न को देखते ही मैंने यह अनुमान लगा लिया कि निश्चय ही यहाँ कोई जीवित प्राणी अवश्य है।

विशेष—यहाँ कवि ने भूतहित बलि के माध्यम से मनु के निःस्वार्थ भाव से किए गए यज्ञ का वर्णन किया है।

"तपस्वी ! क्यों इतने········कैसा उद्वेग ।"

शब्दार्थ—क्लान्त=दु.खी । वेग=आवेग; तीव्रता । हताश=निराश । उद्वेग=घबडाहट; अशान्ति; चित्त की अस्थिरता ।

भावार्थ—श्रद्धा पुन. मनु को सम्बोधित कर कहती है—हे तपस्वी ! क्यों इतने दु:खी हो ? तुम्हारे हृदय में वेदना की तीव्रता इतनी अधिक क्यो है ? हाय ! तुम इतने निराश क्यो हो ? स्पष्ट रूप में बतलाओ कि तुम्हारा चित्त इतना अस्थिर क्यो है ?

विशेष—प्रस्तुत छंद मे कवि ने मनु की निराशाजनक स्थिति का मनोवैज्ञानिक एवं नाटकीय रूप मे वर्णन किया है ।

"हृदय में क्या········सुन्दर वेश ।"

शब्दार्थ—निश्शेष=सम्पूर्ण । वंचित=धोखा ।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को सम्वोधित कर कहती है—हे तपस्वी ! क्या तुम्हारे जीवन मे जीवन को जीने की लालसा तुम्हे अधीर नही बनाए हुए है ? मुझे तो ऐसा आभासित होता है कि त्याग की भावना तुम्हारे हृदय में सुन्दर रूप धारण कर तुम्हें धोखा दे रही है। आशय यह है कि तुमने त्याग को जिस रूप मे अपनाया है वह आयु और स्थिति के अनुकूल नही है ।

विशेष—मानवीकरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है ।

"दु:ख के डर ········बनकर अनजान ।"

शब्दार्थ—अज्ञात=अपरिचित । जटिलताओ=उलझनों; समस्याओ । अनुमान=कल्पना । कर्म=कार्य । काम=जीवन की इच्छा ।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को पुन: सम्वोधित करती हुई कहती है—ऐसा जान पडता है कि दु ख से आशंकित होकर जीवन की काल्पनिक समस्याओ का अनुमान करके एवं अपने भविष्य के सम्बन्ध मे अनजान बनकर काम से विमुख हो रहे हो, जो तुम्हारे लिए उचित नहीं है। इस अमूल्य जीवन की उपेक्षा करना उचित नही है।

"कर रही लीलामय········सब होते अनुरक्त ।"

शब्दार्थ—लीलायम=क्रीड़ा-पूर्ण शक्ति, सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह एवं तिरोधान नामक पाँच शक्तियों मे लीन होकर । महाचिति=विराट् चेतना-शक्ति । उन्मीलन=उदय; विकास । अभिराम=सुन्दर ।

भावार्थ—श्रद्धा इस अखिल सृष्टि में परिव्याप्त व्यापक चेतना-शक्ति के सम्बन्ध मे मनु को बतलाती हुई कहती है कि वह विराट् चेतना-शक्ति अनेक

प्रकार की लीलाएँ करती हुई इस विश्व मे आनन्द मना रही है। उसका कोई निश्चित स्वरूप नही है अपितु वह सृष्टि के प्रत्येक कण मे, अणु-अणु मे परिव्याप्त है। उस महाचैतन्य नियमिका शक्ति के द्वारा ही संसार का सुन्दर रूप में उन्मीलन होता है अर्थात् वह विराट् चेतना शक्ति ही इस अनन्त सौंदर्य सम्पन्न संसार के रूप में अभिव्यक्त होती है एवं सृष्टि के सभी प्राणी उसी में अनुरक्त रहते है।

विशेष—यहाँ प्रसाद पर प्रत्यभिज्ञान दर्शन की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है।

"काम मंगल से.........असफल भवधाम।"

शब्दार्थ—मंगल से मंडित=कल्याण से सुशोभित। श्रेय=कल्याण; मंगलमय परिणाम से युक्त। सर्ग=सृष्टि; संसार। तिरस्कृत=अपमानित; उपेक्षित। असफल=निष्फल। भवधाम=संसार।

भावार्थ—श्रद्धा पुनः इस संसार के मंगलमय स्वरूप की ओर इंगित करती हुई मनु से कहती है कि हे मनु! यह विश्व तो काम के कल्याणकारी स्वरूप से मण्डित है अतः श्रेयस्कर है। यह सम्पूर्ण विश्व काम अथवा इच्छा का ही तो परिणाम है। अत. ऐसा न समझना तुम्हारी भूल है। इसके रहस्य को भली प्रकार न जान पाने के कारण ही तुम इसकी उपेक्षा कर रहे हो। इस प्रकार काम की उपेक्षा करके तुम संसार को असफल बना रहे हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने काम के मंगलमय रूप की स्थापना की है।

(२) श्रद्धा का यह कथन प्रवृत्तिमूलक है। 'दिनकर' ने भी निम्न पंक्तियो में यही भाव व्यक्त किया है—

ऊपर सब कुछ शून्य-शून्य है, कुछ भी नहीं गगन में,
धर्मराज! जो कुछ है वह है, मिट्टी मे, जीवन में।

"दुःख की पिछली........सब गात।"

शब्दार्थ—रजनी=रात्रि का अन्तिम प्रहर। नवल प्रभात=नवीन प्रातः काल। झीना=महीन; बारीक। नील परदा=नीला आकाश रूपी परदा। गात=शरीर।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को सम्बोधित करती हुई कहती है—जिस प्रकार रात्रि के अन्तिम प्रहर के समाप्त होते ही नवीन प्रात काल का शुभागमन हो जाता है उसी प्रकार मानव-जीवन में दु.ख के व्यतीत होने पर सुख की प्राप्ति होती

है। जिस प्रकार रात्रि मे यह नीला आकाश अपने मे प्रातःकाल का रहस्य छिपाए रहती है, उसी प्रकार दु.ख के नीले महीन परदे के पीछे सुख भी अपने शरीर को छिपाए रहता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने दु.ख और सुख के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए है।

(२) **अलंकार**—रूपकातिशयोक्ति और परम्परित रूपक।

"जिसे तुम समझे········इसको जाओ भूल।"

शब्दार्थ—अभिशाप=शाप; अमंगल; अनिष्ट का हेतु। ज्वालाओं=कष्टों; आपत्तियों। मूल=मूल कारण; उत्पादक। ईश=ईश्वर; भगवान्। रहस्य वरदान=गुप्त वरदान।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को सम्बोधित कर कहती है कि हे मनु! जिस दु.ख को तुम अभिशाप समझते हो और विश्व की बाधाओ का उद्गमस्थल मानते हो, वह दुःख तो ईश्वर का दिया हुआ गुप्त वरदान है—इसे तुम सदैव याद रखो। कहने का भाव यह है कि दु.ख ही जीवन को सुख, आनंद का वास्तविक ज्ञान कराता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने मानव को निराशाजन्य पलायन-वाद से हटाकर जीवन का सच्चा सुख प्राप्त करने की ओर प्रेरित किया है।

(२) कविवर विहारी ने भी निम्न दोहे मे इसी प्रकार का भाव व्यक्त किया है—

दीरघ सांस न लेई दुःख, सुख सांई हि न भूलि।
दई-दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि॥

"विषमता की पीडा········मधुमय दान।"

शब्दार्थ—विषमता=समता का अभाव। व्यस्त=लगा हुआ; विकल। स्पन्दित=गतिशील। भूमा=विराट शक्ति। मधुमय=सुन्दर; रमणीय।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को दु.ख-सुख के वैषम्य से परिपूर्ण जगत् के सम्बन्ध में बतलाती हुई कहती है—हे मनु! इस संसार में सुख और दु.ख का अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। इतना ही नहीं, दु ख के बिना सुख का कोई अस्तित्व ही नहीं है। वास्तव में यह जगत् दु.ख और सुख की विषमता का ही प्रतिफल है। यहाँ कभी निर्माण होता है तो कभी विनाश; कभी सृजन होता है तो कभी संहार। इन्ही विषमताओं में यह महान संसार गतिशील रहता है। दूसरे शब्दों में, दु.ख-सुख की इन्हीं विषम परिस्थितियों के कारण कभी इसका विकास होता

है तो कभी पर्यवसान भी। वास्तव मे यही सुख और दुःख सृष्टि के विकास का सत्य है और यही भूमा की (महाशक्ति की) मधुमय देन है।

विशेष—(१) प्रसादजी ने विपमता शब्द का प्रयोग समरसता के विरुद्ध किया है। डॉ० सक्सेना के शब्दों में, "समरसता जीवन की वह साम्यावस्था है, जिसमें सुख और दुःख सब लीन हो जाते है तथा एकमात्र आनन्दरूप परमार्थ तत्व ही शेष रह जाता है। अतः विषमता जीवन की वह स्थिति हुई जिसमें सुख और दुःख का भेद बना रहता है, पाप और पुण्य पृथक-पृथक रहते है, जो भेदपूर्ण सृष्टि का स्वरूप कहलाती है तथा जिसमे सुख-दुःख, ग्राह्य, ग्राहक, मूढ़ भाव आदि विद्यमान रहते है, किंतु इसके विरुद्ध समरसता परमार्थ सत्ता की स्थिति है जहाँ उक्त सभी वाते नहीं रहती।"

(२) भूमा शब्द ब्रह्म का परिचायक है।

"नित्य समरसता का.........द्युतिमान।"

शब्दार्थ—समरसता=आनंद अथवा सामरस्य की स्थिति। कारण= विपमता (लक्ष्यार्थ)। जलधि=समुद्र। द्युतिमान=देदीप्यमान।

भावार्थ—श्रद्धा अपने कथन को अग्रसर करती हुई पुनः मनु से कहती है— यह सम्पूर्ण जगत् विपमता से परिपूर्ण है किंतु इससे चिन्तित होने का कोई कारण नही है। इस संसार मे रहते हुए शुभ कर्म करना चाहिए; इससे विपमता-पूर्ण संसार मे सामरस्य की स्थिति प्राप्त होगी, जिसे प्राप्त करने का प्रत्येक प्राणी को अधिकार है। किंतु यहाँ तो स्थिति ही विचित्र है—यहाँ तो मनुष्य अपनी तुच्छ इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही प्रयत्नशील रहता है। परिणामतः वह समरसता के स्थान पर विपमता को ही प्राप्त कर पाता है। यहाँ विषमता नित्य प्रति एक समुद्र के समान उमड़ती रहती है जिसमे व्यथा से नीली लहरें उठती रहती है और उन लहरो के मध्य मे प्राणियो के सम्पूर्ण सुख देदीप्यमान मणियो की भांति विखरे रहते है। दूसरे शब्दो में, उसे सुख के स्थान पर दुःख ही मिलता है।

विशेष—(१) प्रसादजी ने यहाँ समरसता शब्द का प्रयोग प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आधार पर किया है।

(२) यहाँ कवि ने अखण्ड आनन्द को प्राप्त करने की प्रेरणा दी है।

(३) **अलंकार**—सांगरूपक और रूपकातिशयोक्ति।

"लगे कहने मनु.........कल्पित गेह।"

शब्दार्थ—विपाद=दुःख; कष्ट। मारुत=वायु; हवा। उच्छ्वास=

प्रोत्साहन देने वाले विचार; प्रेरक वचन। तरंग=लहरें। मानस=हृदय; मानसरोवर। सविलास=क्रीड़ा के साथ; उमंग के साथ। निरुपाय=उपाय रहित; असहाय। कल्पित गेह=कल्पना मात्र का घर; निरर्थक।

भावार्थ—जब श्रद्धा ने मनु को विषमता से पूर्ण संसार की सत्यता से परिचित कराया तो मनु अत्यन्त खिन्न होकर श्रद्धा से कहने लगे—तुम्हारे ये प्रेरक वचन मधुर पवन के समान हैं और मेरे हृदय में बिना किसी बाधा के उत्साह के भाव को भर रहे हैं। दूसरे शब्दों में, जिस प्रकार वायु सरोवर में क्रीड़ा करती हुई अबाध रूप से लहरें उत्पन्न करती है उसी प्रकार तुम्हारे ये मधुर शब्द मेरे हृदय में आनंद की तरंगें उत्पन्न कर रहे हैं। किंतु यह जीवन कितना असहाय एवं निरुपाय है—इसे मैंने भली भांति जान लिया है, इसमें सन्देह के लिए किंचित् भी स्थान नहीं है। प्रयास करने पर भी इस जीवन में अन्त में निराशा ही हाथ लगेगी। इसे सफलता का घर मानना मात्र भ्रामक होगा।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में मनु की निराशा का चरम रूप अभिव्यक्त हुआ है।

(२) 'मारुत', 'तरंग' और 'मानस' शब्दों के द्वारा एक लहराते हुए समुद्र का मार्मिक बिम्ब अंकित किया गया है।

(३) अलंकार—रूपक।

"कहा आगन्तुक ने·········जिसको वीर।"

शब्दार्थ—आगन्तुक=आया हुआ व्यक्ति; श्रद्धा। सस्नेह=प्रेमपूर्ण। हार बैठे जीवन का दाव=असफल होना; निराश होना। वीर=साहसी; कर्मण्य व्यक्ति।

भावार्थ—मनु के निराशापूर्ण वचनों को सुनकर आगन्तुक व्यक्ति—श्रद्धा—ने प्रेमयुक्त शब्दों में उन्हें समझाते हुए कहा—अरे, तुम इतने आकुल-व्याकुल क्यों हो? तुम अभी से जीवन के दाव को हार बैठे हो, जीवन में प्राप्य होने वाली सफलता के प्रति इतने निराश क्यों हो? किंतु वीर और साहसी व्यक्ति तो मरकर भी अर्थात् कठिन परिश्रम से इसे प्राप्त किया करते हैं।

विशेष—प्रस्तुत अवतरण में 'हार बैठे जीवन का दाव' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

"तप नहीं जीवन·········आशा का आह्लाद।"

शब्दार्थ—करुण=करुणा से युक्त। क्षणिक दीन अवसाद=दीनता से युक्त

क्षणिक उदासीनता। तरल आकाक्षा=उन्नति की इच्छा। तरल=द्रवीभूत। आह्लाद=प्रसन्नता।

भावार्थ—प्रस्तुत अवतरण मे श्रद्धा मनु को जीवन की वास्तविकता से परिचित कराती हुई कहती है—हे मनु! सांसारिक कार्यों से विमुख होकर तपस्या करना मात्र जीवन का लक्ष्य नही है परन्तु सांसारिक कार्य करना भी मानव का लक्ष्य है। सांसारिक कार्यों के प्रति विमुखता एवं निरन्तर तपस्या करने में लीन रहने के कारण तुम्हारे हृदय में करुणा और दैन्य से युक्त क्षणिक उदासीनता का उदय हो गया है एवं आशाजनित प्रसन्नता खो गई है जो निरन्तर उन्नति की अभिलाषा से परिपूर्ण रहती थी।

विशेष—प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वयात्मक रूप को महत्व दिया है।

"प्रकृति के यौवन········उनकी धूल।"

शब्दार्थ—प्रकृति के यौवन=एक सुन्दरी के समान प्रकृति के सौदर्यपूर्ण अंगों का। श्रृंगार=सजावट। वासी फूल=मुरझाये फूल। उत्सुक=लालायित।

भावार्थ—प्रस्तुत अवतरण में श्रद्धा फूलो के उदाहरण देकर मनु को उत्प्रेरित करती हुई कहती है—हे मनु! एक सुन्दरी युवती के समान यह प्रकृति भी अपने लावण्यपूर्ण अंगों का अनवरत रूप से श्रृंगार करती है और इसके लिए प्रकृति सद्यः विकसित पुष्पो का प्रयोग करती है. वासी और मुरझाये फूल उसके श्रृंगार करने मे असमर्थ है। ये बासी और मुरझाये फूल तो धूल मे जाकर मिल जाते है जो उनसे मिलने के लिए अत्यन्त ही उत्सुक रहती है। कहने का अभिप्राय यह है कि तुम अपने हृदय से निराशा, दीनता और अवसाद को निकालकर उसमें आशा-आकांक्षाओं को भरो। इसी में जीवन की सफलता है।

विशेष—प्रकृति का वर्णन यहाँ उपदेशात्मक रूप में हुआ है।

"पुरातनता का यह·········में टेक।"

शब्दार्थ—पुरातनता=प्राचीनता; रूढ़ियाँ। निर्मोक=केंचुली। नूतनता=नवीनता। टेक=आश्रय; सहारा।

भावार्थ—प्रस्तुत अवतरण में श्रद्धा मनु को प्रोत्साहित करती हुई कहती है—हे मनु! यह प्रकृति प्राचीनता की केंचुली को एक पल भी सहन नही कर पाती है। क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है और प्रकृति परिवर्तन के द्वारा ही नूतनता का आनन्द प्राप्त करती है। कहने का अभिप्राय यह है कि जो प्राणी परिवर्तन में विश्वास रखकर युगानुरूप कार्य करता है वही जीवन में सफलता

प्राप्त करता है। अतः आपको भी इससे प्रेरणा प्राप्त कर जीवन में कार्य करना चाहिए।

विशेष—(१) 'परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है'—कवि ने यहाँ इसी वैज्ञानिक तथ्य की ओर स्पष्ट संकेत किया है।

(२) **अलंकार**—रूपक।

"युगों की चट्टानों·········उसे अधीर।"

शब्दार्थ—चट्टान=पर्वत शिला। पदचिन्ह=पैरो के निशान; पद-छाप। असुर=देवताओ की एक विशेष जाति। अनुसरण=पीछे चलना।

भावार्थ—सृष्टि की परम्परा का उल्लेख करती हुई श्रद्धा मनु से कहती है—हे मनु! प्रत्येक युग का अपना धर्म होता है, अपना विचार होता है जो उस युग-विशेष का परिचायक होता है और विधाता की यह सृष्टि प्रत्येक युग रूपी चट्टान पर उस युग के धर्म एवं विचार के रूप मे अपनी छाप छोड़ती हुई गम्भीरता के साथ निरन्तर विकास को प्राप्त होती रहती है। उसका विकास एक क्षण के लिए भी बाधित नही हुआ है। देव, गंधर्व आदि जातियाँ अपना धैर्य खोकर निरन्तर उसका अनुसरण करती चली जाती है।

विशेष—(१) 'युगो की चट्टानो पर सृष्टि द्वारा पद-चिन्ह छोड़ने' के द्वारा कवि ने यहाँ निरन्तर कदम बढाकर किसी के चलते जाने का मार्मिक विम्ब अंकित किया है।

(२) **अलंकार**—रूपक और मानवीकरण।

"एक तुम, यह·········चेतन आनन्द।"

शब्दार्थ—विस्तृत=विशाल। भूखण्ड=भूमण्डल। अमन्द=अत्यधिक। वैभव=सम्पत्ति; ऐश्वर्य-विलास। जड़=अचेतन। चेतन आनन्द=चेतन प्राणी के समान आनन्द की उपलब्धि करना।

भावार्थ—प्रस्तुत अवतरण मे श्रद्धा अनन्त वैभव सम्पन्न जड़ पृथ्वी की ओर संकेत कर मनु को भी वैभव-सम्पन्न होने को प्रेरित करती हुई कहती है—हे मनु! एक तुम हो जो चेतन होने के बावजूद भी निष्क्रिय होकर निराश और उदास बैठे हो और दूसरी ओर जड-पृथ्वी है, यह विशाल भूमण्डल है जो प्रकृति के अनन्त वैभव से आपूर्ण है। यहाँ पर संचित कर्मो का उपभोग हो रहा है तथा आगामी भोगो के निरन्तर कर्म किए जा रहे है। अतः तुम स्वयं ही देख रहे हो कि यह विस्तृत भूमण्डल अचेतन और जड़ होते हुए भी एक चेतन प्राणी के समान आनन्द की उपलब्धि कर रही है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में प्रसादजी ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार ही जड़ प्रकृति को चेतनाशील प्राणी के सदृश आनन्दोपलब्ध करते हुए चित्रित किया है। इस सम्बन्ध में डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने एक स्थान पर लिखा है—"प्रत्यभिज्ञा दर्शन मे सम्पूर्ण जड-चेतन प्रकृति को उस महाचिति का स्वरूप माना गया है। तन्त्रालोक मे माहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त ने स्पष्ट लिखा है कि यह सारी सृष्टि उस अनन्त शक्ति सम्पन्न शिव मे ही विद्यमान है, शिव सागर के तुल्य है और उस सागर की अनन्त ऊर्मियों की भाँति यह सारा विश्व है। अतः यहाँ जो कुछ भी जड़ाजड़ात्मक विश्व-वैचित्र्य दिखाई देता है वह उस महाचिति स्वरूप शिव से रहित नही है अथवा जड़ पदार्थों मे भी वह चिति या चेतना सर्वदा विद्यमान रहती है। प्रसादजी ने इसी आधार पर जड पृथ्वी को चेतन आनन्द से युक्त कहा है और 'कामायानी' से पहले प्रसादजी ने अपने 'जनमेयजय का नागयज्ञ' में इसी तथ्य को और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हुए लिखा है—"सत्ता कभी लुप्त भले ही हो जाए, किंतु इसका नाश नही होता। गृह का रूप न रहेगा तो ईंटे रहेंगी, जिनके मिलने पर गृह बने थे। वह रूप परिवर्तित हुआ, तो मिट्टी हुई, राख हुई, परमाणु हुए। उस चेतन के अस्तित्व की सत्ता कही नही जाती और न उसका चेतनमय स्वभाव उससे भिन्न होता है। वही एक अद्वैत है। यह पूर्ण सत्य है कि जड के रूप में चेतन प्रकाशित होता है। अखिल विश्व एक सम्पूर्ण सत्य है।"

(२) अलंकार—विरोधाभास।

"अकेले तुम कैसे········आत्मविस्तार।"

शब्दार्थ—असहाय=जिसका कोई सहायक न हो। यजन=यज्ञ; यहाँ कवि का अभिप्राय सृष्टि-निर्माण की क्रिया से है। आत्मविस्तार=अपना विकास।

भावार्थ—प्रस्तुत अवतरण में श्रद्धा मनु की जीवन के प्रति विरक्ति की भर्त्सना करती हुई कहती है—हे मनु! भला तुम अकेले होकर विना किसी के सहारे के सृष्टि-निर्माण सम्वन्धी यज्ञ को कैसे पूरा कर सकते हो? सृष्टि-निर्माण सम्वन्धी यज्ञ तो स्त्री और पुरुष—दोनों के संयोग का समन्वित परिणाम है और तुम विना स्त्री के ऐसा करने मे कैसे समर्थ हो सकते हो। तुम्हारे मन मे इस प्रकार का तुच्छ विचार आना उचित नही है। किसी को अपनी सहधर्मिणी वनाकर ही तुम यज्ञ मे प्रवृत्त हो सक्ते हो। मुझे तो ऐसा आभासित होता है कि एक लम्वे समय से अकेले रहने के कारण ही तुम्हारे हृदय की सभी अभि-

लाषाएँ मर गई है और नारी के प्रति कोई भी आकर्षण नहीं रह गया है। इसी कारण हे तपस्वी ! तुम अपना विकास करने में, आत्मविस्तार करने मे असफल रहे हो और परिणामस्वरूप तुम्हे अपना जीवन स्वयं ही भार-स्वरूप जान पड़ता है।

विशेष—(१) प्रस्तुन अवतरण मे कवि ने सृष्टि-निर्माण-यज्ञ की प्रक्रिया की ओर ध्यान दिलाया है।

(२) प्रसादजी ने कर्म सर्ग मे यज्ञ को रचना-मूलक सृष्टि कहा है—

रचनामूलक सृष्टि यज्ञ यह यज्ञ-पुरुष का जो है,
ससृति-सेवा भाग हमारा उसे विकसने को है।

"दव रहे हो········विना विलम्व।"

शब्दार्थ—दव रहे हो अपने ही वोझ=अपना ही जीवन अपने लिए भार-स्वरूप जान पड़ना। अवलम्व=आश्रय; सहारा। सहचर=जीवन-साथी। उऋण=अपने कर्त्तव्य का पालन करना। विलम्व=देर होना।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को अपनी सहधर्मिणी वनाने के लिए प्रेरणा देती हुई कहती है—हे मनु ! मैं यह भलीभाति देख रही हूँ कि तुम्हे अपना जीवन ही अपने लिए भार-स्वरूप जान पड़ रहा है, जैसे-तैसे अपने जीवन को जी रहे हो। अपने जीवन के इस भार को कम करने के लिए कहीं कोई अवलम्व अथवा सहायक भी तो नही खोज रहे हो। कहने का अभिप्राय यह है कि जव मैं तुम्हारे सम्मुख हूँ तो मुझे अपना सहायक क्यों नही वना लेते। ऐसा करने से निश्चय ही तुम्हारा जीवन सफल हो जाएगा। क्या यह सम्भव नही है कि मैं तुम्हारी सह-धर्मिणी वनकर जीवन संगिनी होकर विना किसी विलम्व के अपने कर्त्तव्य का भलीभाति पालन करूँ। कहने का अभिप्राय यह है कि तुम अपनी जीवन-संगिनी बनाकर मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करने का समुचित अवसर क्यो नही प्रदान करते ?

विशेष—प्रस्तुत अवतरण मे श्रद्धा की अपनी मनोभावना अभिव्यक्त हुई है।

"समर्पण लो सेवा········विगत विकार।"

शब्दार्थ—समर्पण=अपना सव कुछ समर्पित कर देना; सर्वस्व त्याग-भाव। लो=स्वीकार करो; अंगीकार करो। सेवा का सार=सेवा का मूल तत्त्व। सजल संसृति=जलमय जगत्; भव-सागर। पतवार=नौका को पार लगाने का साधन; नाव खेने मे सहायता देने वाला लकड़ी का डण्डा। उत्सर्ग=

न्यौछावर। पदतल में=आपकी सेवा में; चरणो में। विगत विकार=शुद्ध हृदय से; निर्विकार।

भावार्थ—श्रद्धा मनु की सहचरी वनने के लिए अति लालायित है। अतः वह मनु से अनुरोध करती हुई कहती है—हे मनु! मैं तुम्हारी आजीवन संगिनी वनने के लिए अपने आपको समर्पित करती हूँ। इस समर्पण को तुम अंगीकार करो, मुझे स्वीकार करो। यह समर्पण तो सेवा का मूल तत्व है और दु:ख रूपी जल से भरे हुए इस संसार मे—भव-सागर मे—तुम्हारी जीवन रूपी नाव को पार ले जाने में पतवार के समान है। यही कारण है कि आज से मैं निर्विकार भाव से युक्त हो एकमात्र सेवा की भावना से तुम्हारे चरणों मे—आपकी सेवा में, अपने इस जीवन को उत्सर्ग करती हूँ।

विशेष—(१) एक आलोचक के शव्दों मे, "प्रसाद ने समर्पण को सेवा का सार इसलिए कहा है कि सच्ची सेवा वही होती है जिसमें आत्म-समर्पण की भावना रहती है, किन्तु जो कुछ धन लेकर या स्वार्थ के कारण किसी की सेवा करता है, वह सच्ची सेवा नही होती। अतः सेवा का मूलतत्व आत्म-समर्पण है और जो अपना सर्वस्व अर्पण करके किसी की सच्चे हृदय से सेवा करता है उसीको उच्च कोटि का सेवक या भक्त कहते है।"

(२) कवि ने यहाँ 'सजल' शव्द का सार्थक प्रयोग किया है।

(३) 'पतवार' द्वारा नौका से पार होने का एक आकर्षक विम्व प्रस्तुत किया गया है।

(४) **अलंकार**— पारम्परित रूपक।

"दया, माया, ममता········खुला है पास।"

शव्दार्थ—माया=मोह। ममता=स्नेह। मधुरिमा=माधुर्य। अगाध=गहन; गम्भीर। रत्न-निधि=रत्नों का भण्डार। तुम्हारे लिए खुला है=समर्पित है।

भावार्थ—श्रद्धा मनु के सम्मुख आत्म-समर्पण करती हुई कहती है—हे मनु! मेरा यह हृदय तो स्वच्छ रत्नो का भण्डार है, जिसे मैं आज तुम्हारे चरणों मे अर्पित कर रही हूँ। मेरा यह हृदय दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास आदि पवित्र और कल्याणकारी भावो से भरा हुआ है। इसे मैंने तुम्हारे सामने खोलकर रख दिया है और अव तुम इन्हे अपनी सुविधा-नुसार ले सकते हो।

विशेष—(१) डॉ० सक्सेना के शव्दों में, 'श्रद्धा के हृदय में दया, माया,

सम्पत्ति=मानव-सृष्टि का वैभव-विलास। मन का चेतन राज=भावमय चेतनावस्था जो सेवा, परोपकार आदि भावों से आपूरित हो।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को नवीन-सृष्टि की रचना करने के लिए अनुप्रेरित करती हुई कहती है—हे मनु! देवजाति का विध्वंस स्वयं उसके अपने द्वारा ही हुआ क्योंकि उसमे अहम् भाव की पराकाष्ठा हो गयी थी और वह अपने को प्रकृति से भी अधिक शक्तिशाली मानने लगे थे। देवताओं का मिथ्याभिमान ही उनके विनाश का मूल कारण था। अति विलासिता ने भी उसमें सहयोग दिया था। आज हमारे सम्मुख उस देव-सृष्टि के विनाश के उपरान्त जो खण्डहर दिखाई दे रहे हैं, वे नवीन सृष्टि के विकास मे विपुल एवं महत्वपूर्ण सामग्री बन सकते है। अतः मानव-सृष्टि के निर्माण करने के लिए तुम्हे इस विपुल एवं महत्वपूर्ण सामग्री को एकत्रित करना होगा तथा अपने मन से हिंसा, मिथ्याभिमान, विलासितापूर्ण भावो को निकालकर उनके स्थान पर उदात्त भावना से उसे भरना होगा। तुम्हारे ऐसा करने से नवीन मानव-सृष्टि भावमय चेतनावस्था को प्राप्त करने मे सफल हो सकेगी।

विशेष—(१) यहाँ कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है।
(२) श्रद्धा के रूप मे कवि ने नारी की सहृदयता एवं प्रेम का वर्णन किया है।
(३) **अलंकार**—रूपक।

"चेतना का सुन्दर........अंकित हो नित्य।"

शब्दार्थ—चेतना=दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास आदि उदात्त भावों से भरी हुई मन की चेतनावस्था। अखिल=सम्पूर्ण। मानव-भावों का=सहृदयता एवं प्रेम का। पटल=पट; चित्र अंकित करने या कुछ लिखने का कागज का टुकडा या वस्त्र। दिव्य अक्षरो से=सुनहरी शब्दों मे; स्वर्णाक्षरो में। अंकित=लिखा हुआ।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को नवीन मानव-सृष्टि के विकास के संबध में बतलाती हुई कहती है—हम और तुम मिलकर जिस नवीन मानव-सृष्टि का निर्माण एवं विकास करेंगे, उसका इतिहास चेतना का ही सुन्दर इतिहास कहलाएगा। कारण यह है कि उसमे संसार मे रहने वाले समस्त प्राणियो के हृदयो में अवस्थित उदात्त भावो का सत्य छिपा होगा। अतः मेरी यह उत्कट अभिलाषा है कि चेतना का इतिहास विश्व के हृदय-पटल पर सुनहरी अक्षरों मे अंकित होकर सदैव विद्यमान रहे।

विशेष—(१) एक विद्वान् आलोचक के शब्दो मे यहाँ श्रद्धा ने यह कामना

प्रकट की है कि देव-सृष्टि का इतिहास तो अहंकार, दम्भ, विलासिता आदि से भरा हुआ होने के कारण अचेतनता का सुन्दर इतिहास था। अत: वह दिव्याक्षरों में अंकित करने योग्य न था किंतु मानव-सृष्टि का आगामी इतिहास अखिल मानव-भावों के सत्य को लेकर लिखा जावेगा और वह उदात्त भावों से युक्त होने के कारण चेतना का सुन्दर इतिहास होगा जो विश्व के हृदय-पटल पर स्वर्णाक्षरों में उत्कीर्ण होगा।

(२) 'विश्व के हृदय' में उपादान लक्षणा है।

(३) **अलंकार**—रूपक।

"विधाता की कल्याणी········रहे न बन्द।"

शब्दार्थ—विधाता=सृष्टि-नियामक । कल्याणी-सृष्टि=कल्याणमयी आगामी मानव-सृष्टि। भूतल=पृथ्वी। पटें सागर=सागर का जल सूखकर स्थल मे परिवर्तित हो जाए। हों चूर्ण=नष्ट हो जाए; विस्फोट हों। चिंगारी=आग की साधारण चिंगारी अथवा स्फुलिंग। सदर्प=दर्प सहित; अभिमान से पूर्ण। कीर्ति=यश; प्रसिद्धि। अनिल=वायु; हवा।

भावार्थ—श्रद्धा मनु को सम्बोधित कर कहती है—मेरी यह परम कामना है कि विधाता द्वारा निर्मित यह नवीन मानव-सृष्टि अत्यन्त मंगलमय और कल्याणकारी होगी एवं इस पृथ्वी पर पूर्णरूपेण सफलता प्राप्त करेगी। इसके साथ ही मेरी यह मनोकामना भी है कि यद्यपि इस मार्ग में विघ्न-स्वरूप बनकर भले ही सागर सूख कर स्थल का रूप धारण कर लें, सम्पूर्ण ग्रह मण्डल भले ही बिखर जायें, ज्वालामुखी पर्वत भले ही भयंकर विस्फोट करे तथापि यह नवीन मानव-सृष्टि उन समस्त अवरोधों को—बाधा-विघ्नो को अग्नि की एक सामान्य चिगारी के समान गर्व के साथ कुचलती हुई सदा-सदा ही आनंद से युक्त होकर खड़ी रहे, निरन्तर उन्नति को प्राप्त होती रहे, तनिक भी विचलित न हो। मात्र इतना ही नही, आज से मानव सृष्टि का यश वायु, पृथ्वी और जल—कही भी बाधित न हो अपितु सभी स्थानो मे निर्बाध रूप से फैल जाए।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने श्रद्धा के मुख से तत्कालीन परतंत्र भारत के लिए एक आशा का संदेश दिया है।

(२) **अलंकार**—उपमा और मानवीकरण।

"जलधि के फूटे········कर रही उपाय।"

शब्दार्थ—जलधि=सागर। उत्स=स्रोत। कच्छप=कछुआ। अभ्युदय=भौतिक उन्नति। वह=मानव-सृष्टि।

भावार्थ—प्रस्तुत अवतरण मे श्रद्धा पुन: नव-मानव-सृष्टि के लिए शुभेच्छाएं व्यक्त करती हुई कहती है कि भले ही सागर अनेक धाराओं मे प्रवाहित होने लगे जिसके कारण चारों ओर जल ही जल दिखाई दे और बड़े-बड़े द्वीप भी भले

ही उसमे कछुए के समान डूबते और उतराते दृष्टिगत हों, किन्तु इस प्रकार की स्थिति में भी वह नव-मानव-सृष्टि असहाय एवं निरुपाय दिखाई न दे। इसके विपरीत वह भौतिक उन्नति को प्राप्त करने का प्रयास करती हुई एक सुदृढ मूर्ति के रूप में तत्पर जान पड़े।

विशेष—(१) कवि का आशावादी-मानवतावादी दृष्टिकोण ध्यानव्य है।

(२) **अलंकार**—रूपक।

"विश्व की दुर्बलता········क्रीड़ामय संचार।"

शब्दार्थ—दुर्बलता=कमजोरी। पराजय=असफलता; हार। सविलास=आनंदपूर्वक। शक्ति का क्रीड़ामय संचार=मानव-सृष्टि में भरा हुआ शक्ति का आवेग।

भावार्थ—श्रद्धा नव-मानव-सृष्टि के प्रति अपनी शुभेच्छा अभिव्यक्त करती हुई कहती है—आगे चलकर यह नव-मानव-सृष्टि इतनी अधिक शक्ति-सम्पन्न हो जाए जिसके फलस्वरूप संसार में कहीं भी दुर्बलता दिखाई न पड़े और यदि कारणवश दुर्बलता से इसे पराजित होना ही पड़े तो उस हार के कारण यह मानव-सृष्टि आकुल-व्याकुल न हो। इतना ही नहीं, इसकी व्यापक शक्ति इस नव-मानव-सृष्टि को आनदपूर्वक सदैव प्रसन्न करती रहे। दूसरे शब्दों मे, नव-मानव-सृष्टि मे शक्ति के व्यापक प्रवेग का अनवरत रूप मे संचरण होता रहे।

विशेष—**अलंकार**—विरोधाभास।

"शक्ति के विद्युत्कण········मानवता हो जाय।"

शब्दार्थ—विद्युत्कण=विजली के कण। व्यस्त=पृथक-पृथक होकर। विकल=खण्डित, एक-एक टुकडे के रूप मे। निरुपाय=विखरने की विवशता से। समन्वय=मिलाना; सम्मिलित करना। विजयिनी=सफल। मानवता=मानव-सृष्टि।

भावार्थ—प्रस्तुत अवतरण में श्रद्धा शक्ति-कणो के समन्वय पर वल देती हुई मनु से कहती है—आज मैं देख रही हूँ कि शक्ति के विद्युत्कण पृथक-पृथक होकर खण्डित होकर एक-एक टुकड़े के रूप मे विखरे हुए पड़े है एवं उनको एकत्रित करने का भी कोई उपाय नही जान पड़ रहा है। लेकिन यदि यह मानव-सृष्टि समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाकर चले और पृथक हुए शक्ति के कणों को एकत्रित कर ले तो निश्चय ही यह मानव-सृष्टि सफलता प्राप्त कर सकेगी—ऐसा मुझे विश्वास है।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने श्रद्धा के माध्यम से कर्मण्यता का संदेश दिया है।

(२) कवि ने यत्र-तत्र विखरे पदार्थों का मार्मिक विम्ब अंकित किया है।

---

४. काम सर्ग

कथानक - मनु के हृदय में श्रद्धा के आत्म-समर्पण, नवीन सृष्टि के सुविकास सम्बन्धी विचार एवं प्रेरणादायक वचन अचानक उद्वेलन समुत्पन्न कर देते हैं। उनके हृदय में यौवन की मधुर स्मृति कौंध उठती है एवं उसकी मधुरता और मादकता की अनुभूति हो उठती है। इसके साथ-साथ जीवन में प्रफुल्लता एवं आशाओ का संचार हो उठता है। एक बार मनु फिर अतीत जीवन में डूबते-उतराते दृष्टिगोचर होते है। उन्हें सर्वत्र निराशा की ही अनुभूति होती है। मनु अपने अतीत में झाँकते हुए श्रद्धा के साथ बिताए सुखदायी क्षणों का स्मरण कर ही रहे थे कि उन्होंने विस्तृत एवं नीले आकाश में चमकते हुए तारों को देखा तो ऐसा अनुभव हुआ मानो उनमें एक प्रकार का आकर्षण है, जो मनु को बरबस खींच रहा है। आकाश रूपी नीले परदे से तारों के रूप में उन छेदों में से प्रकाश का अक्षय स्रोत फूट रहा हो। इस सबके पीछे कोई-न-कोई शक्ति अवश्य है किन्तु किसी को भी अब तक सम्यक् ज्ञान प्राप्त नही हो सका है। नीले आकाश के आवरण हटने से ही उस शक्ति के विषय में भली-भाँति ज्ञात हो सकता है। तभी अक्षय निधि का दर्शन संभव हो सकता है।

रात्रि के सौन्दर्यपूर्ण एवं सुखद माधुर्य का अनुभव करते हुए मनु के अन्त-स्तल मे श्रद्धा का स्मरण हो उठता है। प्रथम दर्शन में श्रद्धा भी नीले वस्त्रों को धारण किए हुए थी। मनु विचार कर रहे है कि श्रद्धा ने प्रेरणादायक वचन कहे, मानव सृष्टि के विकास से सम्बन्धित विचार भी प्रतिपादित किए—साथ ही उसने आत्म-समर्पण भी किया, किन्तु मेरे लिए यह स्वीकार करने योग्य नही है। इसका कारण यह है कि श्रद्धा के ये विचार प्रवृत्ति मार्ग के अनुकुल हैं जो मेरे लिए किसी भी दशा में अनुकूल नही हैं। मनु का कथन है कि प्रवृत्ति मार्ग की ओर अग्रसर करने वाली श्रद्धा को वह अपनी जीवन-सहचरी बनाने मे असमर्थ हैं। उन्हे अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करना स्वीकार है किंतु श्रद्धा को अपनाना उन्हें स्वीकार नही है। मनु इस प्रकार-सोच-विचार में अनवरत उलझते रहने के कारण सो जाते है। इस सुषुप्ति की अवस्था में स्वप्न के रूप में उन्हें काम के दर्शन होते हैं, उन्हें काम की ध्वनि स्पष्टतः सुनाई पड़ रही है।

काम ने बतलाया कि सृष्टि के प्रारम्भ में हम दोनों अर्थात् काम और रति का जन्म हुआ था। हम दोनों आकांक्षा और तृप्ति के रूप में प्रथम देव-सृष्टि में निवास करते थे। मैं देवताओं के हृदय में काम-भावना जागृत करता था और उन्हें रति तृप्ति के रूप में दिखाई देती थी। हम देवों के सुखों और भोग-विलासों में वृद्धि करते रहे। अब देव-सृष्टि के विनाश होने के कारण मैं अनंग होकर इधर-उधर भटक रहा हूँ। काम मनु से श्रद्धा को अपनाने के लिए पुनः आग्रह करता है। काम का कथन है कि इससे जीवन सुखद होगा—समस्त निराशाएँ दूर हो जायेंगी। आन्तरिक शान्ति प्राप्त होगी। काम की ध्वनि शांत हो जाती है। मनु पूछते है कि हे भगवान् ! अक्षय निधि तक पहुँचने के लिए कौन-सा मार्ग है और उसे किस प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है। मनु का स्वप्न भंग हो गया। वहाँ उत्तर देने वाला कोई भी व्यक्ति नहीं था। काम अन्तर्ध्यान हो चुका था। मनु जागे, तब उन्होंने देखा कि सूर्य की प्रथम किरणें गुफा के द्वार पर सोमलता के अन्दर से झाँककर धरती पर बिखर रही थीं।

कामसर्ग मे अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण है। काम प्रवृत्ति का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया गया है। सर्ग के प्रारम्भ मे वसन्त से यौवन की तुलना की गई है। इन दोनों का वर्णन प्रतीकात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है।

मधुमय वसन्त ... ... पिछले पहरों में।

शब्दार्थ—मधुमय वसन्त=मधु (माधुर्य) से परिपूर्ण वसन्त ऋतु; माधुर्य-पूर्ण यौवन काल। जीवन-वन=जीवन रूपी वन। वह=प्रवाहित होकर (पूर्व-कालिक क्रिया)। अन्तरिक्ष की लहरो में=शून्य रूपी समुद्र की वायु रूपी लहरों में। रजनी के पिछले पहरों में=प्रभात काल से पूर्व का समय; ब्राह्ममुहूर्त; किशोरावस्था।

भावार्थ—श्रद्धा के प्रेरणादायक वचनों को सुनकर मनु का हृदय यौवन की तरंगों से आन्दोलित हो उठा। यहाँ मनु यौवन को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि हे यौवन ! किशोरावस्था के समाप्त होते हुए भी शरीर के अंग-अंग में प्रकट होने वाली मधुरता की लहरों में प्रवाहित होकर तुम न जाने जीवन में कब चुपके-से आ गए। जिस प्रकार पतझड़ की रात्रि समाप्त होते ही पिछले पहरों में लहरों के सदृश शून्य में बहने वाली वायु से ओत-प्रोत मधुरिमामय वसन्त-प्रान्त में चुपके से आ जाता है।

विशेष—(१) यौवन काल में ही काम का उदय होता है। अतएव काम-सर्ग का प्रारम्भ यौवन से किया है।

(२) प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग—'बसन्त' तथा 'रजनी का पिछला पहर' क्रमशः यौवन और किशोरावस्था के प्रतीक रूप में है।

(३) अलङ्कार—सांगरूपक एवं रूपकातिशयोक्ति।

क्या तुम्हें देखकर ... ... खोली थीं।

शब्दार्थ—नीरवता=खामोशी; यौवनोचित गम्भीरता। अलसाई=थकी हुई। कलियाँ=प्रेमजन्य उमंगें। आँखें खोली थी=खिल उठी; जाग उठी।

भावार्थ—यौवन को सम्बोधित कर मनु कह रहे है कि जब तुमने निराशा से परिपूर्ण जीवन में चुपके से प्रवेश किया था, तब क्या जीवन का सौंदर्य इसी प्रकार उन्मन हो उठा था, जिस प्रकार वसन्त की वेला में मधुरता को देखकर मस्त कोयल कूकने लगती है। तुम्हारे आगमनकाल में प्रेम की उमग रूपी कलियाँ क्या उसी प्रकार खिल उठी थी, जिस प्रकार वसन्त के आगमन पर प्रभातकाल में अँगडाइयाँ लेती हुई कलियाँ अनायास खिल उठती हैं।

विशेष—(१) प्रतीकात्मक शैली का सुन्दर प्रयोग है।

(२) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

जब ... ... सच कहना।

शब्दार्थ—लीला से=खेल-ही-खेल में। कोरक कोने मे=कलियों के भीतर। लुक रहना=छिपना; आँख मिचौनी खेलना। शिथिल=मन्द-मन्द। सुरभि=सुगन्धि। धरणी=पृथ्वी। विछलन=फिसलना; आकृष्ट होना।

भावार्थ—हे माधुर्यपूर्ण यौवन! जिस प्रकार वसन्त कलियों के भीतरी भाग में छिप-छिपकर आँख मिचौनी का खेल सीखता है और मन्दगति वाला पवन से सुगन्धित मकरन्द झड़कर धरती पर फिसलन पैदा कर देता है, क्या उसी प्रकार तुम भी प्रेम की उमंगों से हृदय मे छिपकर ठीक वैसा ही खेल सीख रहे थे, तब मंद गति से आंदोलित मादक तथा मधुर प्रेमजन्य स्मृतियों ने हृदय तल पर फिसलन उत्पन्न नहीं की थी अर्थात् यह हृदय किसी की ओर आकृष्ट नही हुआ था।

विशेष—(१) कोरक, सुरभि और विछलन—प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(२) मनोवैज्ञानिकता द्रष्टव्य है।

(३) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

जब खिलते थे ... ... कल-कल में।

शब्दार्थ—सरस हंसी=आनन्ददायिनी मुस्कराहट; फूलों का खिलना। फूलों के अंचल=फूलों की पंखुड़ियाँ; सुकोमल होठ। कलकण्ठ=मधुर स्वर। कल-कल=मधुर ध्वनि; निनाद।

भावार्थ—हे मधुरिमामय यौवन! जिस प्रकार वसन्त फूलों की पंखुड़ियों को मुसकान से भर देता है अर्थात् खिला देता है, उसी प्रकार तुम भी सुकोमल होठों पर मधुर स्मिति बिखेर देते थे और झरनों की कोमल ध्वनि के साथ अपनी मधुर वाणी को मिला दिया करते थे।

विशेष—(१) यौवनागमन पर होठों पर मुसकान एवं कण्ठ से मधुर ध्वनि स्वाभाविक है।

(२) अलंकार - उपमा।

निश्चिन्त ... ... अम्बर में।

शब्दार्थ—उल्लास=उमंग। काकली=कोयल की सुमधुर ध्वनि। दिगन्त= दिशाओं का छोर। अम्बर=आकाश।

भावार्थ—हे यौवन! बसन्तकाल में कोयल की उस मधुर वाणी में अपार आनंद एवं उत्साह भरा हुआ होता है। उसकी मधुर ध्वनि दिशाओं के छोर से टकराकर एक प्रकार की गूँज समुत्पन्न कर देती है। उसी प्रकार तुम्हारे आने पर किसी युवक या युवती के कलकण्ठ मे कितनी मधुरता एवं आनंदातिरेकता उत्पन्न हो जाती है, वही ध्वनि हृदय से टकराकर जीवन के कोने-कोने मे प्रतिध्वनित होकर एक मधुर अनुभूति उत्पन्न कर देती है।

विशेष—अलंकार—रूपकातिशयोक्ति—'जीवन दिगन्त के अम्बर' में।
'काकली के स्वर में।

शिशु चित्रकार ... ... आँखों में भरते।

शब्दार्थ—शिशु=छोटा बच्चा; भोला यौवन। चित्रित करते=चित्र रूप में प्रकट करते। ज्योतिमयी=प्रकाशयुक्त; अच्छा भविष्य। जीवन की आँखों में=जीवन रूपी आँखो में।

भावार्थ—हे यौवन! जिस प्रकार कोई भोला-भाला बच्चा अपनी स्वाभाविक चपलता से आड़ी-तिरछी रेखाओं के रूप में चित्र तैयार करता है, उन्हीं रेखाओ मे उसकी आशाएँ चित्ररूप में प्रस्तुत होती है। उन्हीं रेखाओं से उस

बालक के जीवन के विकास एवं भविष्य के विषय में एक झलक प्राप्त हो जाती है। यद्यपि उसके द्वारा खींचे गए चित्र में उतनी स्पष्टता नहीं होती, फिर भी उसके अन्दर प्रकाश अथवा भविष्य की सुखद कल्पना तो होती ही है, ठीक उसी प्रकार तुम भी हृदय-पटल पर अनेक प्रकार की आशाओं को चित्र रूप में उतारते हो, जिसमें तुम्हारी चंचलता के कारण स्पष्टता तो उतनी नहीं होती, फिर भी भविष्य के विषय में उदात्त भाव भर देते हो—उससे भी एक प्रकार की नवीन आशा उत्पन्न होती है।

विशेष—(१) यौवन की एक भोले बच्चे से तुलना की गई है, जिसमें चपलता के साथ अपरिपक्वता भी होती है।

(२) अलंकार—रूपक—'जीवन की आँखों' में।

रूपकातिशयोक्ति —'शिशु चित्रकार' मे।

लतिका घूँघट ... ... वैभव सारा !

शब्दार्थ—लतिका=लता। चितवन=दृष्टि। लतिका घूँघट=लता रूपी अवगुण्ठन। कुसुम दुग्ध=फूलों का दूध; मकरन्द। मधुधारा=माधुर्य से पूर्ण धारा। प्लावित करती=रस में डुबो देती। मन अजिर=हृदय रूपी आँगन। विश्व-वैभव=संसार का ऐश्वर्य। तुच्छ=नगण्य।

भावार्थ—हे यौवन ! वसन्त के आगमन पर जिस प्रकार फूल लताओं रूपी घूँघट से मीठी चितवन से झाँकते हुए अपने पराग की मधुरधारा वहाकर समस्त वन-प्रान्तर को सुगंधि से परिपूर्ण कर देते है, ठीक उसी प्रकार तुम्हारे आने पर पुष्प जैसी सुकोमल देव-युवतियाँ अपने घूँघट में से झाँकते हुए मधुर चितवन (दृष्टि) से आनंद की अजस्र धारा प्रवाहित करते हुए देव-युवकों के हृदय रूपी आँगन को रस-विभोर कर देती थी—इस निस्सीम आनन्द की तुलना में ससार का समस्त ऐश्वर्य नगण्य प्रतीत होता था।

विशेष—(१) भाव-साम्य के लिए बिहारी के निम्न दोहे देखिए :

चितई ललचौं हैं चखनु, डटि घूँघट-पट माँह।
छल-सौं चली छुवाइ कैं छिनकु छबीली छाँह॥
चितवनि भोरे भाइ की, गौरें मुँह मुसकानि।
लागति लटकि अली गरैं, चित खटकति नित आनि॥
अनियारे, दीरग दृगनु किती न तरुनि समान।
वह चितवन औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान॥

(२) अलंकार— उपमा 'कुसुम दुग्ध-सी' में ।

सांगरूपक—'लतिका घूंघट से चितवन की' में ।

वे फूल ... ... एकान्त बना ।

शब्दार्थ—फूल=सुकोमल देव कुमारियाँ । सौरभ=सुगन्धि । निश्वास छंता=छन-छन कर प्रेमजन्य उच्छ्वास । कलरव=प्रेमपूर्ण आलाप । संगीत= मधुरगीत; गायन । कोलाहल=शोर । एकान्त=शून्य स्थान ।

भावार्थ—मनु के हृदय मे देव-सृष्टि के विनाश की लीला के विषय में स्मृति कौंध जाती है । मनु यौवन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे यौवन ! जिस प्रकार बसन्त ऋतु के आते ही फूलो का विकास प्रारम्भ हो जाता है, वायु पराग से युक्त होकर सुवासित हो जाता है और प्रवाहित होने लगता है, पक्षियो का मधुर आलाप एवं संगीत मुखर हो उठता है, उसी प्रकार तुम्हारे आने पर फूल जैसी सुकोमल देवकुमारियो के मुखमण्डल सुविकसित होकर मधुर मुसकान बिखेर देते थे । उनके अंगों से सुगन्धि का प्रसरण होने लगता था । उनका परस्पर प्रेमालाप एवं सुमधुर गीतों का स्वर गूँजने लगता था । किन्तु अब वह चहल-पहल न रहकर मेरे लिए तो केवल शून्य स्थान बनकर ही रह गया है ।

विशेष—(१) कोमलकान्त पदावली का प्रयोग ध्यातव्य है ।

(२) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति एवं उपमा ।

कहते-कहते ... ... अभिलाषा की ।

शब्दार्थ—निश्वास=आह । प्रगति=विकास । अभिलाषा=इच्छा; विचार । अभिलाषा की प्रगति=विचारों का तारतम्य ।

भावार्थ देव सृष्टि के विनाश की स्मृति ने मनु के अन्तस् को एक प्रकार की उलझन मे डाल दिया । उनका हृदय निराशा से भर गया । मनु के मन में अनेक प्रकार की बातें प्रश्न-चिह्न बनकर रह गई । यद्यपि वे अपने मन मे आए हुए अनेक प्रकार के विचारो को प्रकट कर गए, फिर भी उनके हृदय में जिज्ञासा अब भी वैसी ही बलवती थी । अतएव उनके विचारों का सिलसिला टूट न सका । पुरानी घटनाएँ उनके हृदय को भीतर से झकझोर रही थीं ।

विशेष— मनोवैज्ञानिकता का उचित निर्वाह किया गया है ।

ओ नील आवरण ... ... बनता जितना ।

शब्दार्थ—जगती=संसार; धरती । नील आवरण=नीला आकाश ।

दुर्बोध=कठिनता से समझ सकने योग्य। अवगुण्ठन=घूंघट; पर्दा; एक प्रकार का रहस्य।

भावार्थ—मनु इस प्रकार यौवन के माधुर्य के विषय में विचार करे रहे थे। अनायास ही देव सृष्टि के विनाश का स्मरण उन्हें हो उठा—परिणाम-स्वरूप उनका हृदय खिन्न हो उठा। मनु ऊपर आकाश की ओर निहारने लगे और कहने लगे कि हे नील वर्ण आकाश! तूने इस समूचे संसार को अपने आवरण से ढंक रखा है। यद्यपि तू समस्त संसार को अपने नक्षत्र आदि से प्रकाश-मय कर देता है, फिर भी तेरा स्वरूप अन्धकारमय है। तू एक ऐसे परदे के समान है, जिसके पीछे क्या स्वरूप है—यह भेद कठिनाई से ही समझ में आ सकता है। यह सभी के लिए एक रहस्यपूर्ण बना हुआ है।

विशेष—अलंकार—रूपकातिशयोक्ति—'ओ नील आवरण जगती के' में।
विरोधाभास—'अवगुंठन होता आँखों का, आलोक रूप बनता जितना' में।

चल चक्र ... ... असफलता तेरी।

शब्दार्थ—चलचक्र वरुण का=सौरभ मण्डल; नक्षत्र मण्डल। ज्योति=प्रकाश। तारों के फूल=तारागण रूपी फूल। लुटती है=बिखरती है।

भावार्थ—मनु निराशा से व्यथित हृदय होकर आकाश में सौरभ कुल को और देखकर कहते है कि हे नक्षत्रमण्डल! तू अनवरत आकाश में भ्रमण करता रहता है, आखिर तेरे इस निरन्तर घूमने का प्रयोजन क्या है? किस लक्ष्य की प्राप्ति में तू इतना व्याकुल है? आकाश में तारे रूपी फूल इधर-उधर बिखरे पडे है। मालूम होता है तुझे सफलता नहीं मिली है—तेरी असफलताओं के रूप में ही ये दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आकाश में बिखरे हुए तारागण रूपी फूल तेरी असफलता का परिचय दे रहे है।

विशेष—अलंकार—रूपक—'तारों के फूल बिखरते हैं' में।
अपह्नुति—'लुटती है असफलता तेरी' में।
मानवीकरण—'व्याकुल तू क्यों देता फेरी',
'लुटती है असफलता तेरी' में।

नवनील ... मकरन्द हुई।

शब्दार्थ—नवनील कुंज=नए-नए नीलवर्ण युक्त कुजो के समान दिखाई देने वाले तारों का समुदाय। झीम रहे=झूम रहे। कुसुम=फूल। कुसुमों की

कथा=तारों रूपी फूलों का मधुर वार्तालाप (निरन्तर प्रकाशयुक्त होना)। अन्तरिक्ष=धरती तथा आकाश का मध्य भाग। आमोद=सुगन्धि (चन्द्रिका)। हिमकणिका=ओस की बूंद। मकरन्द=पुष्प-पराग।

भावार्थ—इस नीले रंग के आकाश में जहाँ-तहाँ तारों का समूह दिखलाई दे रहा है - ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वे फूलों से भरे नीले कुंजों के समान हों। ये नीले-नीले कुंज मादकता में विभोर होकर झूम रहे हैं अर्थात् ये फूल जैसे तारे अभी भी वैसे ही प्रकाशयुक्त हैं और अपने मधुर संलाप में लीन हैं। जिस प्रकार कुंजों में सर्वत्र सुगन्धि व्याप्त हो जाती है, उसी प्रकार अन्तरिक्ष चन्द्रमा तथा तारों की चाँदनी से व्याप्त हो रहा है। जिस प्रकार कुंजों में पुष्पों से पराग की बूंदें पृथ्वी पर टपकती हैं, उसी प्रकार ओस की बूंदें ही मानो पराग बनी हुई धरती पर बिखर रही हैं।

विशेष—(१) चंद्रमा तथा नक्षत्रों से युक्त आकाश की तुलना नील कुंजों से की गई है। आकाश का सजीव वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

(२) अलंकार - रूपकातिशयोक्ति एवं सांगरूपक।

इस इन्दीवर ... ... मोहिनी कारा।

शब्दार्थ—इन्दीवर=कमल; चन्द्रमा। मधु धारा=पराग की धारा; चाँदनी की धारा। जाली बुनना=जाल बुनना। मन मधुकर=मन रूपी भौंरा। अनुराग भरी=प्रेम (आनंद) से परिपूर्ण। मोहिनी=आकर्षणमयी। कारा= कैद; जेलखाना।

भावार्थ—शुभ्र ज्योत्स्नामयी रात्रि में आकाश में देदीप्यमान चन्द्रमा को देखकर मनु कहते हैं कि यह चन्द्रमा आकाश में कमल के फूल के सदृश विकसित हो रहा है। जिस प्रकार कमल पुष्प से पराग की धारा वातावरण में एक प्रकार की सुगन्धि का जाल-सा उपस्थित कर देती है उसी प्रकार इस चन्द्र ने भी सर्वत्र अपनी चाँदनी का जाल-सा बुनकर फैला दिया है, इससे वातावरण और भी अधिक चित्ताकर्षक बन उठा है। जिस प्रकार एक पुष्प के प्रति विशेष आकृष्ट होकर भौरा उसी के मोह-पाश में बँध जाता है उसी प्रकार इस चन्द्रमा की चाँदनी, जो एक जाली की तरह बुन गई है, अत्यधिक आनन्द से परिपूर्ण है, मोहक है, जिसने मन को विशेष रूप से आकृष्ट करके कैद कर लिया है। तात्पर्य यह है कि चन्द्रिका अत्यधिक अनुराग से पूर्ण है अतएव इसके प्रति मन विशेष रूप से आकृष्ट हो गया है।

विशेष—(१) चन्द्रिका की सुन्दर जाली बुनने की कल्पना स्वाभाविक हैं।

(२) कमल-कोश में भ्रमर अनुराग-वश ही तो वन्द हो जाता हैं। इस सम्वन्ध में एक संस्कृत विद्वान ने लिखा है—

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्
भा स्वादनुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्री:
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे।"

अनुराग स्वयं में एक अनुभूति है, जिसे शब्दों में बाँधना कठिन है।

(३) अलंकार सांगरूपक सम्पूर्ण पद मे।
रूपकातिशयोक्ति—'इन्दीवर', 'मधु की धारा' में।

अणुओं ·· ··· ··· ··· ··· **हुआ कितना।**

शब्दार्थ – अणु=अति सूक्ष्म शक्ति के कण। कृतिमय आवेग=निरन्तर कार्य में लीन रहने की तीव्रता; गतिशीलता। अविराम=अनवरत; विना विश्राम किए। नाचता कम्पन है=हर क्षण कांपते रहते हैं। उल्लास=आनंद; उमंग। सजीव=जीवित।

भावार्थ - अपने कार्य में अनवरत जुटे आकाश में विद्यमान नक्षत्रों की गतिशीलता के विषय में मनु कहते हैं कि पता नही कितने अणु लगातार आकाश में चक्कर काटते रहते हैं; उनमें कितनी अदम्य लगन है। वे कभी भी एक पल भर आराम नही करते। इनमे कितनी गतिशीलता भरी पड़ी है, इनमें न जाने कितनी उमंग भरी है, जिससे वे अपार आनंद के साथ नाचते रहते है—इनमे अनवरत कम्पन होता रहता है।

विशेष—(१) विज्ञान सम्मत तथ्य का प्रकाशन हुआ है।
(२) अलंकार – मानवीकरण एवं विशेषण विपर्यय।

उस नृत्य शिथिल ··· ··· ··· **प्राणों की छाया।**

शब्दार्थ - शिथिल=थके हुए। मोहमयी माया=मोहित करने वाला आकर्षण। समीर=वायु। प्राणों की छाया=प्राणों को शान्ति अथवा शीतलता पहुँचाने वाला।

भावार्थ— नृत्य करते हुए अणुओं को देखकर मनु कहते है कि जिस प्रकार कोई नृत्य-निपुणा अनवरत नृत्य करने से थक जाने के कारण दीर्घ श्वास लेने लगती है और उसकी उन सांसों से दर्शक का मन मोहित हो जाता है, उसी प्रकार आकाश में अनवरत विचरण करने वाले ये नक्षत्र अपने भ्रमण से थके

हुए निश्वास लेते हुए से प्रतीत होते हैं (अनवरत कम्पन से दीर्घ निश्वास की कल्पना की गई है।) जिससे दर्शकों का हृदय उनके प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हो जाता है। नर्तकी के निश्वासों की वायु दर्शकों के लिए जिस प्रकार सुखावह होती है उसी प्रकार इन नक्षत्रों से छन-छन कर निकली हुई वायु इन प्राणों को अत्यधिक शीतलता की अनुभूति करा रही है।

विशेष—अलंकार—समासोक्ति।

आकाश-रन्ध्र ·· ··· ·· थकी सी रोती है।

शब्दार्थ – रन्ध्र=छिद्र; छेद। आकाश-रन्ध्र=आकाश के तारे जो छेदों के समान प्रतीत होते हैं। पूरित=भरे हुए। गहन=गम्भीर; रहस्यमय। आलोक=प्रकाश (नक्षत्र, ग्रह आदि)।

भावार्थ—अनवरत रूप से आकाश में जगमगाते तारे ऐसे दिखलाई देते हैं जैसे आकाश मे छेद हों, आकाश धरती के ऊपर एक आवरण है, जिससे प्रकाश छिटक रहा है। इन छेदों से ही वह प्रकाश वाहर की ओर आ रहा है। ये रन्ध्र प्रकाशमय है—ये ही प्रकाश के मार्ग हैं। वातावरण में स्तब्धता है। यही कारण है कि यह सृष्टि एक प्रकार मे रहस्यमयी वन उठी है। आलोक से परिपूर्ण ये समस्त पदार्थ ग्रह, नक्षत्रादि इस समय सोए हुए है, मानो ये मूर्च्छा को प्राप्त हो गए हों। किंतु मेरे हृदय मे चिन्ता व्याप्त है—इसीलिए मेरी आंखों मे नीद नही है – इस एकान्त वातावरण मे मेरी थकी हुई आँखें चुपके-चुपके रो रही है।

विशेष (१) तारो के विषय मे छिद्रो की तथा प्रकाश निस्सरण की कल्पना सुन्दर वन पडी है।

(२) **अलंकार**—रूपक।

सौंदर्यमयी चंचल ··· जांच रहीं।

शब्दार्थ—सौंदर्यमयी=सुन्दरता से परिपूर्ण। कृतियां=रचनाएं, यथा चंद्रमा, तारे आदि। रहस्य=गहन; गुत्थी के रूप में। नाच रही है=भ्रमण कर रही है। जांच रही=वाधा के रूप में विद्यमान है।

भावार्थ—मनु कहते है कि विधि की ये अमर रचनाएँ चंद्रमा, नक्षत्र आदि सौंदर्य एवं चंचलता से युक्त है तथा आकाश में अनवरत भ्रमण करते रहते है। मेरे लिये तो यह एक गुत्थी के रूप मे है इसका भेद जानना परम कठिन है। इनके आलोक को देखकर दृष्टि वही उलझ जाती है— मेरी आँखों के आगे ये

बाधाओं के रूप में खड़ी हैं, जिससे उस अनन्त सौंदर्य (प्रकाश) के विषय में गुत्थी सुलझ ही नहीं पाती।

विशेष—कवि ने यहाँ यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि सांसारिक वस्तुओं में परम आकर्षण होता है, उसी उलझन में उलझकर साधक परब्रह्म से साक्षात्कार नही कर पाता। सांसारिक सौंदर्य भी आध्यात्मिक सौदर्य का ही अंग है—इस ओर कवि ने संकेत किया है।

मैं देख रहा ... ... घन है।

शब्दार्थ—छाया उलझन=उलझा देने वाली परछाही। धन=सहज प्राप्त न कर सकने योग्य सम्पदा (वैभव)।

भावार्थ—मनु कहते है कि मुझे आकाश में चमकने वाले गृह, नक्षत्रादि सुंदर प्रकाशपूर्ण पदार्थ दिखाई दे रहे है। ये सब मेरे मन को उलझन में डाल रहे हैं। जितना सुलझाने का प्रयत्न करता हूँ उतना ही मेरा मन उलझ जाता है, ये जगमगाते पदार्थ निस्सीम आलोक की छाया के रूप में दिखलाई दे रहे हैं। ऐमा प्रतीत होता है कि इस परदे (नीले आकाश) के पीछे असीम प्रकाश के रूप में कोई दिव्य सम्पदा है—सम्भवतः यह भव्य प्रकाश ही इन नक्षत्रों द्वारा बिखर रहा है।

विशेष—(१) रहस्यवाद की झलक स्पष्ट परिलक्षित है।
(२) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

मेरी अक्षय निधि ... ... मान तुम्हें।

शब्दार्थ-अक्षय निधि=प्रकाश का कभी नष्ट न होने वाला भण्डार। प्राणों के धागों का उलझन=प्राण रूपी धागों की उलझन। मान=मानदण्ड; आधार।

व्याख्या मनु कहते है कि हे आकाश रूपी नीले पर्दे के पीछे छिपे हुए आलोक के भण्डार! तुम्हारे वास्तविक रूप को मै अपने जीवन मे सम्यक न पहचान सका। अब तक मेरे मन की गुत्थी सुलझ नही सकी है। वे सोचते हुए कहते है कि मैं तुम्हें कभी अपने जीवन में क्या पहिचान न सकूंगा। इसी उलझन मे मेरे प्राण रूपी धागे उलझे हुए हैं—इसी उलझन को ही मैं तुम्हारे विषय में सुलझाने का आधार मान लूं अर्थात् तुम ही इस उलझन को सुलझाने में समर्थ हो—तभी मेरे प्राणों के धागे सुलझ सकेंगे।

विशेष—(१) अक्षय निधि से तात्पर्य श्रद्धा की ममता, दया और प्रेम के प्रकाश से है।

(२) **अलंकार** – रूपक - 'प्राणो के धागों' में।

रूपकातिशयोक्ति – 'अक्षय निधि' में।

माधवी लता ··· ··· ··· ··· **धारा सी।**

शब्दार्थ—माधवी निशा=वसन्त रात्रि। निशा की अलकें=रात्रि के श्याम केश-कलाप (नीले मेघ) लुकते=छिपते। सूने=नीरव। मरुअचल=रेगिस्तान; मरुस्थल। अन्तः सलिला=गुप्त नदी।

भावार्थ - धरती पर फैले सुविस्तृत नीले आकाश के विषय में विचार करते हुए मनु को श्रद्धा विषयक स्मृति हो उठती है। मनु कहते हैं कि आलोक के अक्षय भण्डार! इस वसन्त की मादक रात्रि मे आकाश में फैले नीले-नीले मेघों के अन्दर छिपती हुई तारिका के समान तुम कौन हो? तुम्हारा वास्तविक स्वरूप तो मैं अब तक न समझ सका। मेरे मन में तुमने प्रवेश करके एक प्रकार की गुत्थी पैदा कर दी। तुम तो मरुस्थल में वहने वाली एक गुप्त नदी के सदृश हो अर्थात् मेरे जीवन मे तुमने प्रवेश करके शुष्कता को दूर कर दिया। जिस प्रकार मरुभूमि मे अन्दर-ही-अन्दर वहने वाली नदी का महत्त्व होता है, उसी प्रकार मेरे जीवन में रसानुभूति तो हुई है किंतु तुम्हारे वास्तविक स्वरूप से मैं अभी तक अनभिज्ञ रहा। अभी तक मेरे लिए तुम्हारे विषय मे यह रहस्य बना ही हुआ है।

विशेष—(१) कवि ने परोक्ष रूप मे श्रद्धा के विषय मे वर्णन किया है।

(२) **अलंकार**—उपमा।

श्रुतियों में ··· ··· ··· ··· **बोल रहा।**

शब्दार्थ—श्रुतियों मे=कानो मे। मधुधारा=प्रेमानन्द से परिपूर्ण वाणी। नीरवता के परदे में=शून्य आकाश मे।

भावार्थ - मनु का कहना है कि सब ओर सुनसान वातावरण छाया हुआ है, किन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा है कि कोई मेरे कानों मे अमृतमयी धारा को भर रहा है। दूसरे शब्दों मे, मेरे कानों मे मधुर आलाप सुनाई पड रहा है। ऐसा अनुभव हो रहा है कि इस नीले आकाश रूपी परदे के पीछे से कोई व्यक्ति बोल रहा है, जिसके मैं दर्शन तो नही कर पा रहा हूँ, किन्तु उसकी कोमल और वाणी का श्रवण कर रहा हूँ।

विशेष—अलंकार—रूपकातिशयोक्ति—'नीरवता के परदे', 'कोई मधु धारा घोल रहा' में ।

पुनरुक्ति प्रकाश—'चुपके चुपके' में ।

है स्पर्श ... ... बुलाता है ।

शब्दार्थ—मलय=दक्षिण वायु; वासन्ती पवन । झिलमिल=जाली । संज्ञा=चेतनता । तन्द्रा=ऊँघना ।

भावार्थ—मनु कहते हैं कि इस सुनसान रात्रि में मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि कोई अपना मधुर और सुखद स्पर्श कर रहा हो । यह स्पर्श वासन्ती वायु के स्पर्श के समान शीतल एवं सुखद है । सम्भवतः यह स्पर्श अक्षय निधि का ही है । इस मोहक एव सुखद स्पर्श से मेरी चेतनता लुप्त होती जा रही है । आलस्य के कारण मेरी आँखें तन्द्रिल होती जा रही हैं । यह स्पर्श मेरे शरीर को रोमांचित कर रहा है ।

विशेष—अलंकार – उपमा ।

व्रीड़ा है ... ... मींच रही ।

शब्दार्थ—व्रीड़ा=लज्जा (लज्जावती नायिका) । विभ्रम=प्रेम व्यापार । मृदुल=कोमल । कर=हाथ । मींचना=वंद करना ।

भावार्थ—अक्षय निधि के अदृश्य कोमल स्पर्श से मनु की आंखें तन्द्रा-युक्त होती जा रही है । उन्हे आलस्य घेरे हुए है । जिस प्रकार लज्जावती नायिका अपने प्रिय को सम्मुख देखकर प्रेम व्यापार करती हुई लज्जावश अपना घूंघट कर लेती है और छिप जाती है, फिर पीछे से चुपके-से आकर अपने प्रिय की आँखो को अपने कोमल करों से वंद कर लेती है, उसी प्रकार आकाश के नीले आवरण के पीछे अक्षय निधि मे लज्जा एवं चंचलता का समावेश है—इसने नीले परदे का घूघट खीच रखा है—वह इस प्रकार छिपकर वैठ गई है कि मैं आँखों से भी देख नही पा रहा हूँ, किन्तु उसके कोमल एवं सुखद स्पर्श की अदृश्य अनुभूति मुझे हो रही है ।

विशेष—(१) रहस्यवादी भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है ।
(२) आँख-मिचौनी का स्पर्श हृदयग्राही वन पड़ा है ।
(३) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति एवं मानवीकरण ।

उद्‌बुद्ध ... ... किरनों की छाया में ।

शब्दार्थ—उद्‌बुद्ध=जागा हुआ । क्षितिज=धरती तथा आकाश जहाँ मिलते

हुए से दिखलाई देते है। श्याम=नील वर्ण। छटा=शोभा। उदित शुक्र= उदय हुआ शुक्र नक्षत्र। किरनो की काया=किरणों का शरीर।

भावार्थ—मनु की दृष्टि में श्रद्धा उषा के समान ही रहस्यपूर्ण है। अक्षय निधि (श्रद्धा) की तुलना उषा से करते हुए मनु कहते हैं कि क्षितिज के जाग्रत होने अर्थात् प्रातःकाल मे श्याम वर्ण की सुन्दर आभा से परिपूर्ण प्रकटित शुक्र नक्षत्र की छाया मे उषा जिस प्रकार सोती रहती है, उसी प्रकार अक्षय निधि भी अपने मे एक विशेष रहस्य को संजोये हुए नीले आकाश में नक्षत्रो की शीतल छाया मे इस अनूपम आलोक की किरणों को विग्रह (शरीर) रूप में धारण किए हुए शयन कर रही है। यही कारण है कि उसके वास्तविक रूप का सम्यक् पता नही चलता है।

विशेष—(१) सादृश्य-योजना सजीव और मर्मस्पर्शी है।
(२) अलंकार—पूर्णोपमा और मानवीकरण।

उठती है ... . दूर बजे वंशी।

शब्दार्थ—किसलय की छाजन=पत्तो का बना हुआ छप्पर। निस्वन = शब्द; ध्वनि। रन्ध्र=छेद; छिद्र।

भावार्थ—मनु अक्षय निधि को दूर से बजती हुई वंशी के सदृश समझते हुए कह रहे हैं कि वह एक ऐसी मुरली के समान है, जिसकी ध्वनि दूर से उनके कानो मे आ रही है। वंशी के छिद्रों में से निस्सरित वह ध्वनि उन्हें ऐसा प्रतीत हो रही है, मानो किरणों के ऊपर कोमल पत्तो से बना हुआ एक छप्पर हो। कहने का तात्पर्य यह है कि श्रद्धा के मधुर कण्ठ से फूटे हुए स्वर मनु के कानों तक अभी भी पहुँच रहे है, जिस प्रकार दूर से वंशी के छेदो से सुमधुर स्वर निकल रहे हो।

विशेष—(१) सादृश्य-योजना सुन्दर बन पडी है।
(२) अलंकार उपमा और उत्प्रेक्षा।

सब कहते हैं ... ... दर्शन की।

शब्दार्थ—जीवन धन=जीवन का सर्वस्व; आलोक की रहस्यमयी निधि। छवि=शोभा। स्वयं=खुद। आवरण=परदा।

भावार्थ—इस विश्व के समस्त लोग प्रकाश की अक्षय निधि के शुभ-दर्शन के लिए विशेष रूप से समुत्सुक है। अक्षय निधि सभी का जीवन सर्वस्व है। यही कारण है कि सभी उसके शुभ-दर्शन-हेतु नीले आवरण को खोल देने के

लिए पुकार रहे है। सभी उस अक्षय निधि की अनुपम शोभा को अपनी आँखों से देखना चाहते हैं। विशेष रूप से सभी लालायित होकर भीड़ के रूप में एकत्रित हो गए है। अतएव कोई भी उसके दर्शन नहीं कर पाता। तात्पर्य यह है कि भीड़ के कारण एक ने दूसरे के लिए आवरण बनाकर रख दिया है। ऐसी स्थिति मे उस परम अक्षय निधि के दर्शन भला किस प्रकार संभव हो सकते हैं।

विशेष—(१) भीड़ के बिम्ब का सजीव वर्णन है। भीड़ हो जाने पर कोई भी दर्शक उस परम प्रकाश निधि का दर्शन नहीं कर पाता।

(२) यहाँ 'आवरण' शब्द से शैव-दर्शन के षट्-कंचुकों की ओर इंगित किया है। षट्-कंचुक इस प्रकार है—माया, कला, विद्या, काल, राग तथा नियति। इन छह कंचुकों से घिर जाने के कारण आत्मा अपने चेतन स्वरूप को भूल जाती है। आत्म साक्षात्कार के लिए इन छह प्रकार के कंचुकों से मुक्त होना परमावश्यक है।

(३) अलंकार—वीप्सा—'खोलो खोलो' में।
परिकरांकुर—'जीवन-धन' मे।

चांदनी-सा ... ... विचरता-सा।

शब्दार्थ—सदृग=समान। अवगुण्ठन=परदा; घूँघट। अनन्त=निस्सीम; अक्षय-निधि; शेष नाग; समुद्र। कल्लोल=लहरें; क्रीड़ा।

भावार्थ—आलोक के अक्षय-निधि के विषय में विचार करते हुए मनु कह रहे हैं कि अक्षय-निधि पर जो नीला आवरण एक प्रकार के घूँघट के रूप में पड़ा हुआ है—बस वही नीला आकाश ही उसके वास्तविक एवं अनुपम स्वरूप को पहिचानने मे बाधक सिद्ध हो रहा है। जिस प्रकार चंद्रमा से चन्द्रिका का आवरण हट जाता है, उसी प्रकार नील आकाश रूपी परदा हट जाए तो यह प्रकाश-निधि किरण रूपी लहरों में क्रीड़ा करती हुई सागर के समान दिखाई देने लगेगी।

विशेष—अलंकार—रूपकातिशयोक्ति—'अवगुण्ठन' तथा 'कल्लोल' में।
उपमा—'चांदनी सदृग खुल जाए कहीं' में।

अपना फेनिल फन ... ... गाता-सा।

शब्दार्थ—फेनिल=फेन अर्थात् झागों से युक्त। मणियों का जाल=मणियों का समुदाय अर्थात् तारे-नक्षत्र आदि। लुटाता-सा=बिखेरता हुआ-सा। उन्निद्र=जाग्रत; निद्रा-रहित। उन्मत्त=मत्त।

भावार्थ—अक्षय निधि रूपी अनन्त सागर के रूप मे विचार करते हुए मनु कह रहे है कि अक्षय निधि अनन्त प्रकाश की लहरों के साथ क्रीड़ा करते अनन्त सागर के समान दृष्टिगोचर हो रही है जिस प्रकार फेन से युक्त शेषनाग के फनों के समान उत्ताल तरंगें उठ रही हों। लहरों से बिखरने वाली मणियों के समूह के सदृश चन्द्रमा, तारे आदि विकीर्ण दिखलाई दे रहे हों। उमड़ती-घुमडती लहरें मस्ती के साथ झूमने शेषनाग के फनों से निस्सरित ध्वनि एक प्रकार के गर्जन का रूप धारण कर रही हो।

विशेष—(१) प्रकृति-चित्रण की अनुपमता ध्यातव्य है।

(२) प्रसादजी ने लहरो की तुलना शेषनाग के फनों से 'चिन्ता सर्ग' में इस प्रकार की है—

उधर गरजती सिंधु लहरियां,
कुटिल काल के जालों-सी।
चली आ रहीं फेन उगलती,
फन फैलाए व्यालों-सी॥

(३) **अलंकार** - श्लेष—'अनन्त' में।
रूपकातिशयोक्ति—'फेनिल फन', 'मणि' में।
सांगरूपक—समस्त पद में।

जो कुछ हो .. .. **संयम बन के।**

शब्दार्थ—जीवन का मधुभार=गृहस्थ बनने का बोझ; नूतन सृष्टि के रचयिता का दायित्व। दम=दमन; बाहरी शक्तियों पर रोक। संयम=इन्द्रियो को वश में करना।

भावार्थ—इस प्रकार मनु आलोक की अक्षय निधि तथा श्रद्धा के विषय में नाना प्रकार की कल्पना करते रहे। अन्त में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि श्रद्धा द्वारा आत्मसमर्पण किए जाने पर भी उन्हें यह स्वीकार्य नहीं है। इस नवीन सृष्टि के दायित्व का भार भी वे अपने कंधो पर लेना नही चाहते। वे गृहस्थ के मधुर भार को भी स्वयं संभालने के पक्षपाती नहीं है। इस प्रवृत्ति मार्ग का अनुसरण किसी भी दशा में वे नही करना चाहते, चाहे उनके समक्ष कितनी भी बाधाएं दम, संयम आदि का रूप धारण करके क्यों न आ जावें।

विशेष— (१) मनु अपनी आँखों से देव-सृष्टि के विनाश की लीला का दृश्य देख चुके हैं। माया एवं ममता के मोहपाश में फंसकर अनेक देव-जातियाँ

अपने को विनष्ट कर चुकी हैं—इसके कुपरिणाम से मनु भली-भाँति अवगत हैं। अतएव श्रद्धा को अपनाने में हिचकिचाहट का अनुभव कर रहे है। गृहस्थ जीवन भी एक मधुर भार है, क्योंकि इसमें अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करना पड़ता है। साथ ही, मानव स्वयं सुखी रहकर अपने आश्रित प्राणियों को सुख देने के प्रति सचेष्ट रहता है।

(२) अलकार—रूपक।

नक्षत्रों तुम क्या ··· ··· ··· ··· जाली क्या है।

शब्दार्थ—नक्षत्रों=अन्तरिक्ष मे चक्कर काटने वाले तारे। (यहाँ इन्द्रियों से आशय है)। उषा की लालिमा=प्रातःकालीन लालिमा (यहाँ श्रद्धा से तात्पर्य है)। संकल्प=दृढ़ निश्चय। सदेहों की जाली=उलझन।

भावार्थ—अन्तरिक्ष में चक्कर लगाने वाले नक्षत्रों को स-बोधित करते हुए मनु कह रहे है कि तुम अन्तरिक्ष में अनवरत अक्षय निधि के रहस्य के विषय, अन्वेषण में भ्रमण करते रहते हो किंतु तुम्हें अक्षय निधि के रहस्य के विपय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। प्रकाश की अक्षय निधि ही प्रात.कालीन लालिमा (उषा) के रूप में दिखलाई दे रही है। यह माना कि तुम्हारे हृदय में उस अक्षय निधि के शुभ दर्शन की लगन तथा लालसा अदम्य है किंतु तुम तो आकाश में उषा की लालिमा के प्रकट होने से पहले ही छिप जाते हो। प्रकारान्तर से, तात्पर्य यह है कि हे इन्द्रियो! तुम सर्वदा भटकती फिरती हो। क्या तुम्हारे अन्दर भी वैसा ही दृढ निश्चय है, जैसा कि नक्षत्रो के अन्दर अक्षय निधि के आलोक के प्रति है? तुम्हे श्रद्धा के अनुपम एवं दिव्य सौंदर्य के विषय में तनिक भी ज्ञान नही है। तुम तो एकान्त नीरव स्थान में ही सदा भटकती रही हो। यदि तुम्हारे अन्दर दृढ़ संकल्प है तो कही भी किसी प्रकार की उलझन नही है।

विशेष—अलंकार=रूपकातिशयोक्ति।

कौशल यह ··· ··· ··· ··· बनोगी क्या ?

शब्दार्थ—कौशल=कारीगरी; निर्माण की कला। सुषमा=शोभा। दुर्भेद्य=जिसे कोई भेद न सके। चेतना=व्याकुलता।

भावार्थ—श्रद्धा के अनुपम सौदर्य पर प्रकाश डालते हुए मनु कह रहे हैं कि विधाता ने उसकी रचना में कितना अपार चातुर्य दिखलाया है। मेरी इन्द्रियाँ उसकी दिव्य छटा को देखने के लिए विशेष आतुर हो उठी है। श्रद्धा का वह दिव्य सौंदर्य सदा के लिए मेरी समझ से बाहर ही रहेगा। मैं उसे क्या

नहीं समझ सकूंगा ? क्या श्रद्धा मेरे लिए कल्पना की ही वस्तु बनकर रह जावेगी। मेरी इन्द्रियों में जो व्याकुलता है, क्या यही व्याकुलता मुझे पराजित कर देगी। यही कारण है कि गृहस्थ का मधुर भार स्वीकार करने की मैं सामर्थ्य नही रखता। यही कारण है कि मनु के हृदय में तद्विषयक आकर्षण होते हुए भी विरक्ति है।

विशेष—मनु के अन्तर्द्वन्द्व का सजीव चित्रण द्रष्टव्य है।

पीता हूँ … … … … … गुंजार भरा।

शब्दार्थ—मधु लहरों=प्रेमजन्य भावनाओं। गुंजार=गूंज।

भावार्थ—श्रद्धा के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट मनु का हृदय सच्चाई को छिपा नहीं पाता। अतएव वे कहते है कि श्रद्धा मेरे पास यद्यपि नही है किंतु उसकी मधुर स्मृतियाँ मुझे उसकी निकटता का आभास करा रही है। उसके इस समय अदृश्य होने पर भी स्पर्श, रूप, गंध से भरा रस का मैं पान कर रहा हूँ। प्रत्येक इन्द्रिय अपने व्यापार के अनुरूप रूप , गंध, स्पर्श आदि का पान कर रही है। मेरे हृदय मे तद्विपयक प्रेम की मधुर भावनाओं का उत्स-सा फूट पड़ा है। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि जैसे मधुर भावों के टकराने से एक प्रकार की गूँज हो रही हो।

विशेष—अलंकार—वीप्सा।

तारा बनकर … … … … अवसाद भरे।

शब्दार्थ—स्वप्न=सपना। उन्माद=मस्ती। माती=मतवाली। अवसाद=उदासी; खिन्नता।

भावार्थ—मनु का कथन है कि मेरा मन दिव्य आकर्षण से सुव्याप्त है तथा मेरी ये इन्द्रियाँ अपने-अपने अनुरूप कार्य-व्यापार में संलग्न है, फिर भी मैं यह नही समझ पा रहा हूँ कि मेरे संजोए हुए मीठे-मीठे सपने टूटते क्यों जा रहे हैं। उन सपनों की मस्ती इस प्रकार बिखरती-सी अनुभव हो रही है जिस प्रकार आकाश मे बिखरे हुए तारे, नक्षत्र आदि। पुनः मनु कहते है कि क्या इस खिन्नता को अपने मन में रखकर मदिरा के समान मस्ती देने वाली नीद के साथ मुझे सोना ही पड़ेगा।

विशेष—अलंकार—रूपक 'तारा बनकर यह बिखर रहा' में।
मानवीकरण—'मादकता माती नीद लिए' में।

चेतना शिथिल ... ... पिछले पहरों में।

शब्दार्थ—शिथिल=ढीली; थकी हुई। अंधकार की लहरों में=अन्धकार रूपी समुद्र की लहरों में। रजनी=रात।

भावार्थ—यहाँ मनु की निद्रालीन स्थिति का वर्णन किया गया है। रात्रि में मनु ऊहापोह में पड़े रहे। रात्रि के अन्तिम क्षणों में उन्हे निद्रा ने घेर लिया। उनकी चेतना अब शिथिल सी हो गई थी। सर्वत्र अंधकार का वातावरण हो गया था। जिस प्रकार अंधकार समुद्र की लहरों के साथ वहकर संज्ञाहीन हो जाता है उसी प्रकार की स्थिति मनु की उस समय हो गई थी।

विशेष—(१) निद्रालीन स्थिति की कल्पना समुद्र की लहरों के साथ की है।

(२) अलंकार—सांगरूपक—सम्पूर्ण पद में।

उस दूर क्षितिज ... ... माया से।

शब्दार्थ—क्षितिज=धरती और आकाश के परस्पर मिलने का स्थान, यहाँ 'स्वप्न' से तात्पर्य है। स्मृतियों की सचित छाया से=दवी हुई वासनाएं जो अचेतन मन मे एकत्रित हो गयी थी। माया=ममता।

भावार्थ-श्रद्धा के विपय मे विचार करते-करते मनु की चेतना शिथिल होने लगी और वे निद्रा में लीन हो गए। उन्हे अनेक प्रकार के स्वप्न दिखलाई देने लगे। जव चेतन मन शिथिल हो जाता है तो अचेतन मन में दवी हुई वासनाओं को प्रकट होने का सुअवसर मिल जाता है। अतएव मनु भी स्वप्न में एक नवीन लोक मे विचरण करने लगे। निष्कर्ष यह है कि मनुष्य का स्वभाव वड़ा ही चंचल होता है और वह प्रतिक्षण कहीं-न-कही घूमता ही रहता है—उसे विश्राम करने का तनिक भी अवकाश नही है।

विशेष—मनोवैज्ञानिकता का उचित निर्वाह हुआ है। चेतन मन के शून्य हो जाने पर अवचेतन मन मे एकत्रित दवी हुई वासनाएँ एक-एक करके स्वप्न में उभरती है। एक प्रसिद्ध आलोचक ने इस सम्वन्ध मे लिखा है—"कवि का उक्त कथन फ्रॉयड के स्वप्न-सिद्धान्त (Dream Theory) से मिलता-जुलता है। फ्रॉयड ने स्वप्नों के वारे में विश्लेपण करके पता चलाया है कि प्रायः सभी स्वप्न हमारी दमित वासनाओं के प्रकाशक होते हैं। हमारी जो इच्छाएँ और वासनाएँ सामाजिक प्रतिवन्धों के द्वारा दवा दी जाती है, वे कभी नष्ट नहीं होती, वरन् हमारे अवचेतन मन मे एकत्रित रहती है। जाग्रतावस्था में तो ये

वासनाएँ प्रतिरोधकों (Censors) द्वारा रोक दी जाती हैं, परन्तु निद्रा के आते ही ये प्रतिरोधक शिथिल हो जाते हैं। इसी कारण अवचेतन मन में स्थित वासनाएँ फिर वेष बदल-बदलकर हमारे स्वप्नों में प्रकट हुआ करती है। यहाँ पर भी श्रद्धा के प्रति आकर्षण की भावना को मनु ने दबाने का प्रयत्न किया है, परन्तु उनके सोते ही वह भावना स्वप्न के रूप में उनके सामने उपस्थिति हुई है।"

जागरण लोक ... ... क्रीड़ागार हुआ।

शब्दार्थ—जागरण लोक=दिखाई देने वाला बाहरी संसार। कौतुक=आश्चर्य। क्रीडागार=क्रीड़ा का स्थान।

भावार्थ—जाग्रत अवस्था में मनुष्य वाह्य संसार को देखता है जो नाना प्रकार की बाधाओं तथा संकटों से आपूरित है किंतु सोने पर मनु बाह्य संसार को तो भूल गये और स्वप्न मे अनेक प्रकार के सुखों की अनुभूति करने लगे। इस प्रकार वह स्वप्निल संसार भी उन्हे मनोरंजन एवं बहुविध क्रीडाओं के स्थल रूप मे अनुभूत होने लगा।

विशेष अलकार—रूपक।

था व्यक्ति ... ... ध्वनि गहरी।

शब्दार्थ—आलस=निद्राजन्य आलस्य। सजग=सावधान; सचेत। कानों के कान खोलकर=अधिक सावधान होकर।

भावार्थ—अनेक प्रकार के तर्क-वितर्कों में मनु का हृदय उलझा हुआ था। यद्यपि निद्राजन्य आलस्य मनु को घेरे हुए था। चेतना शून्य-सी प्रतीत हो रही थी किंतु यह चेतना तो मनुष्य की जाग्रत एवं सुषुप्त—दोनों अवस्थाओं में ही विद्यमान होती है। मनु का अचेतन मन काम की ध्वनि को सावधान होकर सुन रहा था। जाग्रत अवस्था में तो मनु ने श्रद्धा को ग्रहण करने का निश्चय किया था किंतु सुषुप्तावस्था में काम द्वारा श्रद्धा को स्वीकार कर लेने की ध्वनि मनु को सुनाई दे रही थी।

विशेष—यहाँ 'ध्वनि' शब्द से 'काम' द्वारा दिए गए संदेश की ओर संकेत है।

प्यासा हूँ ... ... चैन हुआ।

शब्दार्थ—ओघ=प्रवाह; वासना की वेगमयी धारा। तृष्णा=प्यास; उत्कट लालसा।

भावार्थ—इस समय मनु निद्रा में लीन है और काम मनु को अपना संदेश प्रारम्भ करते हुए कह रहा है कि मैं अभी भी प्यासा हूँ। मेरी प्यास अभी तक नहीं बुझ सकी है। देवसृष्टि मे वासना की तीव्र धारा प्रवाहित होती रही है किंतु मेरी प्यास तो अब तक शान्त नहीं हो पायी है। वह धारा रूप वेगमय प्रवाह मेरे लिए किस काम का, जिससे मेरी उत्कट लालसा अब तक शान्त न हो सकी। यह तीव्र धारा प्रवाहित होकर आई और आकर चली गयी किन्तु मेरी अदम्य लालसा अभी भी ज्यों-की-त्यों अतृप्त रूप में बनी हुई है।

विशेष—अलंकार—वीप्सा—'प्यासा हूँ, मैं अब भी प्यासा हूँ' में।
रूपकातिशयोक्ति—'ओध' में।

देवों की सृष्टि ... ... सबको घेरे।

शब्दार्थ—विलीन=नष्ट। अनुशीलन=अभ्यास; अनुरूप आचरण। अनुदिन=प्रतिदिन। अतिचार=उल्लंघन। उन्मत्त=मत्त।

भावार्थ देवताओं की सृष्टि के विनाश के मूल कारण का प्रतिपादन करता हुआ अपने संदेश में काम कह रहा है कि देवता लोग मेरे प्रति विशेष रूप से आकृष्ट रहे तथा मेरे अनुकूल वे नित्यप्रति आचरण करते रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्हें प्रतिक्षण वासनाएँ आक्रान्त करती रही। इस प्रकार मेरे द्वारा किया गया आचारोल्लंघन कभी पल भर के लिए भी शान्त नहीं हुआ। मैं स्वयं भी मदमत्त रहा और मैं उन्हें भी मतवाला बनाता रहा।

विशेष—(१) उपर्युक्त तथ्य की ओर प्रसादजी ने चिन्तासर्ग में निम्न-पंक्तियों में प्रकाश डाला है—

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित
हम सब थे भूले मद में
भोले थे, हाँ, तिरते केवल
सब विलासिता के नद में।
भरी वासना सरिता का,
वह कैसा मदमत्त प्रवाह।
प्रलय-जलधि में संगम जिसका
देख हृदय था उठा कराह॥

वास्तव मे, देव सृष्टि के विनाश का मूल कारण उनकी भोग-विलासात्मक प्रवृत्ति ही तो थी।

(२) अलंकार—मानवीकरण।

मेरी उपासना ... ... वितान तना।

शब्दार्थ —विधान=नियम। विलास-वितान=विलास रूपी चांदना।

भावार्थ—काम का कथन है—समस्त देव जाति मेरी प्रार्थना में ही व्यस्त रहने लगी थी अर्थात् सभी की प्रवृत्ति अहर्निश भोग-विलासों में ही हो गई थी। मेरे द्वारा किए गए प्रत्येक संकेत को उन्होंने नियम रूप में समझ रखा था—वे मेरे अनुकूल आचरण करने में दत्त-चित्त हो गए थे। यहां तक कि मैंने (काम ने) उन्हें अपने मोहपाश में अधिक आबद्ध कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप भोग-विलास रूपी चंदोवा जैसे आकाश में तन गया हो।

विशेष—(१) काम का प्रभावोत्पादक एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन किया गया है।

(२) अलंकार—रूपक—'विलास वितान' में।
मानवीकरण—समस्त पद में।

मैं काम रहा ... ... जीवन था।

शब्दार्थ —सहचर=संगी; साथी। विनोद=मनोरंजन। कृतिमय=क्रियाशील।

भावार्थ —देव जाति के हृदय में मैं प्रतिक्षण रहने लगा—इस प्रकार मैं हर समय उनके साथ रहने वाले एक साथी के रूप में उपस्थित हो गया। मैं (काम) देवताओं के मन-बहलाव के एक साधन के रूप में प्रस्तुत हो गया। मेरे सर्वदा उपस्थित रहने पर उनके हृदय में भोग-विलासात्मक प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से उभरने लगी—इस प्रकार वे देवगण हँसा करते और मैं भी हँसा करता था। देव जाति के जीवन को अत्यधिक क्रियाशील बनाने का कार्य मेरा ही था।

विशेष —काम-क्रीडा का मनोहर चित्रण है—विलासितापूर्ण चेष्टाओ के जनक के रूप में काम का निरूपण हुआ है।

जो आकर्षण ... ... उसकी चाह रही।

शब्दार्थ —रति=काम की स्त्री। अनादि वासना=सृष्टि से पूर्व की वासना। अव्यक्त=अस्पष्ट। उन्मीलन=विकास।

फूलों का उत्सव मनाया जा रहा हो—चतुर्दिक फूलों का विकास प्रारम्भ हो गया है तथा सब जगह मोहित करने वाले-पराग की वर्षा हो रही है।

विशेष—अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

भुज लता पड़ी ... दो दो साथ हुए।

शब्दार्थ—भुजलता=लता के समान भुजाएं। सरिता=नदी। शैल=पर्वत। सनाथ=युक्त; सफल। जल निधि का अंजल=सागर का अंचल अर्थात् लहरें। व्यजन=पंखा। धरणी=धरती।

भावार्थ सबसे पहले सृष्टि की रचना में प्राकृतिक पदार्थ उत्पन्न हुए। पर्वत तथा नदी—एक युग्म के रूप में उत्पन्न हुए। नदियां पर्वतों से प्रवाहित होते हुए ऐसी दिखलाई दे रही थीं मानो किसी नायिका ने लता रूपी भुजाओं को पर्वत के गले मे डालकर सफल कर दिया हो। समुद्र तथा पृथ्वी का युग्म इस प्रकार से दिखलाई दे रहा है कि पृथ्वी-नायिका को प्रसन्न करने हेतु सागर नायक के रूप में लहरों रूपी पखों से हवा कर रहा हो। इस प्रकार सृष्टि की संरचना में पदार्थ युग्म के रूप में उत्पन्न हुए।

विशेष—अलंकार—रूपक 'भुजलता' तथा 'अचल व्यंजन में।

समासोक्ति एवं मानवीकरण—समस्त पद में।

कोरक अंकुर-सा ... फूल चले।

शब्दार्थ—कोरक=कली। दोनों साथी=काम तथा रति। झूल चले=मस्ती में झूमना। नवल=नवीन। कानन=वन। मृदु मलयानिल=कोमल स्पर्श युक्त, मलय पर्वत से प्रवाहित वायु (शीतल, मंद, सुगंधित पवन)। फूलना=विकसित होना; प्रसन्न होना।

भावार्थ—सृष्टि में अपना महत्त्व प्रतिपादित करते हुए काम कहता है कि जिस प्रकार कलिका में अंकुर का जन्म होता है, ठीक उसी प्रकार सृष्टि के विकास क्रम में हम दोनों (काम एवं रति) का जन्म हुआ और जिस प्रकार कलिका में अंकुर शीतल, मंद एवं सुगंधित पवन द्वारा सुविकसित होता है, उसी प्रकार हम दोनों मादकता में विभोर होकर (मस्त होकर) विकसित होने लगे।

विशेष—(१) सृष्टि के विकास-क्रम के अन्तर्गत काम एवं रति का जन्म कलिका में जन्म लेने वाले अंकुर के सदृश बतलाया गया है।

(२) अलंकार—रूपक—'नवल सर्ग के कानन' में।

उपमा—'कोरक अंकुर-सा' में।

कुंकुम का चूर्ण ... ... झलकते-से ।

शब्दार्थ—कुंकुम=केशर । मधु उत्सव=वसन्तोत्सव । विद्युत्कण=अणु-परमाणु । ललकना=लालायित होना ।

भावार्थ—उस मूल शक्ति की प्रेरणा से अन्तरिक्ष मे देदीप्यमान तथा भ्रमण करते हुए समस्त अणु-परमाणु आपस मे मिलने लगे, जिससे प्रकाश उत्पन्न हुआ । ऐसा प्रतीत हो रहा था, जिस प्रकार वसन्तोत्सव पर लालायित होकर अणु-परमाणु गले मिलने के लिए आतुर होकर गुलाल या केशर उडा रहे हो ।

विशेष—अलंकार—उपमा और सागरूपक ।

वह आकर्षण ... ... अपनी माया में ।

शब्दार्थ—आकर्षण=मोहन; खिचाव । माधुरी छाया=अनादि शक्ति (मूल शक्ति) की छाया । माया=मोहित कर देने वाली शक्ति ।

भावार्थ—आकाश में परमाणुओं तथा अणुओं का परस्पर सम्मिलन एवं खिचाव उस मूल शक्ति की सन्निधि में हुआ था । इन अणुओ तथा परमाणुओं के पारस्परिक संयोग से ही समूची सृष्टि की रचना हुई, जो सभी के हृदय को अत्यधिक मोहित कर देने वाली दिखलाई दे रही थी ।

विशेष—अणुओं तथा परमाणुओं के सम्मिलन से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई । कणाद का परमाणुवाद इसी तथ्य की ओर इंगित करता है । तर्क भाषा में भी इसी प्रकार से द्वयणुक, त्र्यणुक तथा चतुरणुक प्रक्रिया द्वारा स्थूलतम आदि पदार्थों की उत्पत्ति हुई । आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त इसी पर आधारित है ।

प्रत्येक नाश ... ... की वृष्टि रही ।

शब्दार्थ—नाश विश्लेषण=पदार्थों का विद्युत रूपों के रूप में नष्ट होकर इधर-उधर बिखरना । संश्लेषण=बिखर कर इकट्ठे होना । ऋतुपति=ऋतुराज; वसन्त । कुसुमोत्सव=फूलों का उत्सव अर्थात् फूलों का विकास । मरन्द=पराग; मकरन्द । वृष्टि=वर्षा ।

भावार्थ—इस सृष्टि की रचना से पहले प्रत्येक नष्ट हुआ पदार्थ, उसके अणु-परमाणु आकाश में बिखरे हुए थे—पुनः वे एकत्र होने लगे । सृष्टि की प्रारम्भ हो गई । उसे देखकर ऐसा अनुभव हो रहा था, मानों बसन्त का

फूलों का उत्सव मनाया जा रहा हो—चतुर्दिक फूलों का विकास प्रारम्भ हो गया है तथा सब जगह मोहित करने वाले पराग की वर्षा हो रही है।

विशेष—अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

भुज लता पड़ी ... दो दो साथ हुए।

शब्दार्थ—भुजलता=लता के समान भुजाएं। सरिता=नदी। शैल=पर्वत। सनाथ=युक्त; सफल। जल निधि का अंजल=सागर का अंचल अर्थात् लहरें। व्यजन=पंखा। धरणी=धरती।

भावार्थ सबसे पहले सृष्टि की रचना में प्राकृतिक पदार्थ उत्पन्न हुए। पर्वत तथा नदी—एक युग्म के रूप में उत्पन्न हुए। नदियां पर्वतों से प्रवाहित होते हुए ऐसी दिखलाई दे रही थीं मानो किसी नायिका ने लता रूपी भुजाओं को पर्वत के गले में डालकर सफल कर दिया हो। समुद्र तथा पृथ्वी का युग्म इस प्रकार से दिखलाई दे रहा है कि पृथ्वी नायिका को प्रसन्न करने हेतु सागर नायक के रूप में लहरों रूपी पखों से हवा कर रहा हो। इस प्रकार सृष्टि की संरचना में पदार्थ युग्म के रूप में उत्पन्न हुए।

विशेष—अलंकार—रूपक 'भुजलता' तथा 'अचल व्यंजन में।

समासोक्ति एवं मानवीकरण—समस्त पद में।

कोरक अंकुर-सा ... फूल चले।

शब्दार्थ—कोरक=कली। दोनों साथी=काम तथा रति। झूल चले=मस्ती में झूमना। नवल=नवीन। कानन=वन। मृदु मलयानिल=कोमल स्पर्श युक्त, मलय पर्वत से प्रवाहित वायु (शीतल, मंद, सुगंधित पवन)। फूलना=विकसित होना; प्रसन्न होना।

भावार्थ—सृष्टि में अपना महत्त्व प्रतिपादित करते हुए काम कहता है कि जिस प्रकार कलिका में अंकुर का जन्म होता है, ठीक उसी प्रकार सृष्टि के विकास क्रम में हम दोनों (काम एवं रति) का जन्म हुआ और जिस प्रकार कलिका में अंकुर शीतल, मंद एवं सुगंधित पवन द्वारा सुविकसित होता है, उसी प्रकार हम दोनों मादकता में विभोर होकर (मस्त होकर) विकसित होने लगे।

विशेष—(१) सृष्टि के विकास-क्रम के अन्तर्गत काम एवं रति का जन्म कलिका में जन्म लेने वाले अंकुर के सदृश बतलाया गया है।

(२) **अलंकार**—रूपक—'नवल सर्ग के कानन' में।

उपमा—'कोरक अंकुर-सा' में।

हम भूख-प्यास ... ... यौवन वय में ।

शब्दार्थ - आकांक्षा तृप्ति=इच्छाओं की सन्तुष्टि । समन्वय=मिलन । यौवन वय=पूर्ण विकास-अवस्था ।

भावार्थ—सृष्टि के विकास-क्रम में समस्त प्राणियों को जिस प्रकार क्षुधा एवं तृषा का अनुभव होता है, उसी प्रकार हम समस्त प्राणियों के भीतर निवास करने लगे । हृदय मे इच्छाओं को प्रेरित करना मेरा ही कार्य था और उन इच्छाओं की सन्तुष्टि रति का कार्य था । हम दोनों (काम और रति) सभी प्राणियों में आकांक्षा तथा तृप्ति के मिश्रित रूप में उपस्थित रहा करते थे । सदा पूर्ण रूप में विकास को प्राप्त होने वाली सृष्टि के अन्तर्गत कालान्तर में काम तथा रति के नाम से जाने गए ।

विशेष— काम तथा रति के समन्वित रूप को 'मैथुन' नाम से अभिहित किया गया है जो समस्त प्राणियों में समान रूप से निम्न शब्दों में मिलता है—
आहार निद्रामय मैथुनंच सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणम् ।

सुरबालाओं ... ... मधुमय थी ।

शब्दार्थ—सुरबालाओं=देव बालाएं । हृत्तंत्री=हृदय रूपी वीणा । लय=राग । राग=प्रेम । मधुमय=माधुर्य से परिपूर्ण ।

भावार्थ - काम की पत्नी रति उन देव-बालाओं की सदा साथ रहने वाली सखी के रूप में उपस्थित रहती थी । वह सर्वदा देव-बालाओं के अन्तस् में प्रेमजन्य मधुरिमापूर्ण भावों को वीणा की सुमधुर एव कोमल ध्वनि के समान उत्पन्न किया करती थी । इस प्रकार रति उन देवांगनाओं के मन की अनेक गुत्थियों को सुलझाया करती थी । इसका कारण यह था कि रति स्वयं अनुराग एवं मधुर भावों से ओतप्रोत थी ।

विशेष—(१) काम के शब्दो में 'रति' के कार्यों का वर्णन किया गया है ।
(२) अलंकार—रूपक—'हृत्तन्त्री' में ।

मैं तृष्णा था ... ... पथ पर उनके ।

शब्दार्थ—तृष्णा=प्यास; उत्कट अभिलाषा । तृप्ति=संतुष्टि ।

भावार्थ—काम कहता है कि मैं उन देव-युवकों तथा युवतियों में पारस्परिक मिलने के प्रति उत्कट इच्छा के रूप मे जाग्रत करता था और रति उनके लिए सन्तुष्टि का मार्ग अग्रसरित करती । तात्पर्य यह है कि इच्छाओं को जाग्रत करने का कार्य मेरा तथा उन इच्छाओं की सन्तुष्टि करने का कार्य रति का था । इस

प्रकार हम दोनों मिलकर देवों के हृदय को अत्यधिक प्रफुल्लित करते हुए उन्हें विलासात्मक प्रवृत्तियों के मार्ग पर आगे बढ़ाकर ले चले। उनके कदम वासना की दिशा में बढ़ने लगे।

विशेष—काम के वासनाजन्य रूप का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक निरूपण हुआ है।

वे अमर रहे ··· ··· ··· ··· प्रसंग हुआ।

शब्दार्थ—अमर=देव। विनोद=विलास के साधन। अनंग=अंगहीन। संचित=एकत्रित। प्रसंग=अवसर।

भावार्थ—काम अपने अद्यतन स्वरूप का निरूपण करते हुए मनु को समझाता है कि प्रलय होने के कारण ही देवजाति नष्ट-भ्रष्ट हो गई। अब न तो देवजाति ही अवशिष्ट रही है और न मनोविनोद के साधन ही शेष रहे हैं। ऐसी स्थिति में देवजाति में विलासमयी प्रवृत्ति में जितना कुछ श्रेय मुझे मिला, वह भी समाप्तप्राय: हो गया। मेरा अस्तित्व ही व्यर्थ रहा, क्योंकि सब साधन ही नष्ट हो गये। साधनों के अभाव में मुझे अनंग नाम से अभिहित किया जाने लगा। अब मेरे अन्दर केवल चेतना शेष रह गयी है। मैं इधर-उधर भटक रहा हूँ। इसीलिए मैं अपना अस्तित्व लिए हुए अपना सौभाग्य समझता हूँ कि अब फिर से एकत्रित होने का सरल अवसर प्राप्त हुआ है।

विशेष—(१) शिव की तपस्या मे बाधक स्वरूप बनकर 'काम' उनके तृतीय नेत्र की कोप-ज्वाला में भस्म हो गया। रति द्वारा प्रार्थना किए जाने पर उसे 'अनंग' रूप में रहने तथा पुन: चेतना प्रदान करने का वरदान दिया था।

(२) अलङ्कार—श्लेष—'अनंग' में।

यह नीड़ मनोहर ··· ··· ··· जितना तल है।

शब्दार्थ—नीड़=घोंसला; कुलाय (निवास का स्थान)। कृति=रचना; कार्य। रंगमंच=कार्य करने का स्थल।

भावार्थ—काम मनु को प्रवृत्ति मार्ग पर उन्मुख करते हुए मनु से कहता है कि यह संसार एक घोंसले के समान समस्त प्राणियों के लिए आश्रय-स्थल है, जिसमें रहते हुए सभी लोग अच्छे-अच्छे कार्यों को सम्पादित करने में जुड़े रहने है। अभिनय करने के लिए रंगमंच का जो स्थान है, वही स्थान यह विश्व समस्त प्राणियों के लिए रंगमंच के समान है। इस रंगमंच पर जिस प्रकार

पात्र वर्ग आता है और अनुरूप कार्यों को करके दिखलाता है, ठीक उसी प्रकार से समस्त प्राणी यहाँ पर आकर अपना-अपना कार्य करते हुए आते-जाते रहते हैं। जिस प्रकार प्रत्येक पात्र अपनी शक्ति के अनुसार रंगमंच पर निश्चित क्षणों के लिये आता है, उसी प्रकार इस विश्व में प्रत्येक प्राणी एक निश्चित समय के लिए रहता है और अपना कार्य करता है—वास्तव में रंगमंच अपनी भूमिका निभाने का एक सुन्दर स्थल है।

विशेष--(१) कवि परम्परा के अनुसार यह संसार एक रंगमंच है—प्रसादजी ने इसी ओर यहाँ निर्दिष्ट किया है।

(२) अलंकार—रूपक।

वे कितने ऐसे ... ... बुनते हैं।

शब्दार्थ—साधन=माध्यम; सहायक। सूत्र=धागा।

भावार्थ—काम कहता है कि इस विश्व में ऐसे प्राणियों की संख्या बहुत कम है जो दूसरों की सहायता करते हैं और उनके कार्यों में हाथ बंटाते हैं। उनके द्वारा किये गये कार्यों की परिणति तक उनके उसी प्रकार के मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं, जिस प्रकार कपड़े और धागे का सम्बन्ध होता है, वैसा ही सम्बन्ध उन प्राणियों का सहायता दिए जाने वाले प्राणियों के साथ होता है।

विशेष—अलङ्कार रूपक।

उषा की सजल ... ... मेघाडम्बर में।

शब्दार्थ—सजल=आभामयी। गुलाबी=लालिमा; रक्तिमा। अम्बर=आकाश। मेघाडम्बर=बादलों का समूह।

भावार्थ—सहायक का महत्त्व स्थापन करते हुए काम मनु से कहता है कि प्रातःकाल होने के पूर्व उषा एक अरुणिमा के रूप में आकाश मे फैलती-सी दिखाई देती है। फिर नीले आकाश के फैले हुए विस्तृत क्षेत्र में विलय हो जाती है। नीले आकाश में फैले हुए विभिन्न रंगों के मेघों के समूह में उषा का विकास क्या है? उषा का यह मनोहर विकास अपने में एक महान् है जो वास्तव में अनुभूति करने योग्य है।

विशेष—अलंकार—दृष्टान्त।

अन्तर है दिन ... ... झरता है।

शब्दार्थ—साधक कर्म=सहायता करने वाले कार्य। माया का नीला

अचल=जादू शक्ति से भरा हुआ नीला आकाश। आलोक=प्रकाश। झरता है=टपकता है।

भावार्थ—दिन के होने में उषा कहाँ तक सहायता करती है—इस संबंध मे बतलाते हुए काम कहता है कि उषा दिन और रात का अन्तर है अर्थात् रात्रि के समाप्त होने और दिन के निकलने के बीच के समय की पूर्ति करने वाली उषा है। दिन के होने में उषा कितनी सहायता करती है और दिन के निकलने पर ही उसकी सत्ता समाप्त हो जाती है। जब जादू से भरे हुए नीले आकाश में अंधकार छा जाता है, तभी उषा जाने कहाँ से अवतरित होती है और अपने प्रकाश की एक-एक बूद टपकाती रहती है—अपने अस्तित्व को मिटाती हुई उषा दिन के होने में सहायता करती है।

विशेष—अलंकार—उपमा।

आरम्भिक वात्या ... ... कृति का।

शब्दार्थ—आरम्भिक=प्रारम्भिक सृष्टि। वात्या=आंधी। उद्गम=उत्पत्ति; मूल स्रोत; उत्पन्न करने वाला। प्रगति=उन्नति। संसृति=सृष्टि। ऋणशोध=उऋण होना; कार्य पूर्ण करना। कृति=कार्य।

भावार्थ - काम कहता है कि प्रारम्भिक देव-सृष्टि में वासना रूपी आंधी मैंने उठाई थी अर्थात् मैंने देव-जाति के हृदय में वासना की आंधी उत्पन्न की थी। इस प्रकार मैं ही देव-सृष्टि के विनाश का कारण रूप था। अब मैं मानव-सृष्टि की उन्नति रूप में कार्य करना चाहता हूँ। मानव की सुखद एवं शीतल छाया मे मैं अपने दायित्व को पूर्ण करना चाहता हूँ। इस प्रकार मैं अपने दायित्व के ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ।

विशेष – (१) 'आरम्भिक वात्या उद्गम' से प्रसादजी ने वासनाओं की ओर संकेत किया है।

(२) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति—'वात्या उद्गम' में।

दोनों का ... ... ह्रास हुआ।

शब्दार्थ—दोनों=काम तथा रति। समुचित=उचित। प्रत्यावर्तन=लौट आना; वापिस होना।

भावार्थ काम कहता है कि मैं और रति दोनों ने देव-सृष्टि में अनुचित रूप ग्रहण किया था, इसी कारण देव-जाति के नष्ट होने के साथ-साथ हम दोनों

भी नष्ट हो गए। वास्तव में अब हम उचित रूप में वापिस आ गए हैं। हमारे रूप का शुद्ध रूप से विकास हो गया है। हम अपने द्वारा किए गए कार्य पर पश्चात्ताप का अनुभव कर रहे है। अब हमें अपने द्वारा की गई भूलों पर परम खेद है। प्रलय मे हमारा विनाश हो गया। अब हमारे हृदय में शुद्ध प्रेरणा का आविर्भाव हुआ है।

विशेष—यहाँ काम द्वारा प्रायश्चित व्यक्त किया गया है।

यह लीला जिसकी ... ... वह अमला।

शब्दार्थ—विकस चली=विकसित हो रही है। मूल शक्ति=आदि शक्ति। प्रेम कला=चेतन शक्ति। अमला=पवित्र। (श्रद्धा)।

भावार्थ—काम मनु को सम्बोधित कर कहता है—सृष्टि का जो विकास हो रहा है—यह सब उसी आदि शक्ति की लीला का ही परिणाम है, जिसे चेतन शक्ति कहा जाता है। मानव-सृष्टि के प्रेम-सन्देश को सुनाने के लिए तुम्हारे सम्मुख निर्मल हृदया श्रद्धा आई थी—यह सब इस मूल शक्ति का ही संदेश है। मानव-सृष्टि मे यह संदेश अब मुखर हो उठा है।

विशेष—प्रेम के सर्वत्र व्याप्त होने की ओर कवि ने सकेत किया है।

हम दोनों की ... ... वह डाली।

शब्दार्थ—हम दोनों की सन्तान वही=काम और रति की पुत्री श्रद्धा। रंगों ने=रंग-बिरगे फूलों ने।

भावार्थ—काम मनु को समझाते हुए कहता है—अभी जिस तरुणी ने तुम्हारे सम्मुख आत्म-समर्पण किया है, वह श्रद्धा हम दोनों (काम एवं रति) की भोली-भाली सहज प्रकृति वाली पुत्री है। वह तो रंग-बिरगे फूलो की एक डाली के सदृश है, जिस पर अनेक प्रकार के फूल क्रीड़ाएँ करते हैं। तात्पर्य यह है कि वह सुकोमल है तथा पूर्ण आभामयी है।

विशेष—(१) श्रद्धा को सहज, पवित्र एवं सुकुमार रूप में व्यक्त किया गया है।
(२) अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

जड़ चेतनता ... ... उष्ण विचारों की।

शब्दार्थ—गाँठ=सम्बन्ध स्थापना। भूल सुधारो=भूलें सुधारने वाले
 ।। सुलझन=सुलझाने वाली। उष्ण विचार=दुःख देने वाले विचार।

भावार्थ— काम मनु को श्रद्धा के सम्बन्ध में बतलाता हुआ कहता है-- हम दोनों की पुत्री श्रद्धा जड़ तथा चेतन के समस्त रहस्यों को जोड़ने वाली एक कड़ी के रूप मे है। श्रद्धा तुम्हारी समस्त उलझनों को सुलझाने वाली है। तुम्हारे द्वारा हुई भूलों को वह सुलझा सकने में सक्षम है। तुम्हारे हृदय में वह अवश्य ही शीतलता एवं शान्ति प्रदान करेगी। दुःखोत्पादक सभी विचारों एवं शंकाओ की समाप्ति हो जावेगी। तुम्हारे जीवन में एक नवीन आनन्द की अनुभूति होगी।

विशेष—अलंकार—विरोधाभास।

उसके पाने ... ... चुप हो रहती।

शब्दार्थ—वह ध्वनि=काम की ध्वनि।

भावार्थ—काम मनु से कहता है कि यदि तुम हृदय से श्रद्धा को प्राप्त करना चाहते हो तो तुम्हें अपने-आपको उसके प्राप्त करने योग्य बनाना होगा—इतना कहकर काम की ध्वनि बंद हो गई, जिस प्रकार मुरली की मधुर ध्वनि अचानक शान्त हो जाती है।

विशेष - अलंकार—उपमा।

मनु आंख खोल ... ... नर पाता है।

शब्दार्थ—वहाँ=श्रद्धा के निकट। ज्योतिमयी=प्रकाशमयी श्रद्धा।

भावार्थ—काम का स्वर ज्यो-ही बंद हुआ, अचानक मनु उस मधुर स्वप्न से जाग उठे और पूछने लगे कि हे भगवान् ! मुझे श्रद्धा के निकट पहुँचने का मार्ग तो दिखलाइए। ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा मैं श्रद्धा के पास तक पहुँच सकूँ। वे कौन-सी योग्यताएँ हैं, जो मेरे लिए वांछनीय हैं। इतनी तो कृपा मेरे ऊपर कर दीजिए।

विशेष—संकेतित यह है कि मनु के हृदय में श्रद्धा को पुनः प्राप्त करने के लिए लालसा जाग्रत हो उठी है। काम की स्वर-लहरी से मनु श्रद्धा के सामीप्य के लिए उत्कंठित हो उठे है।

पर कौन वही ... ... रंग हुआ।

शब्दार्थ—भंग होना=टूट जाना। प्राची=पूर्व दिशा। अरुणोदय=सूर्योदय। रस रंग=सुन्दर शोभा।

भावार्थ—मनु ने प्रश्न किया—मनु के हृदय में विचारों का तांता लग गया, किंतु उनके प्रश्न का उत्तर देने वाला वहाँ पर कोई न था। शुभ प्रेरणा

का स्रोत वह सपना टूट-टूटकर बिखर गया। उन्होंने आँखें उठाकर देखा तो पूर्व की दिशा में सूर्योदय हो चुका था और उसकी दिव्य किरणों की आभा सर्वत्र बिखर रही थी।

विशेष—सूर्य की फैली हुई लालिमा की ओर संकेत किया गया है।

उस लता कुंज ··· ··· ·· ··· वेल रही।

शब्दार्थ—झिलमिल=झलकना। हेमाभरश्मि=सूर्य की किरणें। सोम सुधा-रस=अमृत के समान मधुर और शक्तिदायक रस।

भावार्थ—मनु अपनी गुहा से बाहर निकले और उन्होने देखा कि सूर्य की स्वर्णिम किरणें सोम लताओं की कुंजों से छन-छन कर प्रकाश विखेर रही थीं। मन अपने हाथो से सोम लताओ को पकड़े हुए खड़े थे। देव-जाति इन्ही सोम-लताओं का मधुर एवं शीतल रस-सेवन (सोम रस पान) किया करती थी।

विशेष—(१) वैदिककाल मे यज्ञों के अवसर पर देवताओं द्वारा सोम-रस के पान करने की प्रथा प्रचलित थी। सोमरस की प्रशंसा करते हुए ऋग्वेद में लिखा है—

इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्राद् उत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः॥

अर्थात् हे सोमरस, तुम्हारी यश देने वाली तथा स्वतन्त्रता प्रदान करने वाली बूँदों ने मेरे समस्त अंगों के जोड़ो को इस तरह कस दिया है, जिस तरह रथ मे घोड़े जोत कर कस दिए जाते है। तुम्हारी ये बूँदें हमारे पैरों के टूटने से रक्षा करे और हमे सभी प्रकार के रोगों से वचाएँ।

(२) प्रस्तुत अवतरण मे सोम भोग के प्रतीकार्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

(२) पारसी धर्म में भी 'सोम' की महत्ता वर्णित है।

६. लज्जा सर्ग

कथानक - माधवी रात्रि के शुभ्र-ज्योत्स्नामय मधुर वातावरण मे मनु को यह विदित हो गया कि श्रद्धा उनके बाल्यकाल की सहेली है। मनु उसके रूप-लावण्य के प्रति आकृष्ट होते है, प्रशंसा करते है तथा अपनी ओर से प्रणय-निवेदन करते है। मनु द्वारा प्रणय-निवेदन पर श्रद्धा लजा जाती है। दृष्टि एवं शारीरिक अवयवों में उसे कुछ परिवर्तन-सा मालूम होने लगा। इस प्रकार के परिवर्तन पर श्रद्धा को भी कम आश्चर्य नही था। उसका अंग-अंग रोमांचित हो गया और गला रुंध-सा गया। अपनी स्थिति पर वह विचार कर रही थी कि उसकी दृष्टि आकाश में छाई हुई संध्याकालीन रक्तिम आभा की ओर जा पहुँची। श्रद्धा को ऐसा आभास हुआ कि उस लालिमा में कोई रूपमयी छाया हँस रही है। वास्तव मे यह रूप श्रद्धा के अन्तस् में व्याप्त लज्जा ही थी। श्रद्धा के अन्तस् की शंकाओ का समाधान करते हुए लज्जा ने कहा कि तुम्हें मेरे विषय मे इतना आश्चर्य क्यो है ? तुम्हारे शरीर तथा मन में परिवर्तन करने वाली मै ही हूँ। नारी के मन में लज्जा उत्पन्न करने वाली मैं ही हूँ। प्रेम-मार्ग पर अग्रसर होने से पूर्व मैं ही उसे उसके कर्त्तव्य का बोध कराती हूं। मैं ही सौंदर्य का पालन करती हूँ। किसी को हृदय समर्पण करने से पहले सोच-विचार कर लेना परमावश्यक है। प्रेम के मार्ग मे आने वाली ठोकरो के प्रति पहले ही मै उसे सचेत कर देती हूँ। देव-सृष्टि मे मुझे काम की पत्नी रति के रूप में जाना जाता था। देव-सृष्टि के विनाश होने के बाद अब मैं भावना के रूप में अवस्थित हूँ। मै सद्-व्यवहार का पाठ पढाती हूँ। सुन्दरियो के कपोलो की लालिमा, उनके नेत्रो के अंजन आदि अनेक रूपो में मै प्रकट होती हूँ। मै युवतियों की सुन्दरता की रक्षा करती हूँ। श्रद्धा लज्जा की ये बातें सुनकर उससे अपने जीवन-यापन के विषय में पूछती है। श्रद्धा अपने को दुर्बल एवं असहाय बतलाती है। उसका कहना है कि उसे आत्म-समर्पण में बलिदान की बलवती भावना दिखलाई देती है। श्रद्धा ने पूछा कि क्या उसके लिए यही उचित है कि वह पुरुष पर सर्वस्व अर्पित कर दे और इसके बदले में पुरुष से कुछ भी ग्रहण करने की आशा न रखे। श्रद्धा की शंकाओं का समाधान

करते हुए एवं उसके औचित्य का निर्देश करते हुए लज्जा कहती है कि हे श्रद्धे! तुम अपना सर्वस्व एवं समूचा जीवन पुरुष के लिए पहले ही अर्पित कर चुकी हो, फिर तुम्हें इस विषय में तनिक भी शंका नहीं होनी चाहिए। तुम तो श्रद्धा एवं विश्वास की प्रतीक हो। तुम्हें अपनी सद्-भावनाओं एवं शालीनता के बल पर पुरुष के जीवन में अमृत का संचार करना चाहिए। तुम्हारे जीवन का यही ध्येय परमोपयुक्त है। तुम्हें शरीर तथा मन से पुरुष के साथ लीन हो जाना है और इस प्रकार सुखद एवं उल्लासपूर्ण वातावरण का तुम्हें सृजन करना है।

श्रद्धा और लज्जा के संवाद द्वारा नारी विषयक मनोभावों का औचित्यपूर्ण विवेचन किया गया है। नारी मनोविज्ञान के महत्त्वपूर्ण पहलू पर पर्याप्त रूप में प्रसादजी ने प्रकाश डाला है। लज्जा से उत्पन्न विशेष प्रकार के परिवर्तनों के चित्रण में कवि 'प्रसाद' सफल हुए हैं।

कोमल किसलय ... ... छिपती-सी।

शब्दार्थ किसलय = पत्ते। धूमिल पट = अंधकार रूपी वस्त्र। दिपती-सी = चमकती हुई-सी। दीपक का स्वर = दीपक की ज्योति।

भावार्थ—आकाश में छाई हुई संध्याकालीन लालिमा में से मुस्कराती हुई सुन्दर छवि को देखकर श्रद्धा बतलाती है कि जिस प्रकार एक छोटी-सी कली अपने आपको कोमल पत्तों के भीतर छुपा लेती है, उसी प्रकार तुम भी अपने रूप को छिपाती हुई-सी प्रतीत हो रही हो तथा गो-धूलि-वेला में गायों के खुरों से ऊपर की ओर उठी हुई धूल तथा अंधकार के आवरण में से दीपक की मंद-लौ के समान चमकती हुई-सी दिखलाई दे रही हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में लज्जा के भव्य रूप को कली तथा दीपक के स्वर उपमानों द्वारा समधिक प्रकाशित किया है।

(२) अलंकार—उपमा तथा उत्प्रेक्षा।

मंजुल स्वप्नों ... ... ज्यों।

शब्दार्थ—मंजुल = कोमल; सुन्दर। सुरभित = सुगंधित। बुल्ले = बुलबुले। विभव = वैभव; ऐश्वर्य।

भावार्थ—श्रद्धा कहती है कि हे अनुपम छवि! जिस प्रकार चेतन मन के शान्त हो जाने पर अचेतन मन द्वारा स्वप्न-लोक में विचरण करने से मन में जब एक प्रकार की मस्ती छा जाती है और समस्त क्रियाएँ अपने मन के

अनुकूल ही होती-सी दिखाई देती है और जिस प्रकार सुगंधित लहरों से उत्पन्न बुलबुले उत्पन्न होते रहते हैं और क्षण-क्षण बाद मिटते रहते हैं उसी प्रकार तुम मेरे हृदय पर अपना अमिट प्रभाव डाल रही हो।

वैसी ही . ... भरे हुए।

शब्दार्थ—अधरो=होठों। माया=जादू। माधव=वसन्त। सरस=रसीला; मीठा। कुतूहल=आश्चर्य। आँखों में पानी भरे हुए=आनन्दजन्य आँसुओ से भरे हुए।

भावार्थ—श्रद्धा कह रही है कि हे अलौकिक छवि! तुम्हारे अन्दर एक ऐसा मोहक जादू है, जिससे तुम एक नायिका के समान मेरे हृदय पर अतिशय रूप से प्रभाव डाल रही हो और ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम होठों पर अंगुली रखकर मुझे शान्त रहने का संदेश दे रही हो। तुम एक ऐसी नायिका के समान हो, जिसकी आँखों मे वसन्त की मनोहरता छाई हुई है। इसे देखकर मेरे हृदय में अपार आनंद की अनुभूति हो रही है और तुम्हारी आँखों में आँसू छलकते हुए-से दिखाई देते है।

विशेष—(१) लज्जा नामक मनोभाव का मानवीकरण किया गया है। उसमे सम्मोहन-शक्ति है, शान्त रहने का संकेत कर रही है और जिसकी आँखों में प्रेमाश्रु छलक रहे हैं।

(२) अलकार—उपमा।

नीरव निशीथ ... ... जादू पढ़ती।

शब्दार्थ—नीरव=शान्त। निशीथ=अर्द्ध रात्रि। लतिका=लता। आलिगन का जादू=आलिगन के लिए उत्सुकता उत्पन्न करती हुई।

भावार्थ—श्रद्धा लज्जा रूपी छाया से पूछ रही है कि यह तो बतलाओ कि सुनसान आधी रात में आखिर तुम कौन हो, जो मेरी ओर आगे बढ़ती चली आ रही हो। तुम इस प्रकार मेरे सम्मुख बढ़ती हुई आ रही हो, जिस प्रकार लता। तुम मेरा आलिगन करने के लिए परमोत्सुक होकर अपनी कोमल भुजाएँ फैलाए हुए मेरी ओर बढ़ती आ रही हो और इस प्रकार मेरे हृदय में भी तुम आलिगन करने की प्रेरणा जगा रही हो।

विशेष—(१) यहाँ लज्जा का मानवीकरण किया गया है।

(२) अलंकार—उल्लेख एवं उपमा।

किन इन्द्र जाल ... ... धार ढरे।

शब्दार्थ—इन्द्रजाल=जादू। सुहाग-कण=सिंदूर के समान पराग के कण। मधु-धार=(१) पराग की धारा, (२) आनंद की धारा। राग=(१) अनुराग; (२) लाल रंग।

भावार्थ—श्रद्धा लज्जा रूपी छाया से पूछती है—तुमने अपने जादू के फूलों से सिन्दूर की तरह मकरन्द के रक्त वर्ण वाले कण सञ्चित किए हैं और इन फूलों की माला तुम सिर झुकाए गूंथ रही हो। उन फूलों से मकरन्द की मधुर धारा बह रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम मेरे केश-कलाप को सजाने के लिए माला को गूंथ रही हो और मेरी मांग भरने के लिए सिंदूर के स्थान पर पराग के कण एकत्रित कर रही हो।

विशेष—(१) केश-कलाप को सजाने के लिए माला एवं मांग भरने के लिए सिंदूर का प्रयोग भारतीय नारियों के सौभाग्य का सूचक होता है।

अलंकार—श्लेष—'राग' में।

रूपकातिशयोक्ति—'सुहाग-कण' में।

पुलकित कदम्ब ... ... के उर में।

शब्दार्थ—पुलकित=रोमांचित; विकसित। अन्तर=हृदय। मन की डाली=मन रूपी डाली। फल भरता=(१) फलों का भार; (२) सन्तति का भार।

भावार्थ—श्रद्धा लज्जा को सम्बोधित कर कहती है—हे लज्जा रूपी छाया! तुमने अपनी सौंदर्यमयी एवं आकर्षणमयी छवि से मेरे शरीर में रोमांच उत्पन्न कर दिया है। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है जैसे तुमने कदम्ब के पुष्पों की माला गूंथकर मेरे मन में पहिना दी हो। जिस प्रकार फलों के भार से शाखाएँ स्वतः नीचे की ओर झुक जाती हैं, उसी प्रकार तुमने मेरे मन को सन्तति रूपी फल के भार से डराकर नीचे की ओर झुका दिया है। तात्पर्य यह है कि मेरा मन भावी सन्तान के भार से झुका जा रहा है।

विशेष—(१) शरीर में रोमांच की दशा में रोंगटे उसी प्रकार खड़े होते हैं, जिस प्रकार कदम्ब के पुष्पों में—यह आकृति-साम्य है।

(२) अलंकार—उपमा—'पुलकित कदम्ब की माला-सी' में।
रूपक—'झुक जाती है मन की डाली' में।
श्लेष –'फल भरता' में।

वरदान सदृश ... ... सना हुआ।

शब्दार्थ—सदृश=समान। वरदान=किसी देवता अथवा गुरुजन के द्वारा किसी को भी अभीष्ठ वस्तु की प्राप्ति। नीली किरन=(१) नीले रंग की किरणे; (२) नीले रंग के धागे (डोरे)। अंचल=परदा; वस्त्र। सौरभ= सुगंध।

भावार्थ—श्रद्धा लज्जा को सम्बोधित कर कहती है—हे लज्जा! तुमने अपनी अपार एवं आकर्षणपूर्ण छवि से मेरे मन को परम मोहित कर लिया है। तुमने वरदान के रूप मे मेरे चारो ओर वासना का एक आवरण-सा डाल दिया है। यह नीले धागो से वना हुआ एक वस्त्र है, जो वारीक और महीन है और सुगंधि मे आपूरित है—इस वस्त्र को उतारने के लिए मेरा मन नही चाहता।

विशेष—(१) नारी के अनुरागमय हृदय की सुंदर झाँकी प्रस्तुत की गई है। वासना की उद्बुद्धि एवं उससे पृथक् होने की इच्छा उसका स्वभाव है।

(२) 'नीली किरणों के अंचल' से श्रृंगार की ओर सकेत किया गया है। श्रृंगार रस का वर्ण नीला माना गया है।

(३) अलकार—उपमा।

सब अंग ... ... सुन पाती हूँ।

शब्दार्थ -मोम से=मोम के सदृश कोमल। बल खाना=लचकना। सिमिटना=संकुचित होना। परिहास-गीत=उपहास, हास-परिहासपूर्ण वातें।

भावार्थ—श्रद्धा लज्जा को सम्बोधित कर कहती है—तुम्हारे दर्शन से ही मेरे अंगो मे सुकोमलता आ गई है। यहाँ तक कि मेरे अंगों मे लचक उत्पन्न हो गई है। तुमने ही मेरे हृदय मे संकोच उत्पन्न कर दिया है - मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मुझसे सभी हास-परिहास करते है, जिसके फलस्वरूप मैं अपने में संकोच की सदा अनुभूति करती हूँ।

विशेष –(१) नारी के अंगो मे लचक, सकोच और सुकोमलता आदि का कारण एकमात्र लज्जा ही है।

(२) अलंकार—उपमा।

स्मित वन ··· ··· ··· ··· सपना ।

शब्दार्थ—स्मित=मंद-मंद मुसकान । तरल हंसी=जोर की हंसी; खिलखिलाहट । वांकपना=टेढ़ापन; तिरछापन । सपना बन जाना=कल्पना-मात्र की वस्तु; अवास्तविक; आँखो से ओझल हो जाना ।

भावार्थ—श्रद्धा अपने मे हुए परिवर्तन की ओर निर्दिष्ट करते हुए कहती है कि पहले मुझे तनिक भी संकोच का अनुभव नही होता था—मैं खूब हँसा करती थी, किंतु अब संकोच इतना बढ गया है कि मैं मंद मुस्कराती भर हूँ । मेरे इन नेत्रो मे पहली जैसी सरलता न रहकर भंगिमा समाविष्ट हो गयी है । इन नेत्रों द्वारा अब कटाक्ष करने का स्वभाव-सा बन गया है । मैं प्रतिक्षण मधुर एवं रंगीन कल्पनाओं के स्वप्न-लोक में विचरण करती रहती हूँ, जिसके कारण यह प्रत्यक्ष जगत् मुझे अवास्तविक प्रतीत होने लगा है ।

विशेष—बाल्यकाल के सभी भावो मे अनायास परिवर्तन हो गया है । तरुणी होने के साथ अवस्थानुकूल गाम्भीर्य का समावेश हो गया है । अब उसका मन कल्पनाओं के रंगीन वातावरण को ही अधिक सुन्दर मानने लग गया है ।

मेरे सपनों में ··· ··· ··· ··· डोल रहा ।

शब्दार्थ—सपनो मे=मधुर एवं मस्त कर देने वाले स्वप्नों में । कलरव का संसार=मीठे स्वर में बोलने वाले पक्षियों का संसार; इच्छाओं का संसार । अनुराग समीर=प्रेम रूपी वायु । तिरता=तैरता हुआ । इतराता-सा=इठलाता हुआ-सा ।

भावार्थ—अपने हृदय मे हुए परिवर्तन के विषय में श्रद्धा कहती है कि जिस प्रकार प्रातः होने पर पक्षी मधुर स्वर से गायन करते हैं और उनके मीठे-मीठे गीत वायु की हिलोरों पर तैरते तथा इठलाते हुए-से प्रतीत होते है, उसी प्रकार मेरी कल्पनाओ मे अनन्त इच्छाएँ अपनी मधुर एवं प्रेमपूर्ण ध्वनि के रूप में इठलाती हुई तथा तैरती हुई घूम रही है ।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण मे प्रात.कालीन पक्षियों के कलरव-स्वर के माध्यम से नारी के हृदय मे उठने वाली आशा-आकांक्षाओं का सशक्त वर्णन किया गया है ।

अलङ्कार—रूपक—'अनुराग-समीर' में ।
रूपकातिशयोक्ति—'सपनों मे कलरव का संसार' में ।
विशेषण विपर्यय—'कलरव···खोल रहा' में ।

अभिलाषा ... ... वढ़ती ।

शब्दार्थ—अभिलाषा अपने यौवन में=इच्छा की तीव्रता में। सत्कृत करती=सत्कार करती। दूरागत=दूर से आए हुए मेहमान (मनु)। बल-वैभव=समूची शक्ति। रज्जु=रस्सी। अवलम्बन=आश्रय; सहारा।

भावार्थ—छाया को सम्बोधित करती हुई श्रद्धा कह रही है कि दूर से आए हुए अतिथि मनु को देखकर मेरे हृदय में उससे मिलने के लिए अनेक अभिलाषाएँ त्पन्न हुई थीं। उसका सत्कार करने हेतु मैंने अपनी संपूर्ण शक्ति को अर्पित कर दिया था, किंतु मैं ज्यों-ही उद्यत हुई, त्यों-ही मेरे हृदय में तुमने लज्जा पैदा कर दी, जिसके परिणामस्वरूप मेरी इच्छाओं रूपी रस्सी को खीच लिया। मैं उसी रस्सी के सहारे से प्रेम-रस रूपी झरने के अन्दर से आनंद के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ हो जाती।

विशेष—(१) विम्व-योजना सुन्दर वन पड़ी है। एक स्थान पर प्रेमिका खडी है। प्रिय से मिलने के लिए विशेष आतुर है किंतु वीच में पर्वत है और झरना वह रहा है—इस प्रकार मिलन का मार्ग परम कठिन है। पर्वत से लटकी हुई एक रस्सी ही सहारा है किंतु ज्यों-ही वह रस्सी के सहारे वढने के लिए प्रस्तुत होती है—तभी कोई रस्सी को खीच लेता है। उस समय प्रेमिका की विवशमयी दशा हो जाती है। इस विम्व में पर्वत आनन्द का शिखर है, प्रेमी मनु है, उसके मिलन में आतुर प्रेयसी श्रद्धा है, प्रेम रूपी झरना वह रहा है अभिलाषा की रस्सी है और उस रस्सी को खीचने वाली लज्जा है।

(२) अलंकार—सांगरूपक।

छूने में हिचक ... ... सहसा रुकती है।

शब्दार्थ—हिचक=हिचकिचाहट; संकोच। कलरवहास-परिहास भरी गूँजें=हास-उपहास से पूर्ण मधुर वातें।

भावार्थ – पहले तथा अव के परिवर्तित रूप को स्पष्ट करते हुए श्रद्धा कहती है कि पहिले मनु को स्पर्श करने मे किसी प्रकार की हिचकिचाहट की अनुभूति नहीं होती थी किंतु अव उन्हें स्पर्श करने की कल्पना-मात्र से ही सिहरन हो उठती है। पहिले मनु को नेत्रों द्वारा देखने में किसी प्रकार की कोई झिझक नही होती थी किंतु अव उनकी ओर आँखे उठती ही नही वरन् पलकें झुक जाती है और आँखें निमीलित हो जाती हैं। पहले मनु से हास-परिहास से युक्त मधुर वातें करने में मुझे आनंदानुभूति होती थी—किसी प्रकार का कोई

संकोच नही था किंतु अब मन मे भीतर मे मीठी-मीठी बातें करने की लालसा तो है किन्तु अब वे बातें होठों तक आकर ठिटक जाती हैं अर्थात् मुझे सब प्रकार से संकोच ने चारो ओर से घेर लिया है - मैं शब्दो मे कुछ प्रकट नही कर पाती ।

विशेष—(१) यहाँ एक लज्जावती नारी का चित्रण किया गया है। लज्जा ही एकमात्र कारण है, जिससे नारी प्रेमी को छूने, देखने एवं मधुरालाप करने मे संकोच करती है। यहाँ नारी-सुलभ मर्यादा का चित्रण हुआ है।

(२) लज्जा का मानवीरण किया गया है।

संकेत कर रही · ... ... पड़ी रही ।

शब्दार्थ—रोमाली=रोमो की पंक्ति । वरजती=वर्जना करती; मना करती । भ्रम मे पड़ी रही=स्पष्ट रूप से प्रकट न हो सकी ।

भावार्थ—श्रद्धा लज्जा को सम्बोधित करती हुई कहती है—तुम्हारे अंदर कोई ऐसी सम्मोहन शक्ति है, जिससे मेरा शरीर रोमाचित हो गया है और ये समस्त रोम मुझे मधुर आलाप करने का संकेत द्वारा निषेध कर रहे हैं। मैं अपने प्रेम को अपनी काली-काली भौहो द्वारा भी प्रकट नही कर पा रही हूँ, क्योकि मुझे सकोच ने घेर लिया है। तात्पर्य यह है कि मेरी काली भौहें प्रेम को प्रकट करना चाहते हुए भी संकोचवश प्रेम प्रकट नहीं कर पा रही है। इसीलिए भौहो की काली रेखाओ के समान मेरे प्रेम की वाणी भी शब्दों के अभाव मे काली रेखाएँ बनकर रह गयी है । मैं अपने मनोभावों को मनु के सम्मुख स्पष्ट रूप मे प्रस्तुत करने में असमर्थता का अनुभव कर रही हूँ।

विशेष—(१) लज्जाशील युवती अपने प्रणय-भावों को शब्दों मे व्यक्त नही कर पाती और न भ्रू-भंगिमाओं द्वारा - इसका कारण एकमात्र लज्जा ही हैं, अतएव भौहे केवल काली रेखाओं के समान ही है—भ्रू-विक्षेप द्वारा भी संकोचवश वह अपने मनोभाव को अभिव्यक्त नही कर पाती ।

(२) अलंकार—उपमा ।

तुम कौन ··· ·· ... ... बीन रही ।

शब्दार्थ—परवशता=पराधीनता; विवशता । स्वच्छन्द सुमन=स्वच्छन्द वातावरण में सुविकसित होने वाले पुष्प; स्वतंत्र भाव । जीवन वन=जीवन रूपी वन ।

भावार्थ—श्रद्धा पूछती है कि आखिर तुम कौन हो ? क्या तुम हृदय को पराधीन करने वाली विवशता तो नहीं हो जो तुम मेरी स्वतंत्रता छीनने पर उतारू हो गयी हो। तुम मेरे जीवन मे व्याप्त अनेक इच्छाओ को वीन-वीनकर नष्ट करती जा रही हो जिस प्रकार माली वन में स्वच्छन्दता-पूर्वक खिलने वाले पुष्पो को तोड-मरोड़ कर वीन लेता है।

विशेष— अलङ्कार—रूपक—'जीवन वन' मे।

रूपकातिशयोक्ति— स्वच्छन्द सुमन' मे।

परम्परित रूपक—'स्वच्छन्द वीन रही' मे।

संध्या की लाली ··· ·· ··· उत्तर देती-सी।

शब्दार्थ—आश्रय=अवलम्बन; सहारा। छाया प्रतिमा=भावो की प्रति-मूर्ति। गुनगुना उठी=वोलने लगी।

भावार्थ—आकाश मे छाई हुई सध्याकालीन लालिमा मे एक छाया को देख कर श्रद्धा संकोच, परवशता आदि के विषय मे अपने विचारो मे खोई हुई थी कि सहसा उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह छाया (उसके हृदय के भावों की प्रति-मूर्ति) हँस रही हो। उसकी हसी सध्या-काल की लालिमा के आश्रय से ही स्पष्टतः प्रकट हो रही थी और वह कुछ वोलने के लिए उद्यत-सी होकर श्रद्धा के प्रश्नों का उत्तर देने लगी।

विशेष—(१) मन मे तैरते हुए मनोभावो के अनुरूप जिस मूर्ति की कल्पना की जाती है, तद्नुकूल वही छाया (मूर्ति) प्रत्यक्ष रूप मे दिखाई देने लगती है। यहाँ लज्जा को मूर्त्तरूप प्रदान किया गया है।

(२) अलङ्कार मानवीकरण।

इतना न चमत्कृत ··· ··· ··· सोच विचार करो।

शब्दार्थ—चमत्कृत=स्तब्ध; आश्चर्ययुक्त। उपकार=हित।

भावार्थ—लज्जा ने श्रद्धा से कहा कि हे भोली युवती ! तुम मुझे देखकर इतनी आश्चर्यान्वित किस प्रकार हो ? इसमे कोई घबराने की बात नहीं है। तुम्हे तो अपने हित का चिन्तन करने की आवश्यकता है और अपने हित के प्रति प्रयत्नशील रहना ही तुम्हारा धर्म है। मेरा परिचय तो केवल इतना ही है कि मैं एक ऐसी पकड के रूप मे हूँ जो युवतियों को प्रेम के मार्ग में आगे वढने से पहिले समझाती है, सोचने-समझने की प्रेरणा देती है तथा कदम आगे वढ़ाने से पहिले सजग करती है ताकि वाद में पछताना न पडे।

घाटी। रस घन=शृंगार रस रूपी जल से भरे हुए मेघ। कौध=बिजली की चमक। अन्तर=मन। शीतलता ठंडक पाती=परम तृप्त हो जाती।

भावार्थ—लज्जा कहती है कि मै नारियो के उस सौंदर्य की देखभाल करती हूँ, जिनके नयनों मे शृंगार रस इस प्रकार से छाया रहता है, जैसे नीलमों मे खचित पर्वत घाटियों मे जल से भरे हुए बादल। उनके नेत्रो मे व्याप्त कटाक्ष दर्शकों के चित्त को आकृष्ट कर परम सतुष्टि प्रदान करते है, जिस प्रकार बिजली की चमक से भरे हुए बादल वर्षा करके धरती को परम सन्तुष्ट कर देते है (शीतल कर देते है)।

विशेष—(१) सादृश्य-योजना अति सुन्दर बन पड़ी है। नेत्रों के लिए 'नीलम की घाटी' तथा कटाक्षो के लिए कौध' उपमानो का प्रस्तुतीकरण सादृश्यमूलक है।

(२) **अलकार**—रूपक।

हिल्लोल भरा ··· · ·· ··· **निखरता हो।**

शब्दार्थ हिल्लोल=लहरें। ऋतुपति=वसन्त; ऋतुराज। गोधूलि=जंगल से चर कर गौओ के लौटने की वेला; सध्या-काल। ममता=प्रेम भरी लालसा। गोधूलि की ममता=वन मे चर कर गायो के हृदय मे अपने वत्सों तथा वत्साओ के प्रति प्रेम। जागरण=जागृति। मध्याह्न=दोपहर का समय।

भावार्थ लज्जा कहती है कि मै रमणियो के उस सौदर्य का पालन करने वाली हूँ, जिसमे वसन्त के समान मादकता भरी लहरे भरी होती है, जिसमें अपने प्रेमी के प्रति वैसी ही अनुराग की भावना होती है जिस प्रकार कि वात्सल्य भावना वन से चर कर वापस आती हुई गायो के मन मे अपने वत्स एवं वत्साओ के प्रति होती है, जिसमे जाग्रति प्रातःकालीन मुस्कान के समान दिखलाई देती है तथा जिसमे तीव्रता की भावना वैसी ही विद्यमान होती है, जैसी दोपहर के समय सूर्य के प्रकाश मे होती है।

विशेष - (१) नव-यौवना के सौदर्य को चार बिम्बों में प्रस्तुत किया है—वसन्त ऋतु की लहरों के समान उन्मादपूर्ण, गो-धूलि की ममता मे ओत-प्रोत, प्रातः जैसी जाग्रति के भावो मे परिपूर्ण एव मध्याह्न के सूर्य-प्रकाश जैसी तीव्रता।

(२) **अलंकार**—उपमा।

हो चकित ··· ··· ··· ··· लहरों पर से ।

शब्दार्थ—सहसा=अनायास । प्राची=पूर्व दिशा । नवल=नवीन । चन्द्रिका=चांदनी; ज्योत्स्ना । विछलना=फिसलना । मानस=(१) मान-सरोवर, (२) हृदय । लहरें=(१) तरंगे, (२) उमंगभरी भावनाएँ ।

भावार्थ—लज्जा कहती है कि मैं नव-ललनाओं के उस सौदर्य की देखभाल करती हूँ, जो चन्द्रमा के समान शीतल एवं सुन्दर होता है और मन की रंगीन एवं मीठी भावनाओं मे इस प्रकार फिसलता रहता है जैसे अचानक ही पूर्व दिशा से निकली हुई चन्द्रिका के फलस्वरूप मानसरोवर की लहरों पर चंद्रमा लता फिसहुआ-सा दिखलाई देता है।

विशेष—अलंकार—श्लेष—'मानस' मे ।

सांगरूपक - समस्त पद में ।

फूलों की कोमल ··· ··· ··· ··· कुंकुम चंदन में ।

शब्दार्थ - अभिनंदन=स्वागत; सत्कार । कुकुम चंदन=केशर मिश्रित सुगंधित द्रव्य । मकरन्द=पराग ।

भावार्थ—लज्जा कहती है कि मैं नव-रमणियो के उस सौदर्य की संरक्षिका हूँ, जिसका स्वागत-सत्कार करने के लिए पुष्पों की कोमल-कोमल पंखुडियाँ उसके चरणो पर आकर फैल जाती है और चंदन-केशर मिश्रित सुरभित द्रव्य के रूप मे वे पराग को मिला देते है।

विशेष—नव-रमणियो के स्वागत-सत्कार करने के लिए प्रकृति के द्वारा योगदान भी पर्याप्त रूप में किया जाता है—यह संकेतित है । प्रकृति के उपादान भी उनके सौदर्य पर विमुग्ध हो उठते है।

कोमल किसलय ··· ··· ·· ··· आनन्द मनाते हों ।

शब्दार्थ—किसलय=पत्ते । मर्मर रव=पत्तों की ध्वनि । जयघोष=जय-जयकार की ध्वनि; विजय की ध्वनि ।

भावार्थ - लज्जा कहती है कि मैं नव-युवतियों के उस सौदर्य की रक्षा करती हूँ, जिसकी जय-जयकार की ध्वनि कोमल पत्ते अपनी ध्वनि के रूप में करते है, जिसमे सुख और दुःख दोनों ही मिलकर समरसता को प्राप्त हो जाते है तथा वे ऐसे दिखलाई देते है जैसे महान् आनंद की अनुभूति प्रदान करने वाला महोत्सव मना रहे हों।

विशेष—नारी-सौदर्य के व्यापक प्रस्तर को निरूपित किया गया है। सर्वत्र सभी पदार्थ उस सौदर्य की विजयश्री मे योगदान कर रहे है, क्योकि वे पूर्णतः प्रभावित है।

उज्ज्वल वरदान ... ... जगते रहते हैं।

शब्दार्थ—उज्ज्वल=स्वच्छ; पवित्र। चेतना=चेतन शक्ति; चिति।

भावार्थ—लज्जा कहती है कि नारी-सौदर्य के विषय में सभी लोगों का यह मत है कि यह चेतना-शक्ति का वरदान है अर्थात् यह शुभ कर्मो का ही सुपरिणाम है—यह प्रत्येक प्राणी को सहजतापूर्वक प्राप्त नही हो पाता। देखने मे भी यही आता है कि सौदर्य प्रत्येक प्राणी मे नही पाया जाता। सौदर्य तो एक प्रकार का सात्विक गुणों का सुफल हैं। जिस प्रकार हम नाना प्रकार की रंगीन कल्पनाओ, आकॉक्षाओ तथा अभिलाषाओ को नित्य नूतन रूप में जाग्रत होते देखते है, उसी प्रकार नव-यौवनाओ के अन्तस् में समुज्ज्वल एवं मधुर-सुखद भविष्य के प्रति अनेक नवीन आकांक्षाएँ तथा अभिलाषाएँ तरंगो के रूप मे जाग्रत होती रहती है।

विशेष—(१) सौदर्य चेतना शक्ति का सात्विक वरदान है। यह सौदर्य किसी-किसी को ही मिल पाता है—यह शुभ कर्मो, त्याग, जप, तप आदि का सुफल होता है जो प्रत्येक के लिए प्राप्य नहीं है। सौदर्य का सम्बन्ध चेतन शक्ति से स्थापित करके उन्होने आध्यात्मिक भावना का स्थापन कर दिया है।

मै उसी चपल ... ... समझाती।

शब्दार्थ· उसी=सौदर्य विषयक गतिशीलता। धात्री=धाय; पालन-पोषण करने वाली। महिमा=महत्त्व। ठोकर लगना=गिरना; पतन होना।

भावार्थ—लज्जा कहती है कि मैंने अब तक नारियो के जिस सौदर्य के विषय मे बतलाया है—मै उसका सरक्षण करने वाली धाय के रूप मे हूँ। मैं नव-युवतियों के अन्तस् में जाग्रति प्रदान कर उन्हे उनके महत्त्व की शिक्षा दिया करती हूँ। मै ऐसी ही एक धात्री के रूप में हूँ जो बच्चे को सदैव महान् बनाने के सपने संजोया करती है और गौरव का पाठ पढ़ाया करती है—अच्छी-अच्छी बातें सिखलाया करती है। बच्चे को ठोकर न लगे – वह कहीं गिर न पड़े — इसी आशंका से वह धात्री बड़े प्यार एवं दुलार से उसे समझाती-बुझाती है तथा हर सम्भव प्रयत्न करके सही मार्ग दिखलाती है, उसी प्रकार मैं भी उसी

धात्री के सदृश नवयौवनाओं को प्रणय-मार्ग पर अग्रसर होने से पूर्व शान्तिपूर्वक सावधान कर देती हूं, ताकि उन्हें बाद में पछताना न पड़े।

विशेष—(१) लज्जा ही एक ऐसी भावना है जो तरुणियों को प्रेमपथ पर कदम बढाने से पूर्व सावधान कर देती है—भावी आशंकाओं के प्रति पहिले ही सजग कर देना ही उसका महत्त्वपूर्ण कार्य है।

(२) लज्जा का मानवीकरण किया गया है।

(३) 'ठोकर लगना' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

मैं देव सृष्टि ... ... संचित हो।

शब्दार्थ—पंचबाण = कामदेव। रतिरानी = काम की पत्नी। वंचित = रहित। आवर्जना = हीनता। दीना = दीनता से भरी। अतृप्ति = असन्तोष।

भावार्थ—लज्जा श्रद्धा को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे बाले! मैं देवों की सृष्टि में काम की पत्नी रति के रूप मे थी। प्रलय होने के कारण देव-सृष्टि का नाश हो गया और मेरे पति काम अनंग हो गए और मेरा उनसे विछोह हो गया। मैं अपने पति काम से वियुक्त होकर दीन-हीन की मूर्ति के रूप मे इतस्ततः भटक रही हूँ। इसका कारण यह है कि अब वे देव ही अवशेष न रहे, जिनके अन्तस् मे काम भोग-विलास की भावना को प्रेरित किया करता था और न देवांगनाएँ ही रही, जिनके मन मे मैं सदा वास करती थी। उस समय हम दोनों –काम तथा रति आकांक्षा और तृप्ति के रूप में सयुक्त रूप मे रहते थे किन्तु अब हम एक-दूसरे से पृथक होकर बिखर गए है। इस प्रकार अब मैं असन्तुष्टि की एक मूर्ति के सिवा और कुछ भी नही हूँ।

विशेष—(१) कवि ने लज्जा को ही कामदेव की पत्नी रति के रूप में बतलाया है। वास्तविकता यह है कि रति भावना की अभिव्यक्ति लज्जा के रूप में ही होती है।

(२) काम को पंचबाण के नाम से यहाँ अभिहित किया गया है। काम के पांच बाण इस प्रकार हैं—(१) सम्मोहन, (२) उन्मादन, (३) स्तम्भन, (४) शोषण, और (५) तापन। अन्य सुधीजनों के मतानुसार पांच प्रकार के फूलों के बाणों के नाम इस प्रकार है—(१) कमल, (२) अशोक, (३) आम्र-मंजरी, (४) नवमल्लिका और (५) नील कमल।

(३) **अलंकार**—मानवीकरण तथा उपमा।

अवशिष्ट रह गई ... ... दलिता-सी।

शब्दार्थ—अवशिष्ट रह गई=बच गयी। अतीत=भूतकाल। लीला विलास=आनन्द से भरी हुई लीलाएँ; केलि-विलास। अवसादमयी=दुःखो से भरी हुई। श्रम दलिता=कठोर परिश्रम करने के फलस्वरूप थकी हुई।

भावार्थ लज्जा कहती है कि प्रलय होने के उपरान्त मेरा पार्थिव रूप तो पूर्ण रूप से नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है। अब तो केवल भावना के रूप मे ही अवशिष्ट रह गई हूँ, जिसके विषय में अनुभूति केवल हृदय से ही हो सकती है। मेरा सुखद भूतकाल केवल स्मृति के रूप मे ही अवशेष रह गया है। अब तो मैं बीते हुए समय की असफलता के रूप मे ही शेष रह गई हूँ। आज तो मै एक ऐसी नायिका के रूप मे हूँ जो अनेक प्रकार की काम केलियो के करने के पश्चात् तज्जन्य परिश्रम मे खिन्नता से परिपूर्ण मूर्ति के रूप मे दृष्टिगोचर होती है।

विशेष—(१) 'अतीत की असफलता-सी' से संकेतित भाव इस प्रकार है—देव सृष्टि मे देव-ललनाओं के अन्तस्तल पर रति का अधिकारपूर्वक निवास होता था। उन्हे काम वासनाओ के प्रति प्रेरित वही तो करती थी। फल यह हुआ कि देव-सृष्टि के विनाश के साथ-साथ मैं भी नष्ट हो गयी। मात्र भावना के रूप मे ही अवशिष्ट रह गयी हूँ। यह एक बडी असफलता है। रति को काम-क्रीडाओं से खिन्न एवं थकी हुई नायिका के रूप मे इसलिए चित्रित किया गया है कि अब तो यह यत्र-तत्र भटकने वाली भावना रूप मे ही अवशिष्ट रह गई है।

(२) **अलंकार**—उपमा।

मै रति की प्रतिकृति ... ...लिपट मनाती हूँ।

शब्दार्थ प्रतिकृति=प्रतिमूर्ति; छाया। शालीनता=सद्व्यवहार; शिष्टता; विनम्र स्वभाव। मतवाली सुन्दरता=नव-यौवना। पग=चरण। नूपुर=घुघरू।

भावार्थ—लज्जा कहती है कि देवजाति की सृष्टि मे काम की स्त्री रति की प्रतिमूर्ति के रूप मे मैं हूँ। नाम से मै लज्जा हूँ और मैं नव-युवतियों के मन की भावनाओ को परिष्कृति का रूप देते हुए तथा विकारमयी भावनाओ के प्रति सजग करते हुए उन्हे नम्रता का महत्त्व सिखलाती हूँ। जिस प्रकार पैरो मे बाँधे हुए घुँघरू किसी नर्तन करने वाली नारी को मानो बार-बार ध्वनि उत्पन्न करके नृत्य की अधिकता से रोकना चाहते हो उसी प्रकार मै मदभरी एवं रमणीय

नारियों के लिए नम्रतापूर्वक यह सिखलाती हूँ कि वे प्रेममार्ग में बिना सोचे-समझे अपने कदम न बढायें।

विशेष—(१) नारी-जीवन मे लज्जा के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। यहाँ लज्जा के दो कार्यों की ओर संकेत किया गया है— १. नम्रता का पाठ पढ़ाना, २. स्वच्छन्दता की दिशा से हटाकर सोचने-समझने के लिए प्रार्थना करना। वास्तव में लज्जाशील नारी ही समाज में सम्मान की पात्रा होती है। चरणों में बँधे घुघरू ही नारी की स्वच्छन्द गति मे अवरोध उत्पन्न करते है। इसके साथ ही अनुनय-विनयपूर्वक सोचने-समझने के लिए प्रेरणा देते है।

(२) **अलंकार**—विशेषण विपर्यय—'मतवाली सुन्दरता' में।

उपमा—छन्द के अंतिम चरण मे।

लाली वन ··· ··· ··· ··· बनकर जगती।

शब्दार्थ—कुंचित अलकों-सी=उलझे हुए बालों की तरह। घुंघराली=लच्छेनुमा बाल। मन की मरोर=मन की मरोड़ अर्थात् उलझन।

भावार्थ—लज्जा कहती है कि युवतियों के कोमल कपोलों पर प्रकट होने वाली लालिमा के रूप मे मैं ही हूँ क्योकि लज्जा के आने पर ही उनके कपोल रक्तिम आभा ग्रहण कर लेते हैं। उनके नेत्रों में काजल के समान मैं ही शोभित होकर प्रकट होती हूँ। मैं ही उनके घुंघराले बालों के लच्छे के रूप मे प्रकट होती हूँ जिससे उनके केशों की रमणीयता और भी अधिक बढ़ जाती है। मैं ही नव-युवतियों के हृदय में उत्पन्न हुई ऐंठन के रूप में प्रकट होती हूँ जिससे उनका मन प्रेम-कार्य में उलझ जाता है।

विशेष—(१) लज्जा का समावेश होने से नारी के रूप में कितना महान् परिवर्तन आ जाता है—इसका सूक्ष्म निरूपण किया गया है। कपोलों पर लालिमा, नेत्रों का अंजन तथा घुघराली लटें—ये सब विशेष रूप से सम्मोहक बन जाते हैं।

(२) **अलंकार**—मालोपमा।

चंचल किशोर ··· ··· ··· ··· कानों की लाली।

शब्दार्थ—मसलन=रगड़ा।

भावार्थ—श्रद्धा को सम्बोधित करते हुए लज्जा कह रही है कि मैं चपल किशोरियों की सुन्दरता की संरक्षिका हूँ। उन रमणियों के कानों पर जो

लालिमा दिखलाई देती है वह मैं ही हलकी-सी मसलन हूँ। कहने का तात्पर्य यह है कि लज्जा के समाविष्ट होने से किशोरियों के कान रक्तिम आभा से परिपूर्ण दिखलाई देने लगते हैं।

विशेष - (१) लज्जावश किशोरियाँ कोई भी अशोभनीय कार्य करने के लिए कदम नहीं बढा पाती; क्योंकि बिना सोचे-समझे किए जाने वाले कार्यो के लिए बाद में पछताना पड़ता है। अतएव लज्जा ही उन्हे अप्रिय व्यापार में आगे बढने पर संयम बरतने के लिए प्रेरित करती है। इसी से उनके कान लाल हो उठते है। वैसे स्वाभाविक लज्जावश उन नव ललनाओं के कान रक्तिम आभा धारण कर लेते है।

(२) अलंकार—मानवीकरण।

हाँ, ठीक ... ... रेखा क्या है।

शब्दार्थ—निविड निशा=अंधकार से पूर्ण रात्रि; अज्ञान की स्थिति। संसृति=सृष्टि; जीवन। आलोकमयी रेखा=प्रकाश की किरण; ज्ञान।

भावार्थ—लज्जा द्वारा दिए उपदेश को श्रद्धा ने सुना और कहा कि तुम्हारा कहना उचित है और मैं तुम्हारे द्वारा कही गयी बातों को भली-भाँति समझ चुकी हूँ। अब मुझे तुम क्या यह भी बतलाओगी कि मुझे अपने जीवन में किस निश्चित मार्ग को अपनाना चाहिए और किस प्रकार से मुझे जीवन-यापन करना चाहिए। मैं तो इस समय अज्ञानवश इस संसार में इधर-उधर भटक रही हूँ। मुझे कोई भी समुचित उपाय नही सूझ रहा है। मुझे इस गहन अंधकार (अज्ञानमयी स्थिति) मे प्रकाश की किरण (जीवन निर्वाह करने का समुचित ज्ञान) किस प्रकार एवं कहाँ से प्राप्त होगी—यह तो मुझे बतलाओ।

विशेष- (१) प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया है।

(२) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

यह आज ... ... हारी हूँ।

शब्दार्थ—दुर्बलताओ=कमजोरियो। अवयव=शरीर के अंग-प्रत्यंग। सबसे हारी हूँ=सभी पुरुषों से हार माननी पडी है।

भावार्थ—श्रद्धा लज्जा से कह रही है कि मैं तो अब तक इतना ही जान पाई हूँ कि मैं एक दुर्बलता की मूर्ति हूँ। मुझमे पुरुष के समान बल एवं शक्ति नही है। मेरे शरीर के समस्त अंग-प्रत्यंग सुकोमल तथा रमणीय है तथा

दुर्बलता के कारण मुझ पुरुष जाति से सर्वथा पराजय स्वीकार करनी पडती है। मेरा हृदय पुरुष के हृदय के समान कठोर भी तो नही है अपितु इसमें दया, ममता एवं अगाध माधुर्य ओत-प्रोत है। मुझे पुरुष के सामने नमन करना पड़ता है।

विशेष—प्रसादजी ने यहाँ नारी की स्वाभाविक दुर्बलता की ओर इंगित किया है। नारी करुणा की साक्षात् प्रतिमूर्ति है।

पर मन भी ··· ··· ··· ·· ··· आता है।

शब्दार्थ – घनश्याम खंड=कजरारे बादल का टुकड़ा। जल=आँसू; पानी।

भावार्थ श्रद्धा अपने विचारों की शृंखला मे कहती है कि मेरे अंग-प्रत्यंगों में सुन्दरता एवं सुकुमारता है—यह तो मैं मानती हूँ कि मुझमें पुरुष की अपेक्षा बल कम है किंतु मेरा हृदय तो दृढता और शक्ति से भरपूर था। इतना होने पर भी मेरा मन मनु के प्रति आकृष्ट होने लगा है और काले बादल के खण्डों के सदृश मेरे इन नेत्रों मे प्रेम रूपी आँसू किस प्रकार छलछला आते हैं—यह मैं अब तक नहीं समझ सकी हूँ।

विशेष (१) श्रद्धा की प्रेमजन्य स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है। प्रेम-व्यापार की स्थिति में नारी के अंगों में शैथिल्य की अनुभूति हो उठती है। उसका मन स्वनियंत्रित नहीं रहता और नेत्रों में प्रेमाश्रु भरे रहते हैं।

(२) अलङ्कार—उपमा।

सर्वस्व समर्पण ··· ··· ··· ··· माया में।

शब्दार्थ—सर्वस्व समर्पण=सब कुछ न्यौछावर कर देना। विश्वास महा तरु छाया=पुरुष के विश्वास रूपी विशाल वृक्ष की छाया। माया=सम्मोहित करने वाला जादू।

भावार्थ श्रद्धा कहती है कि जिस प्रकार कोई संतप्त व्यक्ति किसी घने एवं विशाल वट वृक्ष की छाया में विश्राम करता है और वह अपना सर्वस्व समर्पित करके शीतल छाया में ही विश्राम करना चाहता है, उसी प्रकार मेरा हृदय भी अब मनु के आश्रय में मनु के प्रति विश्वास धारण करके शांति एवं शीतलता प्राप्त करना चाहता है। मेरे अन्तस् मे ऐसी जादुई शक्ति का प्रभाव उत्पन्न हो गया है कि मैं मनु को विश्वास करके उनके लिए अपना

सर्वस्व समर्पित कर दूं। न जाने क्यों मेरे में ऐसी कामना का अभ्युदय हो रहा है ?

विशेष —(१) अनुरागमयी नारी का सुंदर ढंग से निरूपण किया गया है। प्रेमी से विश्वास प्राप्त करके नारी सर्वस्व समर्पित करते हुए अपने जीवन को कृतार्थ समझती है और सब प्रकार से अपने प्रेमी के मंगल की कामना करती है।

(२) अलंकार—रूपक।

छाया पथ में ... ... श्रमशीला।

शब्दार्थ—छायापथ = आकाश गंगा। तारक द्युति = तारों की ज्योति। मधुलीला = आनंदमयी क्रीडा; काम-केलि। निरीहता = भोलापन।

भावार्थ—श्रद्धा कहती है कि जिस प्रकार अगणित तारों की दीप्ति आकाश गंगा में दीपित होती हुई अनेक प्रकार की आनंदमयी क्रीडाएँ करती हुई दिखलाई देती है, उसी प्रकार मेरे मन मे भी तीव्र इच्छा चित्रित होती है कि मैं भी इसी प्रकार से मनु के साथ कोमलता, भोलापन एवं श्रम से परिपूर्ण काम-केलियाँ करूँ और इस प्रकार से प्रणय निवेदन को स्वीकार करके यथोचित आनंद की अनुभूति करूँ—तात्पर्य यह है कि वह भी यौवन का यथेच्छ उपभोग करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती है।

विशेष—(१) 'तारक द्युति' पद से वासना-विलास की ओर इंगित किया गया है। मिलन से पूर्व नारी के मन में अनेक प्रकार की ऐसी इच्छाओं का स्वभावतः जन्म होता है, यद्यपि उनमे वैसी स्पष्टता नही दिखलाई देती।

(२) अलंकार—उपमा।

निस्संबल होकर ... ... सुघराई में।

शब्दार्थ—निस्संबल = वेसहारा; आश्रय विहीन। तिरती = तैरती। मानस = मन; मानसरोवर। जागरण = जाग्रति; विरक्ति। सपने = स्वप्न में आई हुई मस्त करने वाली विचार-शृंखला। सुघराई = सुन्दरता।

भावार्थ—श्रद्धा कहती है कि जैसे कोई सरोवर में गिरने पर सहारा न पाकर तैरता रहता है, ऐसी ही स्थिति इस समय मेरी भी हो रही है। मैं भी मधुर भावनाओ से ओत-प्रोत मन की गहराइयों में तैरा करती हूँ मेरे लिए कोई भी अवलम्बन नही है। अवलम्बन के अभाव में वह व्यक्ति जिस प्रकार किनारा पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है, उसी प्रकार मैं भी किनारे पर

लगना चाहती हूँ तथा किसी एक सुनिश्चित लक्ष्य पर पहुँच जाना चाहती हूँ। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार कोई प्राणी स्वप्न मे मीठी एवं रंगीन कल्पनाओं से युक्त मदमाते विचारों में अपने को खो देता है और उसी में आनंद की सच्ची अनुभूति करने लगता है, वैसे ही मैं भी उन मधुर स्वप्नों मे खो जाती हूँ और मुझे उन भावों में लीन होने में ही अधिक आनंद प्राप्त होता है। मैं भी यही चाहती हूँ कि ऐसे मीठे स्वप्न ही मुझे दिखाई देते रहें और ऐसी ही मेरी तन्मयता की स्थिति बनी रहे।

विशेष – अलंकार—दृष्टान्त – समस्त पद में।

रूपकातिशयोक्ति—'जागरण, 'सपने' में।

श्लेष –'मानस' में।

नारी जीवन ··· ··· ··· ··· देती हो।

शब्दार्थ चित्र=स्वरूप; छाया। विकल रंग=अनेक प्रकार के रंगों अर्थात् व्याकुलता उत्पन्न करने वाले भाव।

भावार्थ - श्रद्धा लज्जा से पूछती है कि नारी का वास्तविक रूप क्या यही है ? एक कलाकार अनेक प्रकार की अस्पष्ट रेखाएँ खीचकर उनमे नाना प्रकार के रंगों को भर कर अपने विचारों की चित्रात्मक रूप मे रचना कर एक कलात्मक चित्र प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार तुम भी नारी के सामने अस्पष्ट रेखाएँ खींच देती हो जो उस नारी के भविष्य के जीवन स्वरूप का द्योतक होती हैं। उन रेखाओ मे रग भरने की भाँति व्याकुलता प्रदान करती हो। इसमें महान् आश्चर्य की वात तो यह है कि उस कलात्मक चित्र को देख कर दर्शक के मन में आनंद की अनुभूति होती है, जबकि अनुराग की भावनाओं से युक्त नारी के जीवन का चित्र दुःखद होता है।

विशेष—(१) नारी-जीवन भविष्य की अस्पष्टता लिए हुए होता है।

(२) **अलङ्कार**—श्लेष तथा रूपकातिशयोक्ति।

रुकती हूँ ··· ··· ··· ··· अनुदिन बकती।

शब्दार्थ - पगली=पागल नारी। अन्तर=मन। अनुदिन =प्रतिदिन। बकती=अनर्गल वातें करती।

भावार्थ—जब से मनु की प्रणय-प्रार्थना को मैंने स्वीकार किया है, तभी से मैं अपने सर्वस्व समर्पित कर देने के विषय में सुनिश्चित विचार करना चाहती हूँ किंतु मेरे हृदय में ऐसी उथल-पुथल मची है कि मुझे इस संबंध में विचार

करो। इस प्रकार तुम अपने जीवन को भी सुखद एवं मधुर भावनाओं से परिपूर्ण करोगी और साथ ही मनु को भी सुखद अनुभूति करा सकोगी।

अलङ्कार—पूर्णोपमा—'पीयूष स्रोत-सी' मे।

रूपक—'विश्वास रजत नग' मे।

देवों की विजय ... ... विरुद्ध रहा।

शब्दार्थ—विजय=जीत। देव=सद्भावनाओं से पूर्ण। दानवों=आसुरी (असद्) भाव वाले। युद्ध=संघर्ष। उर=हृदय। अन्तर=अन्दर (बीच मे)। नित्य=सदा। विरुद्ध=विपरीत।

भावार्थ—लज्जा कह रही है कि सद्भावनाओं (देवों) तथा असत्-आसुरी भावनाओं (दानवों) में नित्य ही संघर्ष होता रहा है, जिसमे दिव्य भावों (देवों) की ही विजय हुई है। तात्पर्य यह है कि सात्विकी प्रवृत्तियों ने तामसी प्रवृत्तियों पर सदा ही विजय प्राप्त की है। स्वभावतः दोनों प्रवृत्तियां एक-दूसरे की विरोधिनी रही है। यही कारण है कि तुम्हारे हृदय मे भी ऐसी उथल-पुथल मची हुई है। हे श्रद्धे! तुम्हें इस प्रकार के संघर्ष से बचना चाहिए। नारी का हृदय सुकोमल, सद्गुणों से सम्पन्न एवं नितान्त भावुक होता है। अतएव उसके अन्तस् में विश्वास की परिपुष्ट भावना का समावेश होना ही स्वाभाविक है। अपने हृदय को समधिक सुखी बनाने का यथासंभव प्रयत्न करना चाहिए।

विशेष—अलङ्कार—रूपकातिशयोक्ति।

आंसू से भीगे ... ... लिखना होगा।

शब्दार्थ—आँसू से भीगा अंचल=आँसुओं के जल से भीगे वस्त्र का छोर। मन का सब कुछ=मन की समूची भावनाएँ। स्मित रेखा=मुसकान।

भावार्थ—लज्जा अन्त में कहती है कि हे श्रद्धे! तुम्हें मनु के प्रति त्याग की भावना से दृढ निश्चय के साथ सर्वस्व अर्पित कर देना चाहिए। तुम्हें अब अपने मन से उथल-पुथल मचाने वाली भावनाओं का परित्याग कर देना चाहिए। इसके लिए चाहे तुम्हारे आंसुओं के जल से तुम्हारा वस्त्र भीग जाए, किंतु तुम्हें भीगे वस्त्र के छोर पर ही अपने अन्तस् की भावनाओं को मनु के प्रति सहर्ष समर्पित कर देना है और एक मधुर मुस्कराहट के साथ प्रेम-निर्वाह का दृढ संकल्प करना है। जिस प्रकार दो विरोधी देश पारस्परिक हित का ध्यान रखते हुए मित्र रूप से संधि-पत्र पर हस्ताक्षर कर प्रतिज्ञा करते हैं।

विशेष—(१) वैवाहिक जीवन मे सदा प्रसन्न रहना ही नारी का धर्म है।

(२) छायावादी शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है।

(३) लज्जा का मानवीकरण किया गया है।

● ● ●

५. इड़ा सर्ग

कथानक—श्रद्धा को त्यागकर मनु हिमालय पर्वत की गुहा से निकलकर वाहर चल दिए। वे अपने विचारों में तन्मय गुफा से नीचे की ओर बढ़ते जा रहे थे। मार्ग में नदियों एवं पर्वतों को लांघते हुए मनु के मस्तिष्क में अनेक भावों की उलझनें डूबती-उतराती रहीं। इस प्रकार वे मार्ग को तय करते-करते सारस्वत नगर में जा पहुँचे। सारस्वत नगर उस समय भौतिक संघर्ष के फल-स्वरूप अपनी अस्त-व्यस्त दशा में था। उसकी इस मनोदशा को देखकर मनु को अपने अतीत जीवन की यादें ताजा हो उठीं। मनु सोचने लगे कि देव जाति का वह वैभव जो उत्कृष्टता पर रहा था, आज केवल उनकी कथाएँ ही शेष रह गई हैं। सरस्वती अपगा के तट पर स्थित सारस्वत नगर परम रमणीक एवं देवजाति की संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा था। यहीं पर सुरेन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया था। यहीं पर देवराज इन्द्र ने देवों के आधिपत्य का विस्तार किया था। वे सोचने लगे कि देवों तथा असुरों का कितना भीषण संग्राम हुआ था। वे अहंकार से ग्रस्त होकर संघर्ष में जूझते रहे। उन्होंने इस प्रकार अपने जीवन को स्वयं ही विपाक्त कर लिया। देव जाति अपने को एक परम शक्ति मानती थी, वे अपने समक्ष किसी अन्य को कुछ नही समझती थी। दूसरी ओर असुर जाति अपने अहंकार में मस्त हो रही थी। वह प्राकृतिक शक्तियों की आराधना करती थी और देवों को अहंकारी समझती थी। इन दोनों जातियों में इसीलिए निरन्तर संघर्ष होता रहा। दोनों जातियों का यह संघर्ष कभी वाद-विवाद के रूप में और कभी शस्त्रों के रूप में होता रहा था। आज मनु के अन्तस् में भी श्रद्धा से रहित होने के कारण देव-असुर जैसा संघर्ष होता रहा था। श्रद्धा या विश्वास के अभाव में इसी ओर देव जाति तथा असुर जाति में भी संघर्ष होता रहा था। 'इस समय मनु को 'काम' की आकाशवाणी सुनाई दी—कि हे मनु, तुमने श्रद्धा को विस्मृत कर दिया। उसने तुम्हारे चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया, किंतु तुम्हारे हृदय में इतने पर भी अविश्वास रहा—तुम स्वार्थ-भावना से ग्रस्त रहे। तुम्हे उससे भला सुख कैसे मिल सकता है ? अर्थात् तुम्हे भी सुख नही मिल सकेगा। तुम्हारा यह जीवन संघर्षमय रहेगा, तुम्हारे

द्वारा स्थापित प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था भी शापयुक्त रहेगी अर्थात् सुखकर सिद्ध न हो सकेगी। जनता में भेद-भाव तथा वैपम्य-भावना की वृद्धि होगी। अनेक प्रकार की उलझनें पैदा हो जाएँगी। पारस्परिक विरोव के फलस्वरूप जनता अपने हाथों विनाश के लिए कृत-संकल्प हो उठेगी। दया, प्रेम, सद्भाव आदि मानवोचित गुणों का लोप हो जावेगा। श्रद्धा को अपनाने से ही सर्वत्र मंगल का प्रसार संभव है। इस आकाशवाणी के समाप्त होते ही मनु सोचने लगे कि अब जीवन मे अनेक प्रकार के अभावों को सहन करना पड़ेगा—दुःखों और कष्टों के निवारण का उपाय उन्हें कोई भी नही सूझ रहा था। उन्होंने देखा कि उस समय सरस्वती नदी सतत् प्रवाहित हो रही थी—उसकी तरंगें किनारे से टकराकर एक विशेप ध्वनि उत्पन्न कर रही थी।

प्रातःकालीन आभा विखरने लगी थी। मनु ने एक सुन्दरी के दर्शन किये। सुन्दरी परम शोभायमान थी। उसकी केशराशि बिखरी हुई थी, अनुराग और विराग से भरे उसके दोनों नेत्र थे, जीवन-तत्त्व से परिपूर्ण कर्म-कलश उसके हाथ में था। उसका दूसरा हाथ बुद्धि की गहनता के प्रतीक के रूप में था। उसका शरीर श्वेत वस्त्र से आच्छादित था, उसकी गति चपल थी। उसका परिचय प्राप्त करने के लिए कर मनु का हृदय उत्सुक हो उठा। वह परम सुन्दरी इड़ा थी। उसके द्वारा मनु से उनके इस भ्रमण का कारण पूछने पर मनु ने उत्तर दिया—मैं एक राहगीर हूँ! मैं अपने मार्ग पर अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा हूँ। इड़ा ने बतलाया कि यह उजड़ा हुआ सारस्वत नगर उसी का है। वह इसी आशा को अपने में संजोए हुए है कि इस सारस्वत नगर के दिन फिर से सुखद हो जावें—यह नगर पुनः समृद्ध हो जावे। मनु ने कहा कि मैं जीवन के महत्त्व की खोज मे घूम रहा हूँ, भय से मुक्त होने के लिए मै जीवन में कौन-सा उपाय करूँ—मुझे तुम ही बतलाओ। प्रत्येक प्राणी भयत्रस्त है। इस सृष्टि के रचयिता के विपय में मुझे कुछ भी ज्ञात नही हो सका है। ऐसा कौन है जो परावीनता और नाना प्रकार के दुःखों से मुक्ति प्रदान कर सके। इस पर इड़ा ने मनु से कहा कि मनुष्य बुद्धि-हीन है—वह परावलम्बी है। उसे अपने पर तनिक विश्वास नही है। वह अपने को सदा दुर्वल समझता है। मनुष्य को अपने पैरो पर खड़ा होना चाहिए, तभी वह उन्नति करने में सफल हो सकता है। प्रकृति के रहस्य को ज्ञात करने के लिए उसे बुद्धि तत्त्व का अवलम्बन करना चाहिए। इड़ा ने मनु से पुनः कहा

कि वह सारस्वत नगर की व्यवस्था का दायित्व ग्रहण करें तथा विज्ञान के सहारे तथा अनवरत् प्रयत्नो द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था करें, जिससे अहर्निश कीर्ति का विस्तार हो। इड़ा की वाणी से मनु के हृदय मे सुखद अनुभूति हुई और उन्होंने सारस्वत प्रदेश की शासन-व्यवस्था का दायित्व ग्रहण करना स्वीकार कर लिया। मनु ने इडा से कहा कि हे इड़े! तुम मेरे अंधकारपूर्ण जीवन में उपा के समान अवतरित हुई हो। जिस प्रकार उपा काल में पक्षी जाग उठते है, उसी प्रकार तुमने मेरे सुप्त भावों को जगा दिया है। आज मैं आत्मावलम्बी-सा अपने को अनुभव कर रहा हूँ। मैं बुद्धिवाद के अपनाने के पक्ष में हूँ। मुझे अब आशा की किरण प्राप्त हो गयी है। इस प्रकार मै सुख-प्राप्ति की दिशा मे अग्रसर होऊँगा।

इड़ा सर्ग में अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता है। श्रद्धा से रहित मानव इधर-उधर घूमता फिरता है और अन्त में बुद्धिवाद को अपनाता है। वह विज्ञान के बल पर भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहा है—सचेप्ट रहता है—यहाँ तक कि वह सृष्टि के नियमन करने वाली एक विशेप शक्ति को भी अपने सामने कुछ नही समझता। उसे किसी अन्य पर कभी विश्वास नहीं होता। इस सर्ग में काम की आकाशवाणी भी कम महत्त्व नही रखती—इसमें समरसता की भावना मुखर हो उठी है। स्पष्ट है कि मानव के लिए न तो मात्र भावक्षेत्र ही और न मात्र बुद्धिक्षेत्र ही सुखद सिद्ध हो सकता है। भाव-चित्रण की दृष्टि से इड़ा सर्ग बहुत सुन्दर है।

किस गहन गुहा··· ··· ··· ··· को शून्य चीर।

शब्दार्थ—गहन=अंधेरी, गहरी। गुहा=गुफा, कन्दरा। अति अधीर=परम व्यग्र, बेचैन। झंझा=आंधी, तूफान। प्रवाह=बहाव, गतिशीलता। विक्षुब्ध=कुपित। महासमीर=आंधी। परमाणु पुंज=अणुओं और परमाणुओं का समुदाय। नभ=गगन। अनिल=हवा। अनल=अग्नि। क्षिति=पृथ्वी। नीर=जल। कटुता को बाँटना=वैपम्य-वैमनस्य का बढ़ना। निर्माण=रचना। प्रतिपद=प्रत्येक स्थान पर। क्षमता=सामर्थ्य, शक्ति। संघर्ष=द्वन्द्व, युद्ध। विराग=उदासीनता। अस्तित्व=सत्ता। चिरन्तन=शाश्वत। विषम=भयंकर, तीव्र। लक्ष्य-भेद को=लक्ष्य-भेदन करने के लिए। शून्य=अन्तरिक्ष।

भावार्थ—हिमालय पर्वत की गहरी गुफा में श्रद्धा को त्यागकर मनु अज्ञात

दिशा की ओर वढ़ चले। मनु अपने जीवन की तुलना झंझा के प्रवाह से करते हुए कह रहे है कि मेरी व्यथा एवं वेदनाओ से परिपूर्ण यह जीवन एक प्रकार से झंझा के समान है। जिस प्रकार भयावनी आंधी का वहाव परम व्यग्र होकर पर्वत की किसी गहरी अंध गुफा से निकलकर तीव्र गति से न जाने किस ओर वढता चला जाता है, उसी प्रकार मेरा यह जीवन है जो हिमालय के उच्च-शिखर पर स्थित इस गुफा से अज्ञात दिशा की ओर वढ़ चला है। जिस प्रकार आंधी मे अणु-परमाणुओं का समूह व्याकुल अवस्था में भी शामिल होता है, उसी प्रकार मेरे जीवन में वायु, आकाश, जल तथा पृथ्वी का समुदाय आकुलित होकर सम्मिलित है। जिस प्रकार तीव्र आंधी सवको भयत्रस्त कर देती है और ऐसा ज्ञात होता है कि वह भीपणता की ही साक्षात् मूर्त्ति है, उसी प्रकार मेरा जीवन सभी को भयभीत करता हुआ जान पड़ता है। जिस प्रकार झंझा विशाल-लघु वृक्षों को तथा छप्परों को उखाड फेंकती है और समस्त प्राणियों मे वैपम्य और विवशता उत्पन्न कर देती है, उसी प्रकार मेरा जीवन आज विद्वेष, कलह को बाँटता हुआ-सा प्रतीत होता है तथा श्रद्धा का त्याग करने के कारण इस छोटे-से जीवन में विवशता भर गई है। झंझा जिस प्रकार विनाश-कार्य की ओर अग्रसर होता है, उसी प्रकार मैंने श्रद्धा को साथ लेकर छोटी-सी गृहस्थी की रचना कर अपने हाथों विनाश-कार्य किया है; झंझा को जिस प्रकार समस्त पदार्थों के प्रति प्रेम भी होता है और नही भी होता, वह संघर्प-रत रहता है, उसी प्रकार मेरा जीवन अव उदासीन हो चुका है, उसे सवसे प्रेम भी है और सबके प्रति उदासीनता भी। मेरे जीवन में न कोई विशिष्ट अभीष्ट है और न कोई किसी प्रकार की विद्वेष-भावना। जिस प्रकार लक्ष्य-भेदन के लिए तीर कमान से छूटकर अन्तरिक्ष को विदीर्ण करता हुआ आगे चला जाता है, उसी प्रकार मेरा यह चिरन्तन जीवन न जाने किस अज्ञात दिशा में और किस लक्ष्य की पूर्ति मे वाहर निकल पड़ा है, इस प्रकार जगत् की शून्यता को पारकर अग्रसर हो रहा है।

विशेष—(१) कवि प्रसाद ने जीवन का साम्य झंझावात के प्रवाह से किया है—इस प्रकार जीवन का एक चित्ताकर्षक चित्रांकन प्रस्तुत किया है। मानव-जीवन सुखों की प्राप्ति-विपयक दौड में व्यस्त है।

(२) धनुष और तीर की बिम्ब योजना सुन्दर है।

(३) जिस प्रकार सृष्टि में पदार्थों की रचना में पाँच तत्त्व हैं, उसी प्रकार

शरीर की रचना में भी पाँच तत्त्व है :

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच तत्त्व मिलि अधम सरीरा ॥

(४) इड़ा सर्ग में कवि ने स्व-निर्मित छंद का प्रयोग किया है।

(५) अलङ्कार—(i) उपमा—'झंझा प्रवाह-सा'।

(ii) सांगरूपक—समस्त पद में।

देखे मैंने वे ... ... गतिमय पतंग।

शब्दार्थ – शैल=पर्वत। शृंग=चोटियाँ। अचल=अडिग। हिमानी=वर्फ। रंजित=रंगी हुई, सुशोभित। उन्मुक्त=मुक्त। तुंग=उच्च, उन्नत। वसुधा=पृथ्वी, धरा। अवोध=वोधहीन। स्वेद-बिंदु=पसीने की बूँदें, वर्फ के जल-कण। स्तिमित नयन=निमिलित नयन। गत शोक-क्रोध=शोक तथा क्रोध से हीन। स्थिर मुक्ति=सांसारिक बंधनों से सदा के लिए मुक्ति। अवाध=वाधाहीन। मरुत सदृश=वायु के समान। अग जग=संसार। कम्पन की तरंग=स्पन्दन, गतिपूर्ण लहर। ज्वलनशील=सतत् जलते रहने वाला। गति-मय=गतिशील। पतंग=सूर्य।

भावार्थ—हिमालय के उच्च शिखर से मनु नीचे मैदान में आ चुके हैं। मनु हिमालय पर्वत की हिमाच्छादित शिखरों के विषय में कह रहे है कि मैंने हिमालय पर्वत की उन शिखरो को देखा है, जो सदा वर्फ से ढकी हुई शोभा-शालिनी दिखाई देती है। उन पर ढकी हुई वर्फ की जमी हुई परतें अचल रूप में सदा दिखलाई देती है। मनु की दृष्टि में उनका स्थिर और गतिहीन जीवन वांछनीय नही है। ऐसी चोटियाँ, जिनके जीवन में किसी प्रकार की गतिशीलता एवं परिवर्तनशीलता का अभाव है—ऐसा प्रतीत होता है कि वे जड़ हैं—मानों किसी समाधि में लीन होकर संसार के प्रति विराग-भावना को धारण किए हुई हैं। ऐसे जड़मय जीवन में पर्वत के शिखरो को आनन्दानुभूति होती है। सूर्य की किरणो की उष्मा से तप्त होकर पिघलाकर वर्फ जलकण के रूप में प्रवाहित होती हुई नदियों के रूप में प्रकट होती है - जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पर्वत की चोटियो, जो समाधि में निमग्न है, से निःसृत पसीने की बूँदें नदियों के रूप मे प्रकट होकर प्रवाहित हो रही हैं। वर्फ तो थोडी-बहुत ही पिघल पाती है, इससे पर्वत की उन चोटियों की जड़ता पर कोई प्रभाव नही पड़ता। तात्पर्य यह है कि उनका जड़मय जीवन ज्यों का त्यों बना रहता है। पर्वत की वे चोटियाँ ऐसी दिखाई दे रही है, जैसे वे राग-द्वेषादि समस्त विकारों

से शून्य हों एवं भव-बन्धनों से सर्वथा मुक्त होकर समाधि की अवस्था में निमग्न होकर विराजमान हों। मनु आगे कहते हैं कि मुझे हिमालय पर्वत की जड़ता तथा गतिहीनता युक्त हिमाच्छित शृंगों जैसी प्रतिष्ठा नही चाहिए। इस जीवन में मुझे तो गतिशीलता की आकांक्षा है। मैं तो यह चाहता हूँ कि मेरे मन की गति वायु के समान निर्बाध हो अर्थात् जिस प्रकार वायु का प्रवेश सर्वत्र हो सकता है तथा वह गतिशील होती है, उसी प्रकार मेरा मन गतिशील होकर सर्वथा उन्मुक्त होकर स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण कर सके—यही मेरी चाह है। मैं बर्फ जैसे जड़-जीवन का पक्षपाती नहीं हूँ। मेरा मन अनेक इच्छाओं-आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए इस संसार मे प्रयत्नशील होकर अग्रसर हो सके। जिस प्रकार सूर्य समूचे जगत् को भास्वरित करता हुआ प्रातः-काल उदित होता है और सन्ध्या को अस्त होना है और गतिशील जीवन व्यतीत करता है, उसी प्रकार मेरा मन भी गतिशील होकर निरन्तर इस चराचर संसार में आगे बढता रहे।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने गतिशील जीवन के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। जड-जीवन मे गतिशीलता का अभाव होता है, जिस प्रकार हिमाच्छादित चोटियाँ। हिमाच्छादित चोटियो को यहां जडता का प्रतीक कहा गया है।

(२) **अलङ्कार**—(i) **मानवीकरण**—'अपने जड‥ रहे सुखी'।

(ii) **पूर्णोपमा**—'मैं तो…मन की'।

अपनी ज्वाला से … … … … कुसुम हास।

शब्दार्थ—ज्वाला=हृदय की इच्छा (लाक्षणिक अर्थ)। प्रकाशकर=इच्छा-पूर्ति के लिए साधन एकत्रित करके (लाक्षणिक अर्थ)। प्रारम्भिक जीवन का निवास=श्रद्धा के साथ का गृहस्थ जीवन। सदय=दयापूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण। होड़=प्रतिस्पर्धा। कुसुमहास=फूलों का हास, इच्छाओं की पूर्ति।

भावार्थ— मनु के मन में श्रद्धा के साथ के प्रारम्भिक गार्हस्थ्य-जीवन की स्मृतियाँ सजग हो उठती है, उनसे व्यथित होकर अपने प्रतिस्पर्धामय जीवन को धिक्कारते हुए उद्गार व्यक्त करते हुए कहते है—मैंने सुन्दर एव सुयोग्य नारी श्रद्धा के साथ अपनी इच्छाओं तथा आकांक्षाओ की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के साधनों का एकत्रीकरण किया, और इस प्रकार से एक सुखद गृहस्थ-जीवन का निर्माण किया था, किन्तु आज मैं ऐसी सुखद गृहस्थी का परित्याग कर

बाहर चला आया हूँ। वहाँ के सुख को छोड़कर और अधिक सुख पाने की लालसा में मैं जंगल, पर्वत, कुंजों तथा मरुस्थलों आदि मे भटकता फिर रहा हूँ। मेरी दशा एक विक्षिप्त के सदृश हो गयी है। ऐसी सुखप्रद गृहस्थी से मैंने दया का नाता तोड़ दिया अर्थात् मैंने अपना स्वभाव कठोरतापूर्ण बना लिया। मैंने किसी के प्रति ममता और प्रेम प्रकट नहीं किया। मैं किसी पर उदारता से न रीझ सका। मैं तो प्रतिस्पर्धा की होड़ में ही लगा रहा। दूसरे शब्दों में, मैं किसी से प्रसन्न न हो सका—मैं ईर्ष्या की ज्वाला मे ही जलता रहा। मै आज इस निर्जन वन में पुकारता-भटकता फिर रहा हूँ, किन्तु आज मेरी इस व्यथा को कोई सुनने वाला यहाँ नहीं है। मैं आज तक अपने व्यवहार से किसी को प्रसन्न न कर सका, मैं अनवरत् अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति में निष्फल प्रयास करता रहा हूँ। जिस प्रकार गर्मी में चलने वाली लू से कोई फूल विकसित नहीं हो पाता—वह फूल झुलस जाता है, उसी प्रकार मैं भी किसी को अपने प्रम से सिक्त न कर सका। मैं अपनी कल्पनाओं में ही खोता रहा और मैं उजड़े हुए सपने आज तक देखता रहा हूँ। मैं आज तक वास्तविक जगत् के महत्त्व से अवगत न होकर सदैव वंचित रहा हूँ।

विशेष—(१) मनु के श्रद्धा-सान्निध्य सुख की ओर कवि प्रसाद ने यहाँ इंगित किया है। सुखद गृहस्थ-जीवन का भान मनु के लिए अब तक न हो सका था, अब यह ज्ञान उन्हे प्राप्त हुआ है। चित्रण में मनोवैज्ञानिकता का निर्वाह हुआ है।

(२) लाक्षणिकता का प्रयोग विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

(३) 'लगा दी होड़' मे मुहावरे का प्रयोग प्रेक्षणीय है।

(४) 'लू' के विम्ब के माध्यम से मनु के जीवन की यथार्थता का सुन्दर चित्राकन किया गया है। इसी प्रकार 'फूल' तथा 'कुसुम हास' भी सुन्दर बिम्बयोजना के उदाहरण है।

(५) अलङ्कार—(i) **रूपकातिशयोक्ति**—'फूल' तथा 'कुसुमहास' में।
(ii) **पूर्णोपमा**—'लू-सा झुलसाता दौड़ रहा।'

इस दुःखमय जीवन ... ... का कर विनाश।

शब्दार्थ—जीवन का प्रकाश=जीवन की आशाएँ-इच्छाएँ। नभ नील लता=नीला आकाश रूपी श्याम लता, निराशा। हताश=निराश। सुख से

हताश=सुख से वंचित। कलियाँ=सुखद वस्तुएँ; पदार्थ। काँटे=दुखद वस्तुएँ। बीहड़=सुनसान; निर्जन। पथ=मार्ग। उन्मुक्त शिखर=स्वतंत्र चोटियाँ। निर्वासित=घर से बाहर निकला हुआ। नियति-नटी=नियमन करने वाली नटी। भीषण अभिनय=भयंकर कार्य। खोखली शून्यता=सूना संसार। कुलांच=उछल-कूदकर। पावस रजनी=वर्षाकालीन रात्रि; बुरा दिन। जुगनू=खद्योत (पटबिजना), देखने में सुखद किन्तु वास्तव में वैसे न हों। ज्योतिकण=प्रकाश के कण; सुखद पदार्थ।

भावार्थ—असफलताओं और नैराश्य से घिरे हुए मनु कह रहे है कि सामने फैला हुआ नीलगगन एक श्यामवर्ण लता के सदृश दृष्टिगोचर हो रहा है और इस आकाश में छिटकते हुए तारे ऐसे प्रतीत हो रहे है, जैसे नीली बेल की शाखाओ में प्रकाश के कण उलझे हुए हों। यही दशा मेरे जीवन की हो रही है—जीवन में सुख की प्राप्ति न होने के फलस्वरूप मेरे इस दुःखपूर्ण जीवन की समस्त इच्छाएँ-अभिलाषाएँ निराशाओं में उलझी हुई दिखलाई दे रही हैं। मुझे जो पदार्थ देखने में कलियों के समान सुखद प्रतीत होते थे, वे मेरे लिए अब कांटों के सदृश दुःखद ही सिद्ध हुए है। दूसरे शब्दों में, मैं इस प्रकार की भ्रांति में ही पड़ा रहा और सम्यक् नही समझ पाया कि ये पदार्थ केवल बाहर से ही आकर्षक लगते है—अन्दर से सिवाय इनसे दुःख प्राप्त होने के और कुछ भी नही है। श्रद्धा से वियुक्त होकर मै जीवन के सुनसान मार्ग पर निरुद्देश्य आगे-ही-आगे बढता जा रहा हूँ। जब कहीं अधिक परिश्रान्त हो जाता हूँ तो कही भी थोड़ा-सा विश्राम कर लेता हूँ और फिर आगे बढ़ जाता हूँ। मैं अशांत मन से बिलखता हुआ, घर से निकला हुआ-सा इस निर्जन पथ पर अग्रसर हो रहा हूँ और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पर्वत की ये स्वतंत्र शृंग मेरी इस दशा को देखकर हँस रही है। आज वन की इस शून्यता तथा भयावनी दशा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि संसार की नियामिका शक्ति अपने द्वारा भयंकर कृत्यो का अभिनय कर रही है और उसी अभिनय की छाया चारो दिशाओ में बिखर गई है। इस सुनसान प्रान्त में कदम-कदम पर मेरी असफलताएँ तथा निराशाएँ ही उछल-कूद कर रही प्रतीत हो रही है। वर्षाकालीन अंधेरी रात्रि मे जिस प्रकार जुगनू कभी चमकते और बुझते दिखाई देते है, उनकी चमक से विशेषतः आकृष्ट होकर पकड़ने के लिए दौड़ना जैसे स्वाभाविक है, इसी प्रकार मेरे जीवन के ये बुरे क्षण है—दुःखद है क्योकि मैं जिस पदार्थ

को सुखद समझकर ग्रहण करने का जब-जब प्रयास करता हूँ, तब मुझे विफलता ही हाथ लगती है। इस समय मैं एक ऐसे व्यक्ति के समान हूँ, जिसने सूर्य के प्रकाश में प्रदीप्त समस्त पदार्थों को अपने हाथों स्वयं नष्ट करके पुनः प्रकाश की आशा में जुगनुओं को पकड़ने के लिए दौड़ लगा दी हो, किन्तु जुगनू के प्रकाश से कल्याण की आशा करना व्यर्थ ही है। इस प्रकार प्रकाश प्राप्त करने की आशा में सर्वत्र अन्धकार ही मुझे मिलता है।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने निराश एवं असफल व्यक्ति के जीवन की यथार्थता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। निराश व्यक्ति को सभी पदार्थ जड़-चेतन उसका उपहास करते हुए-से दिखलाई पडते है। मनोवैज्ञानिकता का सुंदर ढंग से यहाँ निर्वाह हुआ है।

(२) यहाँ बिम्ब-योजना विशेष रूप से अवलोकनीय है—'लता की डालों में उलझे पदार्थों' के विम्व के माध्यम से दुःखपूर्ण जीवन का, 'कलियों' के बिम्ब के माध्यम से सुखों का, 'काँटों' के बिम्ब के माध्यम से दुःखों का, 'जुगनुओं' के बिम्ब के माध्यम से क्षणभंगुर सुखों का तथा 'ज्योतिकणों' के बिम्ब के माध्यम से सुखदायिनी वस्तुओं का सुन्दर चित्रण किया है।

(३) लाक्षणिकता की छटा प्रकाश, कलियाँ, काँटे, पावस रजनी, ज्योतिकण आदि पदों से दृष्टव्य है।

(४) **अलङ्कार**—(i) **रूपक**—'नभ-नील लता की डाली' में।
(ii) **मानवीकरण**—'उन्मुक्त शिखर हँसते मुझ पर' तथा 'असफलता अधिक कुलांच रही' में।
(iii) **रूपकातिशयोक्ति**—'प्रकाश', 'कलियाँ', 'काँटे' में।

जीवन निशीथ के ... ... रानी के केश भार।

शब्दार्थ—निशीथ=अर्द्ध रात्रि। जीवन निशीथ के अन्धकार=जीवन की घोर निराशा। नील तुहिन जलनिधि=श्याम वर्ण के तुषार-कणों का सागर। आर-पार=सब तरफ। चेतना की किरणें है डूब रही=चेतना खो जाना। निर्विकार=विकारहीन; सात्विक। मादक तम=पागलपन, भ्रमोत्पादक अन्धकार। निखिल=समूचा। जगत्=संसार। भूमिका=पृष्ठभूमि। अभंग=सम्पूर्ण। अनंग=आकारहीन। ममता=मोह। अरुण रेखा=उषा की लालिमा। ज्योतिकला=आलोक की किरण। सुहागिनी=सौभाग्यवती। उर्मिल=लहरीले।

अलकों में=केशों में। कुंकुम=रोली, सिंदूर। चिर निवास=स्थायी निवास (आश्रय)। मोह जलद=मोह रूपी बादल। विस्तीर्ण=विस्तृत। केशभार=केशों का समूह।

भावार्थ—जीवन की घोर निराशा का साम्य अर्द्धरात्रि के सुविस्तृत अन्धकार के साथ प्रकट करते हुए मनु कह रहे हैं कि जिस प्रकार अर्द्धरात्रि (कृष्णपक्ष) के समय श्यामवर्ण के तुपारकणों के सागर के समान अन्धकार सर्वत्र प्रसृत हो जाता है, उसी प्रकार मेरे जीवन में सब ओर निराशा का ही फैलाव दृष्टिगोचर हो रहा है। जीवन के इस निराशाजन्य अन्धकार में मेरी बुद्धि-चेतना उसी प्रकार लुप्त हो गयी है, जिस प्रकार गहन अन्धकार में चमकते हुए तारो से निकली आलोक की किरणें आलोक को फैलाते हुए भी अंधकार को पूर्णतः दूर करने में समर्थ न होकर लीन होती-सी दिखाई देती है। सुध-बुध के गुम हो जाने के परिणामस्वरूप मैं किसी प्रकार का उचित निर्णय नहीं ले पाता और समुचित निर्णय के अभाव में मैं अपने जीवन के मार्ग को प्रशस्त करने में स्वयं को सक्षम नही पाता। रात्रि का गहन अन्धकार जिस प्रकार पूर्णत. सर्वत्र व्याप्त होकर समूचे संसार को मदमत्त कर गहरी निद्रा में एक मद्यप व्यक्ति की भाँति सुला देता है, उसी प्रकार निराशा ने सब पदार्थों को मतवाला बना दिया है—सभी पर निराशाजन्य मादकता का प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। रात होते ही अन्धकार छा जाता है और प्रातः होते ही अन्धकार मिट जाता है—यही क्रम परिवर्तन चलता रहता है। इस प्रकार गहन अन्धकार नाना आकृतिहीन रूपों का परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रकार हे निराशा ! तू मेरे हृदय में महान् आवेश के साथ प्रकट होती है, फिर कुछ आशा-सी बँध जाती है—सुखमय जीवन की कल्पना के सपने साकार होने से लग जाते है। उस समय निराशा कुछ क्षणों के लिए अन्तर्लीन-सी प्रतीत होने लगती है, किन्तु कतिपय क्षणों के बाद फिर वही निराशा मेरे जीवन को आक्रान्त कर लेती है। फलतः मै व्यथित एवं विकल हो उठता हूँ। हे निराशा ! जिस प्रकार किसी सौभाग्यवती रमणी की लहरीली एवं घुंघराली लटों के बीच मे से निकली हुई माँग में भरे हुए कुंकुम के समान रात्रि के गहन अन्धकार में से प्रभातकालीन लालिमा से पूर्ण एक क्षीण रेखा प्राची मे दिखलाई देती है, उसी में से आलोक-किरणें प्रस्फुटित होती-सी दिखलाई देती हैं, उसी प्रकार घोर निराशा से परिपूर्ण इस विकल एवं संतप्त हृदय में स्नेह-ममता

की एक क्षीण रेखा दिखलाई देती है। उसमें से आशा की किरणें घुटतीं-सी दृष्टिगोचर होती है, किन्तु वे भी कतिपय क्षणों के लिए आनन्ददायिनी होती है। हे निराशा ! जिस प्रकार रात्रि का घोर अन्धकार सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी गोद मे शयन कराकर विश्राम कराता है और उनके विश्राम का स्थान वह बना हुआ है, उसी प्रकार मेरे इन व्यथित प्राणों के विश्राम का स्थान बन गई है क्योकि मेरे हृदय में तू सदा निवास करती है। मेरा हृदय निष्क्रिय-सा होकर अब तेरे अंक में सोता रहता है। अरी निराशा ! काले बादलों की छाया रूप में जैसे अन्धकार दिखलाई देता है, उसी प्रकार तू मोह की विस्तीर्ण छाया में दिखलाई पड़ती है। मोह ही निराशा की उत्पत्ति का कारण है। जिस प्रकार गहन अन्धकार प्रकृति-देवी के काले केश-समूह के समान दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार तू भी मोह-माया के जाल के रूप में फैली हुई दिखलाई देती है। इसी माया-मोह की उत्कट लालसा में मनुष्य भौतिक पदार्थो के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट होता है और उनके प्राप्त न होने पर उसे अपने जीवन मे घोर निराशा होती है।

विशेष—कवि प्रसाद ने यहाँ निराशा की तुलना अर्द्धरात्रि के गहन अंधकार से की है। इस चित्रण में पर्याप्त सजीवता एवं यथार्थता का समावेश है। कवि ने अपनी महान कृति 'आँसू' मे इस सन्दर्भ में लिखा है—

घिर जाती प्रलय घटाएँ कुटिया पर आकर मेरी,
तम चूर्ण बरस जाता था, छा जाती अधिक अंधेरी।

(२) यहाँ 'निशीथ अन्धकार' का मनोरम विम्ब अंकित कर मनु की निराशा का, 'जलनिधि' के विम्ब के माध्यम से निराशा की चरम स्थिति का तथा 'मायारानी के केशभार' के विम्ब के माध्यम से निराशा का सशक्त चित्रांकन किया गया है।

(३) अलङ्कार—(i) सांगरूपक—समस्त पद में।
(ii) विरोधाभास—'तू मूर्तिमान हो···अनंग।'
(iii) वस्तूत्प्रेक्षा—'ममता की···ज्योतिकला।'
(iv) रूपकातिशयोक्ति—'निराशा' के स्थान पर अंधकार—संकेतित रूप में व्यक्त किया गया है।

जीवन निशीथ के ··· ··· ··· प्रतिध्वनि नभ अपार।

शब्दार्थ—नवज्वलन = सद्योज्वलित अग्नि, अभी-अभी जलाई हुई अग्नि।

धूम = धुंआ। दुर्निवार = जिसे रोका न जा सके। अपूर्ण लालसा = अधूरी इच्छा। कसक = वेदना, पीड़ा। पुकार = कराहना। मधुवन = व्रज प्रदेश, जहाँ मधु नामक दैत्य निवास करता था। कालिन्दी = यमुना नदी। दिगन्त = दिशाओं के छोर। मनशिशु = मनरूपी बच्चा। क्रीड़ा-नौकाएं = जल-विहार के लिए प्रयुक्त नावें। अनन्त = असंख्य। कुहुकिनि = जादूगरनी। अपलक दृग = खुले नेत्र। अंजन = काजल। छलना = धोखा। धूमिल रेखा = धुंधली रेखाएँ। कलना = रचना, निर्माण। चिरप्रवास = सदा के लिए निवास करने योग्य विदेश। श्यामल पथ = हरियाली से युक्त रास्ता। पिकप्राण = कोयल रूपी प्राण। नील प्रतिध्वनि—वेदना की गूंज।

भावार्थ—अपने जीवन में छाई हुई निराशा को रात्रि के अन्धकार के समान बतलाते हुए मनु कह रहे हैं कि हे निराशा ! तू अर्द्धरात्रि के अन्धकार के समान सर्वत्र व्याप्त है। असितपक्ष की अर्द्धरात्रि के घने अन्धकार का प्रसरण सद्योज्वलित अग्नि के धुएँ के समान जिस प्रकार सब ओर हो जाता है—चक्कर काटता हुआ-सा दिखाई देता है और जिसे किसी भी प्रकार से रोका नहीं जा सकता, उसी प्रकार मेरे अन्तस् में तू असंख्य एवं बहुविध आकांक्षा-इच्छा के रूप मे छाई रहती है और मैं बारम्बार तुझे अपने मन से हटाने का निष्फल प्रयास करता हूँ। मेरे मन में इच्छाओं के अधूरे रह जाने से एक प्रकार की टीस उठती है, जैसे धुएँ मे कभी-कभी चिंगारी दृष्टिगोचर हो जाती है। जिस प्रकार व्रज-प्रदेश में यमुना अपनी क्षिप्र गति से जलप्रवाह के द्वारा सुदूरवर्ती स्थानो को स्पर्श करती है और छोटे-छोटे बच्चे अपनी नौकाओं में आरूढ़ होकर अनेक प्रकार की जल-क्रीड़ा करते हुए दौड़ लगाते हैं, उसी प्रकार मेरे शरीर में यौवन की मादक धारा अजस्र रूप में प्रवाहित हो रही है, जिसमे मेरा चपल मन अपनी अनेक प्रकार की इच्छाओं पर आरूढ़ होकर तीव्र गति से दौड़ लगाता है। जैसे रात्रि का गहन अन्धकार किसी जादूगरनी के सदा खुले नेत्रों में लगे काजल के समान लक्षित होता है, उसी प्रकार हे निराशा ! तू भी मुझे उस अंजन के रूप मे ही दिखाई देती है, जैसे उस काजल में छल या प्रपंचना दृष्टिगोचर होती है, वैसे ही तेरे भीतर भी मुझे छल का वही रूप दिखलाई दे रहा है। जिस प्रकार घना अन्धकार धुंधली रेखाओं से बना चपल एवं सजीव चित्रकला का रूप दिखलाई पडता है, उसी प्रकार हे निराशा ! तू मुझे अतीत की स्मृतियो की धुधली रेखाओं से निर्मित एक सजीव-सुन्दर रचना की सृष्टि

करती हुई-सी दिखलाई देती है। हे निराशा! जिस प्रकार अर्द्ध-रात्रि का घना अन्धकार कोयल की पुकार के सदृश चतुर्दिक व्याप्त परिलक्षित होता है, जिसकी मधुर गूँज वनकर सारे आकाश मे छा जाती है और प्रवासी वियुक्त व्यक्ति को हरे-भरे मार्ग में वह प्रतिध्वनि कर्णगोचर होती है, उसी प्रकार तू भी प्राणों की पीड़ा से भरी हुई पुकार के समान मेरे अन्तस् में व्याप्त हो गई है। और गूँज के रूप मे तू अनन्तकाल से भटके हुए एवं अन्धकारपूर्ण मार्ग पर चलने वाली परम व्यथित मुझे सुनाई पड़ रही है।

विशेष—(१) यहाँ कवि द्वारा प्रस्तुत विम्व-योजना हृदयस्पर्शी है।

(२) अलङ्कार—(i) रूपकातिशयोक्ति—'निशीथ अन्धकार'।
(ii) रूपक—'जीवन निशीथ', 'यौवन मधु की कालिन्दी', 'मन-शिशु', 'पिक-प्राण'।
(iii) मालोपमा—समस्त पद में।
(iv) श्लेष—'श्यामल पथ'।

यह उजड़ा सूना ... ... वे स्वयं शान्त।

शब्दार्थ—विध्वस्त=नष्ट। शिल्प=कलाकृति। नितान्त=पूर्णरूप से। विकृत—भद्दी। वक्र=टेढी, अराल। अपूर्ण=अतृप्त। रुचि=इच्छा। विकीर्ण=विखरी हुई। पत्र जीर्ण=सूखे-पुराने पत्ते। आकाश वेलि=अमर वेल।

भावार्थ—मनु आगे वढते-वढते सारस्वत नगर के प्रदेश में पहुँच जाते हैं। पहले यह सारस्वत नगर देवजाति की निवास-स्थली थी। यहाँ वैभव तथा ऐश्वर्य पूर्णरूप से व्याप्त था, किन्तु अव वह उजड़ चुका है। वहाँ सुनसान हो गया था—खण्डहर मात्र ही अवशेष रह गये थे। समस्त सम्पन्न कलाकृतियाँ ध्वस्त होकर विखर गई थी। आज मनु इसे देखकर सुख-दुःख की परिभाषा को सम्यक् रूप से जान गए थे। कलाकृतियों में ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य उनकी सुखमय स्थिति का तथा विखरा हुआ रूप उनकी दुःखमय स्थिति का सूचक था। वहाँ के रमणीय भवनों की टेढ़ी तथा टूटी-फूटी रेखाएँ विकृत दशा में विखरी हुई दृष्टिगोचर हो रही थी। वहाँ के ध्वस्त खण्डहरों से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उन भवनों मे महत्त्वाकांक्षी तथा आशावादी लोग रहते थे, जिनकी मधुर स्मृतियाँ इन खण्डहरों के रूप में विखर कर फैल गई हों—इससे उनकी अधूरी इच्छाओं की अभिव्यक्ति-सी प्रतीत हो रही थी। वहाँ पर

(६) अलङ्कार—मानवीकरण—'नक्षत्र निरखते निर्निमेष वसुधा की वह गति विकल वाम', तथा 'वह पावन सारस्वत प्रदेश दुःस्वप्न देखता पड़ा क्लान्त।'
पुनरुक्ति—पथ-पथ में।

जीवन का लेकर ... . में बंधते दुर्निवार।

शब्दार्थ—द्वन्द्व=संघर्ष। निरत=लीन। सुर-वर्ग=देव-वर्ग। आराध्य=उपास्य। आत्म-मंगल उपासना में विभोर=अपने कल्याण की आराधना में लीन। उल्लासशील=हर्षित। आनंद उच्छलित=आनंदपूर्ण। वैचित्र्य=विचित्रता। हरा=प्रसन्नतायुक्त। संलग्न=तत्पर। दुर्निवार=जिसे रोका न जा सके, अडिग, अविचल।

भावार्थ—सारस्वत नगर के खण्डहरों में अपनी थकान को दूर करते हुए मनु विचार करने लगे कि पहले यहाँ सुर और असुर वर्ग दोनों मिलकर निवास किया करते थे, किन्तु दोनों में जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण के उदय होने के फलस्वरूप संघर्ष छिड गया। एक ओर असुर वर्ग, जो वरुण का अनुयायी था और दूसरी ओर सुर वर्ग, जो देवेन्द्र का अनुयायी था—दोनों वर्गों की जीवन के प्रति मूल विचारधारा को व्यक्त करते हुए मनु कहते है कि असुर अपने शरीर की चिन्ता में ही अधिक व्यस्त रहते थे—उनकी दृष्टि में शरीर का ही महत्त्व सर्वोपरि था। इसकी रक्षा के लिए वे प्राणों के स्वामी वरुण की आराधना में संलग्न रहते थे। दूसरी ओर इन्द्र का अनुयायी सुर वर्ग अपने को ही शक्ति का उद्गम स्वीकार करता था। वे लोग किसी अन्य की उपासना को महत्त्व नही देते थे। उनकी दृष्टि मे उनसे पृथक् कोई दूसरी ऐसी शक्ति नही थी, जिसकी आराधना उनके लिए स्वीकार्य हो। सुर-वर्ग की यही धारणा थी कि हमें आत्म-कल्याण के हेतु आत्मा की आराधना करनी चाहिए। हम स्वयं ही आराध्य-उपास्य है। हम स्वयं ही उल्लासपूर्ण शक्ति के उद्गम हैं। अतएव हमारे लिए किसी अन्य की सन्निधि में पहुँचना वांछनीय नही है। दूसरे शब्दों में, किसी दूसरी शक्ति के पास जाने से हमें कुछ प्राप्त नही होगा। हमारा जीवन आनन्द तथा उल्लास से पूर्णतया ओत-प्रोत है तथा नाना प्रकार की विकास-युक्त विचित्रताओं से युक्त है। हम स्वयं अपनी अनुपम शक्ति के द्वारा नूतन निर्माण करते हुए अपने संसार को निश्चित रूप से कल्याणमय रूप प्रदान कर सकते है। असुर लोग प्रतिक्षण शरीर की रक्षा के निमित्त बहुविध सुख-

साधनों के जुटाने में व्यस्त रहते थे और इस प्रकार वे जीवन को सुधारने के लिए कठोर तथा अचल नियमों में बँधे जा रहे थे। तात्पर्य यह है कि असुरों की धारणा प्राणवादी थी तथा सुरो की धारा आत्मवादी थी। इसी मूल धारणा के फलस्वरूप सुरों तथा असुरों का संघर्ष छिड़ गया था।

विशेष—यहाँ कवि प्रसाद ने 'छान्दोग्योपनिषद्' मे उल्लिखित इन्द्र-विरोचन की कथा की ओर संकेत किया है। 'छान्दोग्योपनिषद्' में इन्द्र को आत्मवादी एवं विरोचन को प्राणवादी अभिहित किया गया है। वेदों मे वरुण को प्राणो का रक्षक एवं असुरों का उपास्य देव बतलाया गया है।

था एक पूजता ... ... श्रद्धा विहीन।

शब्दार्थ—एक=असुर-वर्ग। देहदीन=क्षुद्र शरीर। दूसरा=सुर-वर्ग। अहंता=अहंकार, अभिमान। प्रवीण=कुशल, निपुण। तर्क=युक्ति। ममत्व-मय=ममता-माया से परिपूर्ण। आत्ममोह=स्वार्थ, प्रेम। उच्छृंखलता=नियमहीनता, निरंकुशता। प्रलयभीत=प्रलय से डरा हुआ। व्याकुलता=व्यग्रता, विकलता। पूर्व=प्राचीन। द्वन्द्व=संघर्ष (सुरों और असुरों का संग्राम)। श्रद्धा विहीन=श्रद्धा अथवा विश्वास से रहित, मनु की पत्नी श्रद्धा से रहित।

भावार्थ—देवों तथा असुरों में हुए संघर्ष के विषय में मनु विचार करते हुए कह रहे हैं कि असुर लोग इस क्षुद्र शरीर के प्रति अधिक चिन्तित रहते थे। इस शरीर की रक्षा हेतु ही उन्होने नाना प्रकार के साधनों को जुटाया था। इसीलिए वे वरुण देव तथा अन्य प्राकृतिक शक्तियों की आराधना करते थे। दूसरी ओर देव लोग आत्मा को ही एकमात्र महत्त्वशाली समझते थे। आत्माराधन में वे प्रतिक्षण लीन रहते थे। इस प्रकार सुर तथा असुर –दोनों वर्गों में ही हठधर्मिता की अभिवृद्धि होती रही। किसी भी वर्ग को दूसरे वर्ग की धारणा के विषय में तनिक भी विश्वास नही होता था। यद्यपि नाना प्रकार की युक्तियों एवं तर्कों के बल पर दोनो पक्षों ने एक-दूसरे पक्ष को समझाने-बुझाने का अथक प्रयास किया, किन्तु वे दोनों ही पक्ष सर्वथा विफल रहे। सुर-वर्ग अपने समक्ष किसी अन्य शक्ति को नगण्य समझता था। इस धारणा के वैषम्य का परिणाम यह हुआ कि दोनों वर्गों में संघर्ष का सूत्रपात हो गया, जो पूर्णतः स्वाभाविक था। उस संघर्ष से अशान्ति तथा व्यग्रता को बढावा मिला। यह संघर्ष विरोधी विचारों को समधिक वृद्धि करने में परम सहायक सिद्ध हुआ और पर्याप्त समय तक चलता रहा। इन विरोधी भावों का स्वरूप आज भी

यह कौन ? अरे ... ... मैं पूर्ण काम।

शब्दार्थ—विराम=विश्राम। अतीत=भूतकाल। वरदान=सुखपूर्ण जीवन। अन्तरंग=आभ्यान्तर मन। अभिशाप=अत्यधिक कष्ट। ताप=सन्ताप, पीडा। भ्रान्त साधना=भ्रान्तियुक्त अर्थात् मिथ्याचरण। सस्नेह=प्रेम सहित। अमृतधाम=प्रेममयी भावनाओ का आश्रय। पूर्ण काम=जिसकी कामनाएँ पूर्ण हो गई हों, पूर्ण सन्तुष्ट।

भावार्थ—काम की आकाशवाणी को सुनकर मनु कहने लगे कि यह किसकी वाणी है—यह वही काम है, जिसने श्रद्धा को अंगीकार करने के लिए मुझसे पहिले आग्रह किया था। इसकी वाणी के अनुकूल आचरण के फलस्वरूप मैं उलझन मे पड गया। मेरा जीवन इसने भ्रम में डाल दिया। मेरे जीवन के समस्त सुखों एवं शान्ति को इसने मुझसे छीन लिया। इसकी वाणी में तीक्ष्णता है। इसकी वाणी को सुनकर मुझे अपने विगत जीवन की बातें—घटनाएँ मेरी स्मृति पटल पर पुनः अंकित हो रही हैं। मैं उन घटनाओं को विस्मृत कर चुका था और जो अब नाम मात्र के लिए ही शेष रह गई थीं। विगत दिनों की सुखमयी एवं माधुर्यमयी घड़ियाँ मेरे हृदय मे अब उद्वेलन करने लगी है, जिससे मेरा मन तथा शरीर, भयावय क्लेश एवं संताप की ज्वाला में जल उठा है। मनु कहने लगे कि क्या मैंने अपना जीवन अब तक मिथ्याचरण में ही व्यतीत कर दिया। क्या तुमने श्रद्धा को अपनाने के लिए मुझसे प्रेमपूर्वक नही कहा था? तुम्हारे द्वारा किए गए आग्रह के अनुकूल मैंने श्रद्धा को स्वीकार किया और श्रद्धा ने भी मेरे सम्मुख निष्ठामयी एवं मधुरिमामयी भावनाओ से समवेत अपना हृदय समर्पित कर दिया। इतने पर भी मेरी इच्छाओ-आकांक्षाओं की तृप्ति क्यों न हो सकी ? यह तो तुम मुझे बतला दो।

विशेष (१) यहाँ कवि ने संकेतित किया है कि मनु को स्वप्न के अन्तर्गत काम की वाणी पहले कर्णगोचर हुई थी, जिसमें श्रद्धा को अपनाने के लिए मनु से आग्रह किया था। काम ने श्रद्धा को अपनी पुत्री बतलाया था।

(२) 'अमृत धाम' पद द्वारा श्रद्धा के प्रेममय हृदय की सुन्दर अभिव्यंजना की गयी है।

(३) यहाँ बिम्ब योजना सशक्त है तथा विशेप रूप से द्रष्टव्य है।

मनु उसने तो ... ... का क्षुद्र यान।

शब्दार्थ—प्रणय=पति-पत्नी-प्रेम। शान्त प्रभा=स्वाभाविक ज्योति।

ज्योतिमान्=प्रकाशमान। जड़ देह=भौतिक शरीर। गरल=विष। गरल पात्र=विप से भरा हुआ पात्र, वासनाओं में निमग्न मनु। अवोध=अज्ञान। अपूर्णता=अधूरापन, न्यूनता। परिणय=विवाह। रांग भाव=स्वार्थ भाव। मानस जलनिधि=मानस रूपी समुद्र। क्षुद्र=छोटा, तुच्छ। क्षुद्र यान=तुच्छ नाव।

भावार्थ—काम ने मनु को सम्वोधित करते हुए कहा—हे मनु ! निष्ठा के एकान्तिक भाव से युक्त श्रद्धा ने अपने प्रेममय हृदय को तुम्हारे चरणों में अर्पण कर दिया था। श्रद्धा का हृदय नारी-जाति के स्वाभिमान से परिपूर्ण था। उसका हृदय दया, प्रेम, सहानुभूति आदि वांछनीय सात्विक गुणों से ओत-प्रोत था, जिसमें दैवी ज्योतित चेतना व्याप्त थी। तुमने श्रद्धा के उन सात्विक भावों की ओर ध्यान ही नही दिया—तुम तो उसकी शारीरिक सुन्दरता पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर सके। दूसरे शव्दों में, तुमने पार्थिव शरीर को ही समधिक महत्त्व देकर विप के समान भावनाओं को ही अपनाना श्रेयस्कर समझा। उसके आन्तरिक सौन्दर्य की तुमने सदा अवहेलना ही की। हे मनु ! तुम अज्ञानी ही रहे—तुम अपनी कमियों तथा अपने दोपों के विषय में कुछ भी न समझ सके। जिन अभावों की पूर्ति विवाह-सम्वन्ध से होती है, श्रद्धा विवाह करके उन अभावों की पूर्ति हेतु विशेष रूप से सचेष्ट रही, किन्तु तुमने तो उन्नति के मार्ग को स्वयं रोक दिया अर्थात् तुम उन्नति के मार्ग पर अग्रसर न हो सके। तुम अपने स्वार्थों की सिद्धि मे ही व्यस्त रहे। 'कुछ मेरा हो'—सभी मेरे सुख के साधनों के एकत्रीकरण मे व्यस्त रहें, तुम्हारी तो यही भावना प्रतिक्षण रही, जिससे तुम्हारा अज्ञान ही परिलक्षित होता है। जिस प्रकार एक छोटी-सी नौका के द्वारा विस्तृत सागर को पार करना असम्भव है, उसी प्रकार स्वार्थ की भावना से तुम्हारे मन का विकास असम्भव है।

विशेष—(१) यहाँ जलधि तथा प्रभा के विम्व परम चित्ताकर्षक है।

(२) अलंकार—(i) निरग रूपक—'सौन्दर्य जलधि', 'मानस जलधि'।
(ii) परम्परित रूपक—'मानस जलनिधि क्षुद्र यान'।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—'गरल पात्र'।

हाँ अब तुम बनने ... ... भरा तब प्रजातंत्र।

शब्दार्थ—कलुप=दोप। ढालकर औरो पर=दूसरों पर आरोपित या लादकर। तन्त्र=विचार। द्वन्द्व=परस्पर विरोधी-विषम भाव। शाश्वत=

चिरन्तन। मन्त्र=सिद्धान्त। कंटक=काँटे। रुचि से विंधे हुए=रुचि के अनुकूल। बीन रहे=चुन रहे, ग्रहण कर रहे। प्राणमयी ज्वाला=प्राण प्रदान करने वाली ज्योति (श्रद्धा)। प्रणय-प्रकाश=दाम्पत्य प्रेम का आलोक। जलन वासना=वासना की जलन। जीवन भ्रमतम=जीवन में प्रसृत भ्रम रूपी अन्धकार। प्रवर्त्तन=आरम्भ, सूत्रपात। नियति चक्र=नियति रूपी पहिया। यन्त्र=मशीन। प्रजातंत्र=प्रजा में से चुने गए व्यक्तियों (प्रजा के प्रतिनिधियों) द्वारा संचालित व्यवस्था।

भावार्थ—काम ने मनु को पुनः सम्बोधित करते हुए कहा कि हे मनु ! तुम अपने को स्वतन्त्र बनने एवं सबसे मुक्त रहने के लिए अपने द्वारा किए गए समस्त दोषों को दूसरों पर आरोपित कर अपना एक पृथक् मत कायम करना चाहते हो और स्वयं को निर्दोष प्रमाणित करना चाहते हो। इस संसार में यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि पारस्परिक विरोधी विचार आदिकाल से ही चले आ रहे है—सद्भावों से प्रेरणा ग्रहण करना और असद्भावों का परित्याग करना—यह मानव की व्यक्तिगत सूझ-बूझ पर निर्भर करता है। जिस प्रकार एक ही शाखा पर काँटे तथा फूल साथ-ही-साथ लगे होते है, दोनों का जन्मस्थान तथा पालन-स्रोत एक ही है—दोनों एक-दूसरे से मिलकर ही रहते है, उसी प्रकार अच्छाई-बुराई सभी एक ही स्थान पर तथा अभिन्न रूप में हैं। उनमें से अपनी वृत्ति के अनुकूल चयन करना—ग्रहण करना मानव की अपनी समझ पर बहुत-कुछ आश्रित है। तुम अपनी रुचि के अनुकूल बुरे भावों को ही श्रद्धा के जीवन से लेकर अपनाते रहे। तुम प्राणों की साकार मूर्त्ति एवं निष्ठामयी श्रद्धा के दाम्पत्य-प्रेम रूपी प्रकाश को अपने जीवन में ग्रहण न कर भ्रम रूपी अंधकार मे ही पड़े रहे। यदि वह प्रकाश तुम्हारे द्वारा ग्रहण किया गया होता तो निश्चित रूप से तुम्हारे जीवन में व्याप्त भ्रम का पूर्णतः निवारण हो जाता। उस पावन प्रकाश को ग्रहण न करके तुम वासनाओं में लिप्त रहे तथा उनकी ज्वाला मे ही सदा जलते रहे—दूसरे शब्दों में, तुमने अपने जीवन में वासनाओ को ही प्रथम स्थान प्रदान किया। अब तुम्हारी प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था, जिसे तुम प्रारम्भ करने के लिए विशेष उत्सुक हो, महा क्लेशों तथा कष्टो से परिपूर्ण होगी, जिसके फलस्वरूप तुम्हारी समस्त प्रजा संसार के नियमन करने वाली शक्ति के द्वारा इस प्रकार विकल होकर चक्कर काटेगी, जिस प्रकार मशीन के गतिमान होने पर उसके सभी पुर्जे चालू होकर चक्कर काटने लगते है।

विशेष—(१) कवि प्रसाद ने यहाँ संकेत रूप में यह बतलाया है कि श्रद्धा से रहित होने पर मनु की स्थिति भ्रान्तिमयी हो गई है। उन्हें अपने जीवन में सच्चा सुख और शान्ति नही मिल पाती। इसके अतिरिक्त गुण-दोषों में से गुणों का ग्रहण तथा दोषों का परित्याग मनुष्य की अपनी समझ तथा तद्नुकूल रुचि पर पूर्णतया निर्भर करता है—यह भी प्रतिपादित किया गया है।

(२) यहाँ 'कंटक' का बिम्ब अंकित करके बुराई का तथा 'कुसुम' का बिम्ब अंकित करके भलाई का सशक्त चित्रांकन किया गया है।

(३) 'डाली में कंटक संग कुसुम खिलते मिलते भी है नवीन'—में लाक्षणिकता विशेषतः प्रेक्षणीय है। इसके साथ-साथ यहाँ पर मुहावरे का प्रयोग भी किया गया है।

(४) **अलंकार**—(i) रूपकातिशयोक्ति—'प्राणमयी ज्वाला'।
(ii) रूपक—'प्रणय-प्रकाश', 'जलन-वासना' तथा 'भ्रम-तम'।
(iii) उदाहरण—'डाली में...है नवीन'।
(iv) निरंगरूपक—'नियति चक्र' में।

यह अभिनव मानव ... ... यह संकुचित दृष्टि।

शब्दार्थ—अभिनव=नूतन; नवीन। मानव प्रजा सृष्टि=मानव-समूह। द्वयता=भेदभाव। वर्णो=चार वर्ण; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ग। निनष्टि=विनाश। कलह=संघर्ष। अभिलषित वस्तु=इच्छित वस्तु। अनिच्छित=इच्छा के प्रतिकूल। आवरण=पर्दा। वक्षस्थल की जड़ता=हृदय की संकीर्ण वृत्ति, हृदय में विद्यमान राग-द्वेष आदि सम्बन्धित जड़ विचार। तुष्टि=संन्तुष्ट, तृप्ति, सन्तोष। संकुचित दृष्टि=संकोचयुक्त भाव।

भावार्थ—काम ने मनु से पुनः कहा कि तुम्हारी नवीन प्रजा 'मानव-सृष्टि' के नाम से अभिहित की जावेगी। तुम्हारी प्रजा मे भेद-भाव की वृद्धि होगी, जिससे चार प्रकार के वर्णों में (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) प्रजा समूह विभाजित होगा। तुम्हारा मानव-समाज अनेक प्रकार की अनजानी समस्याओं में उलझेगा और स्वतः ही सुलझने के प्रयत्न उलझते चले जायेंगे—इस प्रकार प्रजा अपने विनाश की ओर अग्रसर होगी। पारस्परिक क्लेशों में वृद्धि होगी—एकता का ह्रास होकर भेद-भावों मे वृद्धि होती चली जावेगी। प्रजा में सदैव कोलाहल के वातावरण की सृष्टि होगी। उस समय प्रजा वर्ग के अन्तस् को

सुख देने वाली अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति संभव न हो सकेगी—उसे तो नाना प्रकार के दुःखों को प्रदान करने वाली उनकी इच्छाओं के प्रतिकूल वस्तुओं की उपलब्धि हो सकेगी। प्रजा के अन्तस् में राग-द्वेष तथा स्वार्थपरक भावना से युक्त जड विचारों का प्रसरण होगा और प्रजा के हृदय पर जडता का एक प्रकार का ऐसा पर्दा पड़ जाएगा कि वे एक-दूसरे को आत्मीयता के भाव से देखने तथा पहिचानने मे सक्षम न हो सकेंगे। भौतिक एव क्षणिक विचारों मे लीन यह संसार बस, ऐसे ही गिरता-पड़ता-सा चलेगा—इसकी गति में क्रमिक विकास एवं सुस्थिरता न आ सकेगी। उस समय मानव वर्ग की इच्छाओं के अनुकूल कितनी भी सुखद सामग्री क्यों न हो, सुखद पदार्थों की उपलब्धि होने पर भी मानव-वर्ग सर्वत्र अभाव ही अभाव की अनुभूति करेगा—प्रत्येक क्षेत्र में उसकी इच्छाएँ अतृप्त बनकर रह जावेगी। इस प्रकार सर्वत्र असन्तोष व्याप्त होगा। यह संकीर्णवादी विचारधारा ही मानव-समाज को निरन्तर दुःख-क्लेश प्रदान करती रहेगी।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ भौतिक विचारों—संकीर्ण विचारो को मानव-समाज की सर्वांगीण समुन्नति के लिए उपेक्षित बतलाया है। मानव के हृदय की जड़ता ही आत्मीयता को नही पनपने देगी। संकीर्ण मनोभावों से मानव-वर्ग की समुन्नति कदापि सम्भव नही। इन विचारों के फलस्वरूप मानव-समाज अनेक प्रकार की समस्याओ मे उलझ जाता है—समस्याओ के सुलझाने में वह ज्यो-ज्यो सचेष्ट एवं सजग होता है—समस्याएँ सुलझने के बजाय और भी अधिक उलझ जाती है और मानव-जीवन कलहमय, भेद प्रतीति-युक्त तथा स्वार्थमय हो जाता है—एकता का अभाव होकर जीवन में समग्रता के स्थान पर बिखराव दृष्टिगोचर होने लगता है।

२. 'वर्णो की करती रहे वृष्टि' में लाक्षणिक प्रयोग द्रष्टव्य है।

अनवरत उठे ... ... ज्वाला का पतंग।

शब्दार्थ— अनवरत=निरन्तर। उमंग=उत्साह। चुम्बित=चूमना, स्पृष्ट। आँसू जलधर=आँसू रूपी मेघ। शैलशृंग=पर्वत की चोटियाँ। जीवन नद=जीवन रूपी नद; विशाल नदी। हाहाकार=कोलाहल। यौवन के दिन=युवावस्था। सभीत=भयभीत। स्वजन=आत्मीयजन; सम्बन्धीजन। श्याम अमा=अन्धकार से युक्त अमावस्या। सभीत=भयभीत। दारिद्र्य-दलित=गरीबी से कुचली हुई (पीड़ित)। शस्य श्यामला=धान्य से परिपूर्ण-

हरी-भरी । प्रकृति रमा=प्रकृति रूपी लक्ष्मी । दुःख नीरद=दुःखरूपी बादल । रग बदलना=कपट, छल से नए-नए रूप बदलना । तृष्णा ज्वाला=लालसा रूपी ज्वाला । पतंग=शलभ, पतंगा ।

भावार्थ—काम ने मनु से कहा कि जिस प्रकार आकाश में मेघ पर्वतों की चोटियों का स्पर्श करने के लिए परमोत्साहित होकर विशेप रूप से सचेष्ट हो उठते है, उसी प्रकार तुम्हारे आगे प्रजा के अन्तस् मे उठने वाली आकांक्षाओं-इच्छाओं का स्पर्श आँखो से निकले हुए आँसू ही करेंगे, अर्थात् उनकी इच्छाएँ कभी तृप्त नही हो सकेगी । परिणामतः उन्हे इच्छा विषयक तृप्ति न होकर सर्वदा दुःखानुभूति ही होती रहेगी । तुम्हारी प्रजा के जीवन में कोलाहल व्याप्त होगा—दुःखो की उत्तुंग तरंगें उसी प्रकार से उठा करेंगी, जिस प्रकार से कोई महानदी जल के अतिशय वेग के कारण समूचे वातावरण में कोलाहल उत्पन्न कर देती है और उस जलराशि मे उत्तुग तरंगें उठती रहती है । यहाँ तक कि प्रजा-वर्ग मे युवावस्था के दिन भी इस प्रकार से दुःखपूर्ण व्यतीत होंगे, जिस प्रकार पतझड मे पत्तों-फूलों से विहीन पेड-पौधे अपना दुःखमय जीवन व्यतीत करते है । तुम्हारी प्रजा मे अनेक प्रकार के सन्देहो की सृष्टि होती रहेगी और संतप्त होकर वे सदैव एक-दूसरे से भयभीत तथा सशंकित रहेगे । इतना ही नही, प्रजा-वर्ग मे आत्मीयजनों में पारस्परिक विरोध-वैपम्य की भावना का प्रसार होगा और ऐसा वातावरण उपस्थित हो जावेगा, जैसा अमावस्या की रात्रि मे घोर अन्धकार छाया रहता है । धन-धान्य से परिपूर्ण हरी-भरी प्रकृति रूपी लक्ष्मी दरिद्रता से पीडित एवं ऐश्वर्य-समृद्धि से हीन होकर विलखती हुई दृष्टिगोचर होगी, जैसे दरिद्रता से सताया हुआ कोई व्यक्ति क्रन्दन-चीत्कार करता हो—दुःख से कराह रहा हो । तुम्हारे द्वारा निर्मित सृष्टि का मानव दीपक की लौ पर जलकर प्राणों की आहुति देने वाले पतंगे के समान दुःखी होकर दूसरों से छल-कपटपूर्ण व्यवहार करके नये रूप-रग इस प्रकार वदलेगा, जिस प्रकार मेघों के मध्य इन्द्र धनुप नित्य नवीन रंग-रूपों को धारण करता हुआ दृष्टिगोचर होता है ।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ भौतिक जीवन के प्रति विशेपतः आकृष्ट व्यक्तियों के भविष्य के रूप का चित्रांकन किया है—भयावह स्थिति का सुनि-रूपण किया है ।

(२) मनु द्वारा संचालित किये जाने वाले प्रजातन्त्र की दुःखमय स्थिति

रचना करेगा। मानव-समाज द्वारा प्रस्तुत ललितकलाओं में स्थायित्व न होकर छाया के समान अस्थायित्व होगा। इस प्रकार जीवन तथा जगत् की अखण्डता समाप्त हो जावेगी, जिसके फलस्वरूप उसे जीवन मे ह्रास की अनुभूति होगी। मानव की नित्यता शक्ति संकुचित हो जाएगी। उन क्षणों में तुम्हें कोई समझाये भी कि तुम किसी की बुराई न करके दूसरो का कल्याण करो—इस इच्छा में महान् शक्ति होती है, तब तुम्हें यह बात रुचिकर प्रतीत नही होगी। यदि वह प्राणी तुम्हें नाना प्रकार के तर्कों द्वारा सम्यक् समझाने की चेष्टा भी करे तो भी तुम उसकी दलील भरी बातो को सुनना-समझना पसन्द नही करोगे। वे तर्कपूर्ण युक्तियाँ कदापि कारगर (सफल) न हो सकेंगी।

विशेष—(१) मानव-समाज की संकीर्ण एवं स्वार्थपरक मनोवृत्ति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। जीवन तथा जगत् की नित्यता के महत्त्व से मानव सम्यक् अवगत नहीं हो पाता। फलतः उसका जीवन सुविकसित नही हो पाता। ललितकला के क्षेत्र मे स्थायित्व एवं समग्रतापूर्ण सुन्दर रचनाएं मानव-समाज के लिए अब कल्पना की वस्तु बनकर रह गई हैं।

(२) यहाँ पाँच प्रकार के कुंचुकों को निरूपित किया गया है—राग, नियति, विद्या, कला और काल। 'प्रत्याभिज्ञादर्शनम्' में इसका उल्लेख प्राप्त होता हैं। पाँच कुचुको से आवृत्त होकर जीव संकीर्णवादी हो जाता है।

(३) अलंकार—उपमा।

जीवन सारा बन ... ... ही हो अशुद्ध।

शब्दार्थ—रक्त=रुधिर, खून। अग्नि की वर्षा=तोप बन्दूकों की आग। शुद्ध भाव=त्याग, दया आदि सात्विक भाव। शंका=संदेह। कृत्रिम= अस्वाभाविक, बनावटी। वसुधा=धरती, वसुन्धरा। उन्नत=उच्च। दम्भ= अहंकार। संसृति=संसार। नवनिधि=नया खजाना, सात्विक भाव। छली गई=प्रवंचना की गई। वंचित=ठगा जाना। प्रपंच=आडम्बर।

भावार्थ— काम ने मनु से कहा कि तुम्हारा समूचा जीवन एक युद्ध-क्षेत्र के रूप में बन जाए और तुम्हारे हृदय में व्याप्त दया, परोपकार, त्याग, सहानुभूति आदि सात्विक भाव युद्ध क्षेत्र में बहते हुए रुधिर तथा बन्दूकों-तोपों से निकली अग्नि की वर्षा में बह जावेगे। कहने का भाव यह है कि तुम जीवन मे संघर्ष करते-करते सात्विक भावों का परित्याग कर दोगे। यहाँ तक कि तुम अनेक शंकाओ से घिर जाओगे—तुम्हारा हृदय व्याकुल हो उठेगा और इस

प्रकार तुम अपनी आत्मा के प्रतिकूल कार्य करने लगोगे। तुम अपने यथार्थ रूप को छिपाते हुए दूसरे लोगों के सम्मुख अपना अस्वाभाविक रूप प्रदर्शित करोगे। उस समय तुम अहंकार से ग्रस्त होकर इस धरती पर इस प्रकार से चलते हुए दिखाई दोगे, जैसे अहंकार का कोई ऊँचा टीला हो। इस सृष्टि का रहस्य श्रद्धा है। वह निस्सीम विश्वास एवं पूर्ण शुचिता की साकार मूर्ति है। उसकी भावनाओं द्वारा मानव-सृष्टि का सुमधुर विकास हो सकता है, किन्तु तुम्हारे जैसे संकीर्ण भावों से ऐसा सुन्दर विकास कदापि सम्भव नही हो सकता है। उस श्रद्धा के द्वारा नवीन निधि अर्थात् सात्विक भावों को तुम्हारे चरणों में अर्पित कर देने पर भी तुमने उसके साथ छल किया—तुम उन सात्विक भावनाओं को आदरपूर्वक ग्रहण न कर सके। तुम अपने वर्तमान जीवन मे वंचित हो गए हो और भविष्य में आगे बढ़ने की आशाएँ तुम्हें धूमिल ही दिखाई देंगी, उन्ही आशाओ में तुम उलझे हुए हो। उस विश्वासमयी एवं नैष्ठिक प्रेममयी मूर्ति श्रद्धा के अभाव में सर्वत्र तुम्हें आडम्बर ही आडम्बर दिखाई देंगे—विशुद्ध सात्विक भावों की प्राप्ति तुम्हें न हो सकेगी।

विशेष—(१) विश्वासरहित मानव के जीवन की स्थिति का यथार्थ चित्रण कवि के द्वारा किया गया है। ऐसा मानव पग-पग पर अपने जीवन में शंकालु हो उठता है और कपटाचरण करता है। सात्विक भावों का महत्त्व उसकी दृष्टि में नही होता। अपने अशोभनीय आचरण द्वारा अहंकारग्रस्त होकर वह अपनी समुन्नति के मार्ग का अवरोध स्वयं बन बैठता है।

(२) यहाँ युद्ध के बिम्ब के माध्यम से 'संघर्ष' का तथा 'स्तूप' के बिम्ब के माध्यम से अहंकारी प्राणी का सुन्दर चित्रांकन किया गया है।

(३) अलंकार—रूपक।

तुम जरा मरण ... ...रहे सदैव श्रान्त।

शब्दार्थ—जरा=वृद्धावस्था, बुढ़ापा। अनन्त=निस्सीम। अमरत्व=अमरता। चिन्तन=मनन। वंचक=छली, छल करने वाला। मानव संतति=मानव सन्तान, मानव-सृष्टि। ग्रहरश्मि रज्जु=नक्षत्रों की किरणे रूपी रस्सी। पीटे लकीर=लकीर पीटना, बिना सोचे-समझे अनुसरण करना। लोक=संसार। अतिचारी=स्वच्छन्दतापूर्वक आचरण करने वाला। परलोक वंचना=मिथ्या विश्वास। बुद्धि विभव=बौद्धिक विकास, बौद्धिक उन्नति। भ्रान्त=भटका हुआ। श्रान्त=थका-मांदा।

भावार्थ—काम मनु से कहने लगा कि तुम देवता होने पर भी वार्धक्य तथा मृत्यु के भय से सदैव भीत रहोगे। वृद्धावस्था और मृत्यु—जिन्हें अब तक जीवन का अनन्त परिवर्तन माना जाता था—यह सब तुम्हारे लिए वेचैनी का कारण वन जावे। अमरता की भावना को तुम भूल जाओगे। तुम जीवन से घवराकर उसे अन्त रूप में समझते हुए सदा चिन्तित रहोगे। जीवन का अन्त होते ही मानव संसार के समस्त कष्टो से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। दुःख से ओतप्रोत चिन्तन के साकार स्वरूप! श्रद्धा के साथ छलकपट करने के कारण तुम श्रद्धा रहित होकर सदैव व्यथित रहोगे। तुम्हारी मानव-सृष्टि नक्षत्रों की किरण रूपी रस्सी से भाग्य को वांधकर अन्ववत् अनुसरण करती रहेगी। दूसरे शव्दो में, भाग्य एवं परम्परा द्वारा निर्धारित कार्य करती रहेगी। "यह संसार कल्याण की भूमि है"—इस वाक्य के मर्म को तुम्हारी मानव-सन्तान समझ सकेगी। इस वाक्य का रहस्य तो श्रद्धायुक्त व्यक्ति ही समझ सकेगा। तुम्हारी मानव-सृष्टि स्वच्छन्दाचरण मे लीन होकर इस जगत् को मिथ्यास्वरूप मानेगी और परलोक के कल्पित सुखों की प्राप्ति की दिशा में ही सचेष्ट रहेगी—किन्तु उनका यह विचार सर्वथा भ्रामक ही होगा। तुम्हारी मानव-सृष्टि मे सर्वत्र अशान्ति का वातावरण छाया हुआ होगा। उसमें निराशा ही निराशा हाथ लगेगी। दूसरे शव्दों मे, उनकी आशाएं निराशा में ही परिणत होकर रह जावेगी। उनका वौद्धिक विकास उच्च शिखर पर होते हुए भी वे भटकते-फिरते सदैव जीवन के संघर्ष मे उलझे रहेंगे और अशांति का अनुभव करते हुए थके-मांदे होकर अग्रसर होते रहेगे।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने संकेत किया है कि भौतिक समुन्नति में लीन मानव-समाज श्रद्धा से हीन होकर चिन्तन मे निमग्न रहेगा—शान्तिदायक एवं कल्याणकारी कार्यों की दिशा मे प्रगति करने के लिए वह सचेष्ट न रह सकेगा। वौद्धिक वैभव से परिपूर्ण होने पर भी मानव-समाज इस लोक में सुख-शान्ति खोजने में अपने को अक्षम समझकर परलोक के कल्पित सुखो की प्राप्ति के लिए आशावान् होगा। इस प्रकार की आशा उस समाज के लिए सर्वथा भ्रामक होगी।

(२) यहाँ 'रज्जु' के सुन्दर विम्ब को अंकित कर परम्पराओं से बंधे रहने का चित्राकन किया है।

(३) अलंकार—(i) विरोधाभास—'आशाओं में अपने निराश'।
(ii) रूपक—'चिरचिरन्तन के प्रतीक', 'रश्मिरज्जु'।

अभिशाप प्रतिध्वनि हुई ... ... उपाय भी न।

शब्दार्थ—अभिशाप प्रतिध्वनि=काम की शापयुक्त वाणी। नभ सागर=आकाश रूपी सागर। अन्तस्तल=आन्तरिक भाग। महामीन=महामत्स्य, महा मछली। मरुत लहर=वायु रूपी तरंगे। फेनोपम तारागण=सागर के झागों के समान तारे। झिलमिल=टिमटिमाते। अखिल=समूचा। निस्तब्ध=शान्त। तन्द्रालस=नींद से भरा हुआ आलस्य। विजन प्रान्त=निर्जन प्रदेश, सारस्वत प्रदेश। रजनीतम पुंजीभूत=रात्रि के घने अन्धकार का समूह। अशान्त=विकल, व्याकुल। अदृष्ट=भाग्य। काली छाया=बुरा प्रभाव। यातना=कष्ट, दुःख। अवशिष्ट=शेष।

भावार्थ—कामदेव द्वारा की गई शाप की तीक्ष्णतायुक्त वाणी आकाश में इस प्रकार लीन हो गई, जिस प्रकार कोई विशाल मछली जल की ऊपरी सतह पर प्रकट होकर पुनः अन्तस्तल में छिप जाती है और उस समय सागर में उत्ताल उर्मियों के साथ-साथ झाग उठने लगते है। उसी प्रकार आकाश में हवा के झोंकों के साथ तारे टिमटिमाने लगे। उस समय समूचा संसार पूर्णतः शान्त था। सारस्वत प्रदेश निर्जन होने के कारण, निद्राजन्य आलस्य के कारण ऊँघता हुआ-सा दृष्टिगोचर हो रहा था। सारस्वत नगर के उस जनशून्य स्थान में रात्रि के घोर अन्धकार के समूह के समान मनु परम अशान्त होकर साँसें ले रहे थे और सोच रहे थे कि अब वही काम मेरा भाग्य रूप बनकर पुनः आ पहुँचा। इसी काम ने मेरे जीवन पर पहले भी अशुभ प्रभाव डाला था और मुझसे श्रद्धा के अपनाने के लिए विशेष आग्रह किया था, जबकि मै श्रद्धा को स्वीकार करने के पक्ष में तनिक भी न था। इसी काम ने मुझे श्रद्धा की ओर आकृष्ट करने का विशेप प्रयत्न किया था। मेरे जीवन में व्यथा तथा वेदना भरने का कार्य इसी काम के द्वारा किया गया था। काम ने विषयुक्त प्रभाव मेरे वर्तमान जीवन पर तो डाल ही दिया, इसके साथ ही मेरे भविष्य के स्वरूप को भी इसने लिख दिया अर्थात् इसने मेरे भविष्य की रूपरेखा निर्धारित कर दी। ऐसा प्रतीत होता है कि अब तो मुझे अपने जीवन में नाना प्रकार की यातनाओ तथा कष्टों को ही सहन करना होगा। ऐसी स्थिति मे मेरे पास इन

यातनाओं से मुक्ति पाने का भी कोई उपाय नही रहा है—मुझे कोई भी उपाय अब नही सूझ रहा है।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने 'काम' के आध्यात्मिक स्वरूप की ओर इंगित किया है। यदि मानव-समाज काम के वासनामय रूप को ग्रहण न कर उसके सृजनात्मक एवं आध्यात्मिक रूप को ग्रहण करे तो निस्सन्देह वह समाज समुन्नति के शिखर पर आसीन हो सकता है। प्रस्तुत उदाहरण से यह बात स्पष्ट है कि मनु ने 'काम' के वासनात्मक रूप का अवलम्बन किया। परिणामतः जीवन दु.खमय बनकर रह गया, यदि मनु ने काम के सृजनात्मक एवं आध्यात्मिक रूप को ग्रहण किया होता तो उनका जीवन सुखमय बन जाता।

(२) यहाँ मीन के छिपने के माध्यम से काम की शाप-ध्वनि के लीन होने का, 'लहर' के बिम्ब के माध्यम से वायु का तथा 'रजनी-तम पुंजीभूत' के बिम्ब के माध्यम से मनु की आन्तरिक व्यथामयी दशा का सुन्दर चित्रांकन किया गया है।

(३) 'काली छाया' में लाक्षणिकता का प्रयोग द्रष्टव्य है।

(४) अलंकार—(i) मानवीकरण—'तन्द्रालस का वह विजन प्रान्त'।
(ii) रूपक—'नभ सागर', 'मरुत लहर', 'फेनोपम तारागण'।
(iii) पूर्णोपमा—'रजनीतम पुंजीभूत... अशान्त।'

करती सरस्वती मधुर ... ... जाता कुछ सुसम्वाद।

शब्दार्थ—नाद=ध्वनि, शब्द। श्यामल—हरी-भरी, धान्यपूर्ण। निर्लिप्त भाव-सी=विकार-शून्य के समान। अप्रमाद=प्रमाद रहित। उपल=पाषाण। उपेक्षित=अवहेलना। विषाद=दु:ख। कर्म निरन्तरता प्रतीक=कर्म करने की प्रेरणा देने वाली साकार मूर्त्ति। हिमशीतल=बर्फ के समान शीतल। कूल=तट। आलोक=प्रकाश। अरुण किरण=सूर्य की किरणें। निज निर्मित पथ=अपने द्वारा प्रशस्त किया गया मार्ग। निर्विवाद=विवादहीन, बाधाहीन। सुसम्वाद=शुभ एवं मधुर संदेश।

भावार्थ—सारस्वत प्रदेश के खण्डहरों में विश्राम के बाद मनु आगे की ओर बढ़ चले। हरी-भरी तलहटी में शान्त एवं सात्विक भावों से युक्त विकार-शून्य के रूप मे कलकल मधुर शब्द करती हुई सरस्वती नदी प्रवाहित हो रही थी। उस नदी के तटवर्ती स्थान मे तमाम पाषाण अवमानित रूप में पड़े हुए

थे मानो वे निर्मम विषाद की साकार छवि को धारण किए हुए हों। विकार-शून्य तथा प्रमादहीन सरस्वती के जीवन मे उन पाषाणों का कोई सम्मान नहीं था। वे तो शोक रूप की मूर्त्ति बनकर जड़वत् प्रतीत हो रहे थे। सरस्वती नदी के मधुर शब्द एवं अनवरत प्रवाह में अदम्य प्रसन्नता का अतिरेक तथा उसके कलकल स्वर से मधुर संगीत फूट रहा था और वह सतत् कर्म की प्रेरणा स्वरूप लक्षित हो रही थी। उस सरस्वती नदी की जलराशि में अनन्त ज्ञान था। अतएव वह सबको कर्म करने की प्रेरणा प्रदान कर रही थी। उस समय सरस्वती नदी की बर्फ के समान शीतल तरंगें उसके दोनों तटों से टकरा रही थी और उन तरंगों पर प्रातःकालीन आलोकपूर्ण रश्मिरथी की स्वर्णिम रश्मियाँ अपनी दिव्य प्रभा को विकीर्ण कर रही थी। वहाँ अद्वितीय, अलौकिक एवं विस्मयकारी वातावरण दृष्टिगोचर हो रहा था। सरस्वती नदी अपने बनाए मार्ग पर निर्बाध रूप से इस प्रकार अग्रसर हो रही थी, जिस प्रकार कोई पंथी अपने द्वारा प्रशस्त मार्ग पर आगे बढ़ा जा रहा हो। इस प्रकार प्रवाहित होते हुए सरस्वती नदी समस्त मानव-समाज को शुभ कर्मों के आचरण के विषय में कुछ मधुर सन्देश प्रदान कर रही थी।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने सरस्वती नदी के सुन्दर चित्र-प्रस्तुति-करण के माध्यम से प्राणि-मात्र को सदा शुभ कर्मों के करने के लिए प्रेरणा ग्रहण करने पर बल दिया है। निरन्तर गतिशीलता ही जीवन है। मानव के लिए समुन्नति हेतु अपना मार्ग प्रशस्त करना, मार्ग में आने वाली बाधाओं से जूझना तथा सूझ-बूझ से काम लेना अभीष्ट है।

(२) यहाँ कवि द्वारा प्रस्तुत बिम्ब-योजना चित्ताकर्षक एवं प्रेरक है।

(३) ऋगवेद में सरस्वती नदी के विषय में प्रशंसापरक उल्लेख उपलब्ध होता है। वहाँ पर 'विश्वा अपी महिना सिन्धुरन्याः। एकाचेत-त्सरस्वती नदीनां शुचि', 'ये ते सरस्व ऊर्मयो', वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम्' आदि कहकर सरस्वती को श्रेष्ठ, पवित्र एवं सरस उर्मियों वाली सरिता कहा गया है। इसे वृत्रघ्नी भी कहा गया है। इस का कारण यह है कि इसी नदी के तट पर वृत्रासुर नामक राक्षस का वध किया गया था। डॉ० सक्सेना के शब्दों में, प्रसाद ने सरस्वती नदी का उल्लेख करते हुए अनेक ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर

उसे पंजाब की सरस्वती से भिन्न पश्चिमी अफगानिस्तान के पास गान्धार प्रान्त में बहने वाली सिद्ध किया है, जिसका नाम अवेस्ता में 'हरहैवती' मिला है।

(४) अलंकार—(i) रूपक—'कर्म निरन्तरता प्रतीक'।
(ii) वस्तूत्प्रेक्षा—'सब उपल...विषाद'।
(iii) उपमा—'निर्लिप्त भाव-सी'।
(iv) रूपकातिशयोक्ति—'निज निर्मित...निर्विवाद'।

प्राची में फला ... ... का तम विराग।

शब्दार्थ—प्राची=पूर्व दिशा। अरुणिमा=लालिमा, रक्तिम आभा। मंडल=घेरा, परिधि। कमल=सूर्य (लाक्षणिक अर्थ)। पराग=पीले रंग का प्रकाश (लाक्षणिक अर्थ)। परिमल=सुरभि (लाक्षणिक अर्थ—किरणें)। श्यामल कलरव=हरी-भरी शाखाओं पर सोये हुए पक्षियों की सुमधुर ध्वनि। आलोक=प्रकाश। रश्मि=किरणें। आन्दोलन=चहल-पहल, हिलना-डुलना। अमन्द=तीव्र। वितरने=वितरण करना। मरन्द=मकरन्द, पराग। रम्य=रमणीय। फलक=चित्रपट्ट। बाला=युवती। नयन महोत्सव=नेत्रों को परमानन्द दायक। प्रतीक=साकार रूप, मूर्त्ति। अम्लान=विकसित। नलिन=कमल। सुषमा=शोभा, सुन्दरता। संसृति=संसार, सृष्टि। सुस्मित=सुन्दर मुसकुराहट से युक्त। तम-विराग=अंधकार रूपी वैराग्य।

भावार्थ—प्रात: की वेला में पूर्व दिशा में अरुणिमा छा गई। उस लाली के मण्डल से स्वर्णिम प्रभा से युक्त सूर्य आकाश में उदित हो उठा। उदित होते सूर्य को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे स्वर्णिम पराग से परिपूर्ण कमल प्राची दिशा में सुविकसित हो गया हो। आकाश-मण्डल में उदित हुए सूर्य की रश्मियों का सम्पर्क प्राप्त कर पेड़ों की हरी-भरी शाखाओं पर सोये हुए पक्षी जाग उठे और मधुर कलरव करने लगे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो पूर्व दिशा में खिले हुए कमल की सुगंधि से मस्त होकर समस्त पक्षी उसकी यशोगाथा कह रहे हों। उस समय अरुणिमा से भरा हुआ प्रात:काल प्रकाश की किरणों से बुने हुए उषा के अंचल की भाँति प्रतीत हो रहा था। प्रात:कालीन मधुर वायु पुष्प पराग वितरित करने के लिए क्षिप्रगति से प्रवाहित होता हुआ सबको आन्दोलित कर रहा था। पूर्व दिशा के उस सुन्दर

चित्रपट पर चित्रित नवीन चित्र के रूप में एक सुन्दरी-सी प्रकट होती हुई प्रतीत हो रही थी। वह नेत्रों को आनंद प्रदान करने वाली साकार मूर्त्ति के रूप में प्रतिभासित हो रही थी तथा सुविकसित कमल के फूलों से गुँथी हुई माला के समान दृष्टिगोचर हो रही थी। उसका अलौकिक मुसकान से भरा हुआ मुख-मण्डल परम शोभित हो रहा था, जिससे समूचे जगत् में सुमधुर अनुराग की वृष्टि हो रही थी। जिस प्रकार प्रातः होने पर उसके प्रकाश में पृथ्वी का घोर अंधकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार उस सुन्दरी के प्रकट होते ही जीवन में छाई हुई अनासक्ति नष्ट हो गई।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने प्रातःकालीन सुषमा तथा इडा के अनुपम सौन्दर्य का चित्रांकन किया है। यहाँ इड़ा तथा मनु के प्रथम मिलन की ओर कवि ने संकेत किया है। इडा 'प्राची का मधुर राग' लेकर प्रकट हुई है। यहाँ कवि का सूक्ष्म निरीक्षण भी दर्शनीय है। एक विद्वान् समीक्षक ने प्रस्तुत छन्द की समीक्षा करते हुए एक स्थान पर लिखा है, "कवि ने सूर्य को कमल तथा उसके आलोक और किरण को क्रमशः प्राण और परिमल कहकर एक अभूतपूर्व कल्पना की है। साथ ही, सर्वत्र फैले हुए सुनहरी आलोक को उषा का अंचल कहकर कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षणता का भी सुन्दर परिचय दिया है। इसी तरह इड़ा के सौन्दर्य का वर्णन भी अत्यन्त सूक्ष्म एवं व्यंजना प्रधान है। कवि ने 'नयन महोत्सव की प्रतीक', 'अम्लान नलिन की नवमाला' आदि कहकर इड़ा के अद्वितीय सौदर्य की ओर सुन्दर संकेत किए हैं और मांसल शरीर के सौदर्य का निरूपण न करके सांकेतिक शैली द्वारा उसके अशरीरी सौन्दर्य की झांकी दिखाई है। छायावादी कवियों की यही विशेषता है कि वे रीतिकाल की भाँति स्थूल सौन्दर्य का वर्णन न करके अशरीरी सौन्दर्य का निरूपण किया करते हैं।"

(२) लाक्षणिकता का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

(३) यहाँ बिम्ब-योजना विशेष रूप से ध्यातव्य है—यहाँ कमल, परिमल, पराग और कलरव शब्दों का प्रयोग करके प्रातःकाल के सूर्योदय का तथा नवल चित्र, नलिन माला के सुन्दर शब्दों का प्रयोग करके लावण्यमयी इड़ा का अनुपम चित्रण किया गया है।

(४) **अलंकार**—(i) रूपक—'तम-विराग'।

(ii) निरंग रूपक—'नयन महोत्सव की प्रतीक', 'अम्लान नलिन की नवमाला'।

(iii) फलोत्प्रेक्षा—'जिसके परिमल...उठे जाग'।

(iv) विशेषण विपर्यय—'श्यामल कलरव'।

(v) रूपकातिशयोक्ति—'कमल', 'परिमल' तथा 'पराग'।

बिखरी अलकें ज्यों ... ... गति भरी ताल।

शब्दार्थ—अलकें=केश। तर्क जाल=तर्क का समूह। शशि खण्ड=चंद्र का भाग। दृग=नेत्र। भाल=ललाट, मस्तक। पद्म पलाश=कमल के पत्ते। चषक=प्याला। अनुराग=प्रेम। मधुप=भ्रमर। आनन=मुख। मुकुल=अर्द्ध विकसित पुष्प। अवलम्ब=सहारा। त्रिबली=नाभि से ऊपर दिखलाई देने वाली तीन रेखाएँ। त्रिगुण=सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। आलोक वसन=श्वेत वस्त्र। सार=तत्त्व। अराल=तिरछा।

भावार्थ—उस अनुपम लावण्यमयी इड़ा के घुघराले केश तर्कों के समूह के समान विखरे हुए थे। उसके केशों को जो भी देखते, उलझकर इस प्रकार रह जाते, जिस प्रकार किसी विद्वान के द्वारा दिए गए तर्कों के जाल में लोग उलझ कर रह जाते है। इडा का मस्तक परमोज्ज्वल एवं भास्वरित था, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों समूचे विश्व के मुकुट के समान समधिक शोभायमान चन्द्र खण्ड हो। उसके दोनों नेत्र कमल पत्रों से निर्मित मधु के पात्रो के समान दिखलाई दे रहे थे, जिस प्रकार मधु-पात्रों से मदिरा छलक रही हो। उसका वक्त्रमंडल अर्द्ध विकसित कमल सदृश दृष्टिगोचर हो रहा था तथा उसके मुख से उच्चरित ध्वनि भ्रमरों की मधुर गुंजार के समान कर्णगोचर हो रही थी। दूसरे शब्दों में, उसके मुखमण्डल का सौन्दर्य अधखिले कमल के समान एवं ध्वनि उस कमल पर विशेष रूप से आकृष्ट होकर मण्डराने वाले भौरों की गुजार के रूप मे व्यक्त हो रही थी। इड़ा का समुन्नत वक्षस्थल ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों उसने अपने हृदय में अखिल विश्व की भौतिक एवं पारमार्थिक अनन्त ज्ञान-राशि को पुंजीभूत कर समाविष्ट कर लिया हो। इड़ा के एक हाथ में कर्म-कलश विद्यमान था, जिसमें समूची धरती पर निवास करने वाले प्राणिमात्र के जीवन में प्राप्त होने वाली अतिशय आनन्दमयी अनुभूतियों

का सार एकत्रित कर रखा हो और वह उस कर्म-कलश द्वारा समस्त प्राणियों को आनन्द प्रदान करने की प्रेरणा प्रदान कर रही हो। इड़ा का दूसरा हाथ विचार रूपी आकाश को निर्भयतापूर्वक आश्रय प्रदान कर रहा था। तात्पर्य यह है कि इड़ा का दूसरा हाथ इस रूप में प्रतीत हो रहा था मानों वह गूढतम विचारों को निर्भयतापूर्वक क्रियान्वित रूप प्रदान करने में पूर्ण सक्षम हो। इड़ा की नाभि के ऊपर स्थित त्रिवलियाँ अर्थात् तीन रेखाएँ ऐसी प्रतीत हो रही थीं मानों वे रेखाएँ तीनों गुणों—सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—की तरंगों के रूप मे हों। उसने दिव्य आलोक के समान श्वेत एवं शुभ्र वस्त्र को तिरछे रूप में शरीर पर धारण कर रखा था। विचारों की गति के अनुरूप बढते हुए इड़ा के चरण ऐसे प्रतीत हो रहे थे जिस प्रकार ताल के अनुरूप किसी नर्तक के चरण उठ पड़ते हैं। इसीलिए इड़ा के चरणों में ताल के अनुरूप गति भरी हुई थी।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने कर्म तथा विचार की अधिष्ठात्री इड़ा का एक बुद्धिवादिनी के रूप मे चित्रण किया है।

(२) बिम्ब-योजना द्रष्टव्य है।
(३) 'आलोक वसन' में लाक्षणिकता का प्रयोग द्रष्टव्य है।
(४) इड़ा का नखशिख-वर्णन नवीन पद्धति के आधार पर हुआ है।
(५) अलंकार—(i) रूपक—'कर्मकलश' तथा 'विचारों के नभ'।
(ii) उपमा—'ज्यों तर्कजाल', 'विश्व मुकुट-सा', 'शशि-खण्ड सदृश' तथा 'चषक से दृग'।

नीरव थी प्राणों की ... ... नाचतीं बार-बार।

शब्दार्थ—प्राणों की पुकार=आन्तरिक पुकार, हृदय का आन्दोलन। जीवन-सर=जीवन रूपी तालाब। निस्तरंग=तरंगहीन, विचारहीन। नीहार=कुहरा, निराशा। निस्तब्ध=शान्त, नीरव। बयार=वायु, पवन। इच्छा=कामना। मुकुलित कंज=अर्द्ध विकसित कमल। मधु बूदें=पराग, मकरन्द, मधुर भाव। हेमवती छाया=स्वर्णिम आभा। तन्द्रा=आलस्य। तिरोहित=लीन हो जाना, छिप जाना। पुलक=रोमांच। वीथियाँ= लहरें।

भावार्थ—उस परम सुन्दरी इड़ा के अवलोकन से मनु के हृदय का उद्वेलन

शान्त हो गया। उस समय मनु के अन्तस् में वैचारिक उथल-पुथल समाप्त हो गई थी और वह अपने को निष्क्रिय-सा अनुभव करने लगे। जिस प्रकार लहरों की उथल-पुथल न होने पर सरोवर क्रियाहीन दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार उनका जीवन तरंगहीन सरोवर के समान विचारशून्य प्रतीत हो रहा था। मनु के जीवन को निराशा ने इस प्रकार आवृत्त कर लिया था, जिस प्रकार सरोवर को शीतकाल में कुहरा आवृत्त कर लेता है। मनु के हृदय में उद्भूत होने वाली अनेक इच्छाएँ-अभिलाषाएँ चंचलता को त्यागकर इस प्रकार शान्त हो गई थीं तथा आलस्यजन्य निद्रा में इस प्रकार सुप्त हो गई थी, जिस प्रकार सरोवर के समीपवर्ती स्थानों में वह रही वायु चंचलता का परित्याग करती हुई-सी एवं आलस्य-युक्त सोती-सी दिखलाई देती है। इड़ा के दर्शन के फल-स्वरूप सुमधुर भावनाओं में निमग्न मनु का हृदय मधुर भावनाओं को स्वयं पीता हुआ-सा ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों सरोवर में अधखिला कमल अपने मकरन्द को स्वय ही पी रहा हो। सर्वत्र मौन व्याप्त था। इड़ा के अनुपम सौंदर्य की छवि मनु भी परम शान्त होकर निरखते रहे। अनायास ही मनु कहने लगे—यह कौन है जो दिव्य आलोक से परिपूर्ण एवं स्वर्णिम प्रभा से देदीप्यमान मुसकान बिखेरती हुई चेतनता की साकार मूर्ति के रूप में उपस्थित हुई है? इड़ा के अवलोकन से मनु को अपने अन्तस् में चेतना दिव्य प्रकाश के रूप में अनुभूत-सी होने लगी तथा आलस्य (अकर्मण्यता) जन्य सपने उन्हें विलीन होते-से दिखाई दिये। मनु को इस समय श्रद्धा के साथ व्यतीत हुए सुखद दिन अपने स्मृति-पटल पर अंकित होते हुए से दिखलाई दिए—श्रद्धा के स्पर्श एवं प्यार से पुलकित होने वाले मधुर दिनो की सुखद अनुभूति मनु को इस समय होने लगी। मनु के अकर्मण्य हृदय में उनके अतीत के जीवन की सुखद एवं मधुर स्मृतियाँ इस प्रकार नाचने लगीं, जिस प्रकार किसी सरोवर मे से तरंगें उठ-उठकर नाचने लगती हैं।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने इडा के अलौकिक सौन्दर्य-दर्शन से—प्रभावित मनु की आन्तरिक स्थिति का चित्रण किया है। उनके हृदय में आशा और प्रेम का सचार हुआ है। वर्णन मे मनोवैज्ञानिकता का समावेश हुआ है।

(२) यहां 'निस्तरंग सरोवर' के बिम्ब के माध्यम से मनु के व्यथित जीवन का, 'नीहार' के बिम्ब के माध्यम से निराशा का, 'बयार' के बिम्ब के माध्यम से इच्छा का, 'मुकुलित कंज' के बिम्ब के माध्यम से हृदय का, 'हेमवती छाया' के

विम्ब के माध्यम से इड़ा के अनुपम एवं दिव्य सौन्दर्य का, 'उजली माया' के विम्ब के माध्यम से दिव्य चेतना का एवं 'वीचियों' के विम्ब के माध्यम से हृदय में कौंधती हुई स्मृतियों का सफल चित्रांकन किया गया है।

(३) 'वह स्पर्श दुलार पुलक से भर वीते युग को उठता पुकार'—यह पंक्ति विशेषतः द्रष्टव्य है। इस पंक्ति के द्वारा प्रसाद ने श्रद्धा की सन्निधि में प्राप्त मनु के सुखद गार्हस्थ्य जीवन की ओर संकेत किया है।

(४) अलंकार—(i) रूपक—'जीवन-सर', 'मन मुकुलित कंज'।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—नीहार, मधु बूंदें, बयार और वीचियाँ।
(iii) सांगरूपक—सम्पूर्ण पद में।

प्रतिभा प्रसन्न मुख ... ... का द्वार खोल।

शब्दार्थ—प्रतिभा=दिव्य बुद्धि कौशल। प्रसन्न=भास्वरित। सहज=स्वाभाविक ढंग से। अमोल=दिव्य, अनुपम। पथिक=राहगीर। भौतिक हलचल=बाढ़, भूचाल आदि हलचल। जीवन का मोल=जीवन का मूल्य अर्थात् लक्ष्य। द्वार खोल=रहस्य या गुप्त भेद को प्रकट करो।

भावार्थ—मनु द्वारा प्रश्न किए जाने पर इडा ने दिव्य एवं असाधारण प्रतिभा से भास्वरित मुख स्वाभाविक ढंग से खोला और कहा—मेरा नाम इड़ा है, किन्तु तुम कौन हो जो इस प्रदेश में भ्रमण कर रहे हो ? उस समय इड़ा की नुकीली नासिका के पतले तथा सुकोमल नासापुट फड़क रहे थे और उसके अधरों पर दिव्य एवं अनुपम मुसकान विखर रही थी। इड़ा के प्रश्न का उत्तर देते हुए मनु कहने लगे—'हे बाले! सुनो, मेरा नाम मनु है। मैं अनेक प्रकार के दुःखों को सहन करने वाला राहगीर हूँ।' इस पर इड़ा ने कहा—'मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। तुम उजड़े हुए इस सारस्वत प्रदेश को देख रहे हो। आकस्मिक जल-प्लावन के कारण मेरा यह देश अस्तव्यस्त हो गया और अब भग्नावशेष ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं। इस देश में मैं अब तक इसी आशा मे पडी हूँ कि सम्भवतः मेरे दुर्भाग्य के दिन सौभाग्य के दिनों में परिणत हो जावेंगे। दूसरे शब्दों में, मेरा यह उजड़ा, धन-जन-शून्य, सारस्वत प्रदेश फिर नए सिरे से पूर्व जैसा धन-वैभव से समृद्ध हो सके।' यह सुनकर मनु ने कहा—'हे देवि! मै तो यह चाहता हूँ कि मेरे हृदय में व्याप्त जो भय की

शंका है, अतएव मुझे जीवन के स्वाभाविक मूल्य के विषय के गोपनीय रहस्य को प्रकट कर दो ताकि मैं आगामी क्षणों में प्राप्त होने वाले कष्टों-शंकाओं से अवगत होकर (सचेत होकर) उन पर विजय प्राप्त कर सकूं।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने 'प्रतिभा प्रसन्न-मुख' तथा फरकते 'नासिका पुट' आदि पदों द्वारा इडा के व्यक्तित्व का, विशेष रूप से दिव्य बौद्धिक उत्कृष्टता एवं चंचल प्रकृति का सुन्दर चित्रांकन किया है।

(२) यहाँ 'पथिक' के सुन्दर बिम्ब को अंकित कर कवि प्रसाद ने मनु की यथार्थ वेदनामयी स्थिति का मनोरम चित्रण किया है।

(३) भावों की सशक्त अभिव्यंजना दर्शनीय है।

(४) 'आये दिन मेरा' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(५) इस पद की पंचम पंक्ति में पर' शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। 'पर' शब्द से संकेतित यह है कि इडा मनु का स्वागत कर रही है किन्तु उसके पास स्वागत करने के लिए धन-वैभव कुछ भी शेष नहीं रहा है। अतएव वह परम खिन्न एवं विवश है—यही कारण है कि वह अपने मन्तव्य का प्रकाशन अर्थात् उजड़े हुए सारस्वत प्रदेश के विषय में बतलाने लगती है।

इस विश्व कुहर ... ... पट है दिया डाल।

शब्दार्थ—विश्व कुहर=संसार रूपी गुफा। इन्द्रजाल=मायाजाल, जादू। नखतमाल=नक्षत्रों का समूह। भीषणतम=भयानक। महाकाल=शिव। सृष्टि=सृजन कार्य, निर्माण का कार्य। अधिपति=स्वामी। सुखनीड़=सुख-रूपी घोंसला। विषाद का चक्रवाल=शोक का घेरा (शोक समूह)। पट=परदा।

भावार्थ—मनु के अन्तःकरण में जीवन और जगत् के विषय मे नाना प्रकार के विचार उद्भूत होने लगे। मनु ने कहा कि इस विश्व के सृष्टा परमशिव ने बड़े-बड़े ग्रहों, नक्षत्रों तथा विद्युत आदि की रचना करके विश्वरूपी गुफा में सर्वत्र अपना मायाजाल अर्थात् जादू फैला दिया है। वही परमशिव प्रलयंकर अर्थात् महाकाल के रूप मे उपस्थित होकर अपने द्वारा रचे गए समस्त पदार्थों के साथ इस विश्व में इस प्रकार क्रीड़ा कर रहा है, जिस प्रकार समुद्र की ऊपर उठने वाली भयंकर लहरे क्रीड़ा करती-सी दिखलाई देती हैं।

इस प्रकार वह अपनी क्रीड़ा से विश्व का संहार कर रहा है। समुद्र की उत्ताल लहरों से समस्त जल-जीव त्रस्त हो उठे है। इसी प्रकार सृष्टि के तमाम पदार्थ विनष्ट होते से दिखलाई देने लगते हैं। क्या उस निर्मम स्रष्टा ने इस संसार की सृष्टि इसीलिए की है कि इसमें साधारण एवं दुर्बल प्राणी सदैव भयभीत ही होते रहते है—यह भला कैसी विचित्र रचना है, जिसमें विनाश ही सब कुछ है। साधारण जीवों का इस निष्ठुर रचना में कोई अस्तित्व ही नहीं है। विश्व में विद्यमान जितने भी पदार्थ हैं, क्या वे सभी विनष्ट होने के लिए बनाए गए है? यदि यह सत्य है तो बुद्धिहीन मानव इस विनाशमयी सृष्टि को रचनात्मक या सृजनात्मक कृत्य के रूप में स्वीकार क्यों करता है? इस सृष्टि का स्वामी कौन है—इसको भी भला कैसे स्वीकार किया जाए, क्योंकि यदि सृष्टि या रचयिता होता तो वह दीन-दुखियों तथा त्रस्त जनों की दर्द भरी पुकार को सुनता और उस दर्द भरी पुकार से उसका अन्तस्तल द्रवित हो उठता। स्थिति यह है कि इस संसार मे दीनों तथा त्रस्त-जनों की पुकार को सुनने वाला कोई भी नहीं है। इस संसार में तो वास्तविक दशा यह है कि सुख के नीड़ों अर्थात् आश्रय स्थानों को निरन्तर दुःख-कष्ट ही चारों ओर से घेरे रहते हैं। प्रत्येक प्राणी किसी-न-किसी प्रकार के कष्ट से दुःखी ही दिखाई देता है। यह समझ मे नहीं आता कि इस समूचे संसार पर किसने परदा डाल दिया है, जिससे संसार का वास्तविक रूप अविदित-सा ही रहता है और प्रत्येक प्राणी अनन्त दुःख की मलिन छाया में घिरा रहता है और निरूपाय होकर जीवनयापन करता रहता है।

विशेष—(१) प्रत्याभिज्ञ दर्शन के अनुसार शिव को सृजन तथा संहार दोनों का स्वामी माना गया है। यहाँ मनु को शिव का संहारक रूप ही दृष्टिगोचर हो रहा है।

(२) विशेप बुद्धिवादी हो जाने पर मानव ईश्वर के अस्तित्व के प्रति शंकालु हो उठता है। वह हर क्षेत्र में हर तथ्य को तर्क की कसौटी पर कसकर एवं जानकर तुष्ट होना चाहता है—दृश्य कार्य-व्यापारों के आधार पर ईश्वर की सत्ता को समझ लेना और विश्वास करके ज्ञान-पिपासा की तुष्टि हो जाना—उसके लिए संभव नही है। यही कारण है कि समूची सृष्टि मनु के लिए इन्द्रजाल के समान एवं दुःख से आवृत्त दिखलाई दे रही है।

(३) कामायनी पर शैव दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है। यही कारण है कि कवि ने सर्वत्र उस महाकाल, महाचिति अथवा महेश्वर को सागर की लहरों के समान इस संसार मे क्रीड़ा करते हुए अंकित किया है। उदाहरण के लिए देखिए :

(अ) कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी में सब होते अनुरक्त।

—श्रद्धा सर्ग

(आ) चांदनी सदृश खुल जाय कहीं,
अवगुण्ठन आज सँवरता-सा,
जिसमें अनन्त कल्लोल भरा,
लहरों में मस्त विचरता-सा।
अपना फेनिल फन पटक रहा,
मणियों का जाल लुटाता-सा,
उन्निद्र दिखाई देता हो,
उन्मत्त हुआ कुछ गाता-सा।

—काम सर्ग

(इ) चिर मिलित प्रकृति से पुलकित,
वह चेतन पुरुष-पुरातन।
निज शक्ति तरंगायित था,
आनन्द अम्बुनिधि शोभन॥

—आनन्द सर्ग

(४) यहाँ 'इन्द्रजाल', भीषण समुद्र, नीडों और पट के बिम्ब के माध्यम से क्रमश: सांसारिक आडम्बरों, महाकाल, गृह और व्याप्त दु:ख का सशक्त चित्रण किया गया है।

(५) अलंकार—(i) रूपक—'इस विश्व-कुहर में', 'विषाद का चक्रवाल'।
(ii) परिकरांकुर—महाकाल।
(iii) उपमा—'तरंग-सा'।

शनि का सुदूर ... ... कोई सके रोक।

शब्दार्थ—शनि=सौर-मण्डल का सातवां ग्रह; यह अनिष्टकारी ग्रह माना जाता है। सुदूर=बहुत दूर। नील लोक=नीले रंग वाला संसार, शोक का संसार (लाक्षणिक अर्थ)। गगन शोक=नभ मण्डल में व्याप्त शोक। प्रकाश का महा ओक=प्रकाश का एक विशाल समूह; सुखों से परिपूर्ण संसार (लाक्षणिक अर्थ)। नियति जाल=संसार की नियमन-कर्त्री शक्ति द्वारा रचा गया आडम्बर-प्रपंच। किरन=किरण। मुक्तिदान=छुटकारा दिलाना। उपाय=प्रयास; यत्न। गन्तव्य मार्ग=पहुँचने योग्य मार्ग, लक्ष्य। मत कर पसार=हाथ मत फैलाओ अर्थात् याचना मत करो। निज पैरों चल =अपने पैरों पर चलो, स्वावलम्बी बनो। झोंक=लगन।

भावार्थ—विचारों में तन्मय हुए मनु कहने लगे कि इस जगती-तल से बहुत दूर स्थित होने पर भी शनि नामक अशुभ ग्रह अपना अधिकार तथा अनिष्टकारी प्रभाव जगती-तल पर फैलाए हुए है। यही कारण है कि इस ग्रह-लोक की छाया के रूप में यह सुविस्तृत फैला नीला आकाश ऊपर-नीचे सर्वत्र शोक से ही व्याप्त है। ऐसा सुना जाता है कि इस अंधकारमय एवं शोकपूरित शनिलोक के परे एक दिव्य एव अनुपम प्रकाश-लोक अर्थात् सुखद लोक है। उसका स्वामी प्रकाशमय सुखद लोक की एक किरण क्या मेरे जीवन को स्वतन्त्रता प्रदान करने मे सहायक सिद्ध हो सकती है? क्या वह जगन्नियता जगदीश मुझे ऐसा उपाय बतलाने की कृपा कर सकता है कि मैं इस संसार की नियामिका शक्ति के जाल अर्थात् सांसारिक वाह्याडम्बरों से मुक्ति प्राप्त कर सकूँ? दूसरे शब्दों में, वह परमेश्वर इन सांसारिक प्रपंचों से मुक्ति प्राप्त करने का उपाय मुझे कृपा करके बतला दे। उस दिव्य प्रकाश-पुंज की एक किरण ही मेरे दुर्भाग्यपूर्ण जीवन को सौभाग्यपूर्ण जीवन में परिवर्तित करने में सक्षम है।

मनु के इन वचनों को सुनकर इड़ा ने कहा कि वह जगत्-स्रष्टा कोई भी क्यों न हो—वह प्रकाश एवं सुखदायी क्यों न हो, किन्तु वह तुम्हारी सहायता क्यों करे—उसे तुम्हारी सहायता या तुम पर अनुग्रह करने की क्या आवश्यकता है? कहने का भाव यह है कि वह परमेश्वर तुम्हारी सहायता नही कर सकता। इसलिए मनुष्य को पागल बनकर उसपर आश्रित नहीं होना चाहिए। यदि मनुष्य को अपना जीवन समुन्नत बनाना है तो उसके लिए अभीष्ट यही है कि

वह किसी पर भी आश्रित न रहकर, अपनी कमजोरियों और अपनी हर संभव शक्ति—दोनों का सम्बल ग्रहण करते हुए अदम्य साहस के साथ अपने लक्ष्यीभूत मार्ग पर अग्रसर होवे। परोपजीविता मानव के लिए यह एक अभिशाप है। जिस मानव में जीवन-मार्ग पर आगे बढ़ने और मार्ग प्रशस्त करने का अपार एव अदम्य साहस-उत्साह विद्यमान रहता है—एक प्रकार की जिस मानव में धुन लग जाती है, वह किसी के आगे हाथ नहीं फैलाता, वह किसी से कुछ भी नही माँगता। अतः हे मनु! तुम किसी से कुछ भी मत मांगो—दूसरों को याचना भरी दृष्टि से न देखो। सदा स्वावलम्बी बनो—अपने पैरों पर भरोसा करके मार्ग पर अग्रसर रहो। जिस मानव मे आगे बढ़ने की ललक होती है, उसे भला कोई कभी रोक सकता है? कहने का भाव यह है कि उसका मार्ग में अग्रसर होना दुर्निवार है।

विशेष—(१) यहाँ शनिलोक का वर्णन करके कवि प्रसाद ने जगती-तल पर व्याप्त शोक की ओर इंगित किया है। सर्वत्र उस अमंगल सूचक ग्रह की शोकमयी छाया को दर्शाया गया है। जगदीश्वर के स्वरूप का निर्देश 'प्रकाश का महाओक' द्वारा किया गया है। 'बुद्धिबल जीवन की समुन्नति का आधार है'—इस संदर्भ मे प्रेरिका इड़ा द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।

(२) **अलंकार**—(i) उपमा—'छाया-सा'।
(ii) निरंग रूपक—'महाओक'।
(iii) रूपक—'गगन शोक'।
(iv) रूपकातिशयोक्ति—'नील लोक'।
(v) अर्थान्तरन्यास—अंतिम दो पंक्तियों मे।

हाँ, तुम ही हो ... ... लोक में रहे छाय।

शब्दार्थ—सहाय=सहायक। शरण जाय=सुरक्षा प्राप्त करे। संस्कार=परम्परा प्राप्त प्रभाव। रमणीय=सुन्दर। शोधक=अन्वेषक, ज्ञाता। विहीन=रहित। कर्मलीन=कर्मशील। पटल=परदा, गुप्त भेद। परिकर कसकर=कमर पर फेंटा बाँधकर अर्थात् कमर कसकर। नियमन=नियन्त्रण। शासन=अधिकार, हुकूमत। क्षमता=सामर्थ्य। निर्णायक=निर्णय करने वाला।

विषमता=असमानता। समता=समानता। चैतन्य=चेतनाशील। अखिल=सम्पूर्ण, समूचा। अखिल लोक=सम्पूर्ण संसार।

भावार्थ—इड़ा ने मनु को समझाते हुए कहा कि तुम सहायता प्राप्त करने के लिए किसी दूसरे को खोजो - यह भी व्यर्थ है। तुम्हें तो अपनी सहायता के लिए अपने को ही तैयार करना होगा। दूसरे को क्या आवश्यकता है कि वह तुम्हारी सहायता करने के लिए अपने हाथ बढ़ाये। मानव को चाहिए कि वह अपनी बुद्धि से सोचे-समझे और तदनुकूल कार्य करे। उसकी बुद्धि ही सबसे बड़ी सहायिका है, उसे बुद्धि का कहना स्वीकार करना चाहिए। मानव के अन्दर भले-बुरे जो विचार और संस्कार है, उनमें से कौन-से विचार या संस्कार व्यवहार मे लाने चाहिएँ—उनके अनुकूल कार्यों के करने का क्या उपाय है—बुद्धि के अतिरिक्त और दूसरा कौन है, जो एक निर्णय कर सके। यह प्रकृति परम चित्ताकर्षक है तथा इसमें ऐश्वर्य तथा उपभोग की नाना प्रकार की सामग्री भरी पड़ी है, किन्तु इसका खोजने वाला तथा उपभोक्ता यहाँ कोई नहीं दृष्टि-गोचर होता। प्रकृति पर पड़े हुए आवरण को तुम कर्मशील बनकर तथा कमर कसकर उद्यत होकर हटा सकने अर्थात् भेद खोलने में सक्षम हो सकते हो। समस्त पदार्थों पर नियंत्रण करते हुए विश्व पर शासन करो। सदैव अपनी योग्यता मे वृद्धि के लिए तुम्हें प्रयत्नशील रहना चाहिए और अग्रसर होना चाहिए। यदि जीवन में समानता या असमानता दिखलाई दे तो तुम्हें अपनी बुद्धि तथा सूझ से काम लेना चाहिए। वैज्ञानिक उपायों द्वारा तुम्हे जड़ पदार्थों मे भी चेतनता का प्रसार करना चाहिए। इस प्रकार तुम्हारी कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त हो जावेगी।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ पर आधुनिक-वैज्ञानिक युग की ओर संकेत किया है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा मानव प्रकृति के अनेक रहस्यों का उद्घाटन करने में समर्थ हो सकता है। इस प्रकृति में अनेक प्रकार की आनन्दोपभोग करने के योग्य सामग्री विद्यमान है, किन्तु अन्वेषक तथा ज्ञाता के अभाव में सब कुछ होते हुए भी व्यर्थ ही है। मानव प्रकृति-क्षेत्र में अपने शासन का शंखनाद कर सकता है।

(२) यहाँ कवि ने 'पटल खोलने' के सजीव बिम्ब द्वारा प्रकृति के रहस्योद्घाटन का मर्मस्पर्शी निरूपण किया है।

(३) **अलंकार**—विरोधाभास।

हँस पड़ा गगन ... ...थी शकल शोक।

शब्दार्थ—शून्य लोक=सुनसान संसार। क्रन्दन करना=चीख़ पुकार करना, कलपना। विषम=भयावना। प्राची नभ=पूर्व दिशा का आकाश-भाग। कौतुक=विस्मय। मलयाचल की बाला=दक्षिण की वायु। प्रकृति कपोलों की लालिमा=उषा की रक्तिम आभा। तारादल=तारों का समूह। गिरना=अस्त होना। उन्निद्र=जाग्रत, विकसित। मधुप=भ्रमर। नोक-झोंक=छेड़छाड़, क्रीड़ा। विस्मृत=भूले हुए।

भावार्थ—उस समय इड़ा के प्रेरणादायक वचनों को सुनकर मनु अतिशय रूप से प्रभावित हो गए। मनु सारस्वत नगर की शासन-व्यवस्था का दायित्व ग्रहण करने के लिए तत्पर हो गए। यहाँ कविवर प्रसाद कहते हैं कि उस समय नीरव आकाश अपने प्रातःकालीन दिव्य एवं अनुपम प्रकाश के रूप में विहँसता-सा दृष्टिगोचर होने लगा। अभी तक आकाश मे शोक, विषाद तथा मरण के रूप में चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार फैला हुआ दिखलाई दे रहा था और न जाने इस आकाश के नीचे कितने जीवन बसे और कितने बसकर उजड़ गए। न जाने इस आकाश के नीचे कितने हृदयों का मधुर मिलन अन्धकार मे वियोग में परिणत होकर चकवा-चकवी के समान करुण चीख-पुकार एव आर्त्तनाद कर रहा था। आज की प्रातः वेला में मनु ने अपने कन्धों पर सारस्वत नगर की व्यवस्था का कठोर दायित्व ग्रहण कर लिया। आज सृष्टि के कठोर दायित्व को वहन कर मनु को अग्रसर होते हुए देखकर आकाश के पूर्व दिग् भाग में रक्तिम आभा को विकीर्ण करती हुई उषा हँस पड़ी। इस विस्मयकारी दृश्य को देखकर दक्षिण पवन एक बाला के रूप में चंचल होकर अपनी मन्द गति से प्रवाहित होने लगी। यहाँ तक कि प्रकृति अर्थात् उषा के कपोलों पर छाई हुई लज्जाजन्य लालिमा के अवलोकन मात्र से विमुग्ध होकर—प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य के मतवाले तारे अपना सर्वस्व भेंट करने लगे अर्थात् आकाश मे अस्त होने लगे। उस समय वन में सुविकसित कमलों तथा उन पर मंडराते हुए भ्रमरों में परस्पर आनन्ददायिनी क्रीड़ाएँ हो रही थीं। प्रातःकाल के ऐसे अनुपम एवं चित्ताकर्षक वातावरण में समूची जगती अपने विषाद को पूर्णरूप से भुला बैठी थी।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने प्रातःकाल के स्वर्गिक एवं अनुपम उल्लासमय वातावरण का सृजन कर मनु की उल्लासमयी हार्दिक स्थिति का सम्यक् निरूपण किया है।

(२) बिम्ब-योजना चित्ताकर्षक बन पड़ी है।

(३) यहाँ प्रकृति के सचेतन रूप की आनन्दमयी झलक प्रस्तुत की गई है।

(४) आकाश तथा उषा का विहँसना, मलय समीर का बाला के रूप में प्रस्तुतीकरण, आसक्त तारागण का गिरना एवं कमलों-भौरों की छेड़छाड़ में लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग विशेष द्रष्टव्य है।

(५) **अलंकार**—(i) रूपक—'वन विरह-शोक'।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—'मलयाचल की बाला' तथा 'प्रकृति-कपोलों में लाली'।
(iii) मानवीकरण—हँस पड़ा गगन, हँस पड़ी उषा, चल पड़ी मलयाचल की बाला, गिरता तारादल मतवाला, होती थी मधुपों की नोंक-झोंक।
(iv) हेतूत्प्रेक्षा—'चल पड़ी···की बाला'।
(v) विशेषण विपर्यय—कितने हृदयों···क्रंदन करते।

जीवन निशीथ का ··· ··· ··· हो खुला द्वार।

शब्दार्थ—निशीथ=रात्रि। आवृत्तकर=ढककर। निहार=अवलोकन कर। अवलम्ब=आश्रय, सहारा। बुद्धिवाद=बुद्धि विषयक सिद्धान्त। विकल्प=सन्देह। संकल्प=दृढ विचार, सुनिश्चय। हो खुला द्वार=सरलता से उपलब्ध हो सके।

भावार्थ—आनन्द का अनुभव करते हुए मनु ने इड़ा से कहा कि हे देवि! आज तुम मेरे जीवन में उदारता की साकार मूर्ति बनकर उषा के समान अवतरित हुई हो। जिस प्रकार रात्रि का छाया हुआ घना अन्धकार उषा के दर्शन करते ही क्षितिज के पीछे मुंह छिपाकर भागने लगता है, उसी प्रकार तुम्हारे दर्शन मात्र से ही मेरे जीवन में छाई हुई निराशा अपना मुँह छिपाये भाग खड़ी हुई है, अर्थात् न जाने निराशा कहाँ विलीन हो गई है। मेरे हृदय में सोये हुए (निष्क्रिय) मनोभाव उषा काल में जाग्रत पक्षियों के मधुर कलरव की भाँति पुनः जाग्रत हो उठे है और उन्होंने मेरे हृदय में सक्रियता उत्पन्न

कर दी है। आज मेरे अन्तःकरण में प्रसन्नता एवं उल्लास की विशेष अनुभूति उसी प्रकार से हो रही है, जिस प्रकार उषा काल में आलोक की किरणें तरंगों के रूप में आकाश मे हिलोरें मारती-सी दिखलाई देती हैं। आज मैंने सबका सहारा छोड़कर जीवन-क्षेत्र मे बुद्धिवाद को अपनाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। आज तुम्हारे बुद्धि-प्रधान्य युक्त वचनों से प्रेरित होकर इस प्रदेश की व्यवस्था का दायित्व ग्रहण कर अग्रसर होते हुए मेरे अन्तस् में ऐसी अनुभूति हो रही है, जैसे मुझे तुम प्रत्यक्ष बुद्धि के रूप में ही मिल गई हो। अब मेरी अभिलाषा यही है कि मेरे जीवन में अनिश्चित विचारों एवं सन्देहों के लिए तनिक भी स्थान न मिल सके अर्थात् मेरे अनिश्चित विचार सुनिश्चित विचारों में परिणत हो जावें। मेरे जीवन में एक प्रकार की दृढ़ता उत्पन्न हो जावे। मेरे हृदय में कर्म के प्रति विशेष निष्ठा हो जावे ताकि मैं अपने जीवन में सुखों के साधनों को सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकूँ।

विशेष—(१) यहाँ मनु की हर्षमयी स्थिति का सुन्दर चित्रांकन किया गया है।

(२) यहाँ इडा को बुद्धि के रूप में मनु के शब्दों में अभिहित कराया गया है।

(३) इड़ा का यहाँ जो रूप वर्णित किया गया है, ऋग्वेद में भी वैसा ही उपलब्ध होता है—'इड़ा यूथस्य माता' तथा 'इड़ामकृण्वन् मनुषस्य शासनीम्' आदि।

(४) यहाँ बिम्ब-योजना विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

(५) अलंकार—(i) रूपक—'जीवन निशीथ' तथा 'मनोभाव विहग'।
(ii) मानवीकरण—प्रथम दो पंक्तियों में।
(iii) रूपकातिशयोक्ति—अन्धकार।
(iv) उपमा—'उषा सी', 'किरनों की सी'।

१३. दर्शन सर्ग

कथानक—मनु के विना श्रद्धा तथा कुमार को सारस्वत नगर में रहते हुए हुत समय वीत गया। एक दिन श्रद्धा अमावस्या की संध्या-वेला मे राजभवन से बाहर निकल पडी। सरस्वती नदी के तट पर वह जा पहुँची। सरस्वती के तट पर वैठी हुई श्रद्धा अनेक प्रकार की उलझनों मे उलझी हुई मन मे सोच-विचार कर रही थी। वह मन मे सोचने लगी कि न जाने मनु क्यों छोडकर इस प्रकार अकेले चले गए, कहाँ चले गए और अव किस प्रकार से मनु के विषय मे ज्ञात किया जाए — इसी प्रकार के विचार उसके मस्तिष्क में कौंध रहे थे। अनायास ही उसका प्रिय पुत्र कुमार अपनी माँ को खोजते-खोजते उसके पास आ पहुँचा और कहने लगा कि हे माँ! तुझे यहाँ आए हुए कितना समय वीत गया, संध्या वीत गई और चारों ओर घोर गहन अंधकार घिर गया है और तुम निर्जन वन मे इस प्रकार एकाकी होकर न जाने क्या-क्या सोच-विचार कर रही हो, न जाने यहाँ इस निर्जन तट-प्रान्त तथा निविड़ अंधकार मे तुझे कौन-सा ऐसा आकर्षण दिखलाई दे रहा है। वस, अव माँ! हम चले। हमारे घर में से यज्ञ का सुगंधित धुँआ ऊपर की ओर उठ रहा है। कुमार के ये वचन सुनकर श्रद्धा के विचारो का तारतम्य टूट-सा गया। पुत्र के स्नेह से सिक्त होकर श्रद्धा ने उसका मुख चूम लिया। कुमार पूछने लगा कि माता! तू अहर्निश इस प्रकार चिन्ताओं में क्यों उलझी रहती है? मेरे होते हुए तेरी इस विकलता का क्या कारण है? जव मैं तेरे पास हूँ तो तुझे इतना उदास नहीं रहना चाहिए। अपनी खिन्नता एवं अपने कष्टों के विषय मे तनिक मुझे भी वतलाओ। पुत्र से श्रद्धा कहने लगी—चहारदीवारी मे घिरा हुआ यह घर मेरा वास्तविक विश्व नहीं है, जिसके विषय मे तू कह रहा है। मेरा तो वास्तविक घर विशाल है। मेरे घर की छत तो नीला उन्मुक्त आकाश है, जो मेघों की विचरण-स्थली है, जहाँ तारों की दीप्ति है, जहाँ समीर भी स्वतंत्र गति से प्रवाहित होता रहता है। मेरे घर का दरवाजा समस्त लोगो के लिए समान-भाव से खुला हुआ है—किसी प्रकार का अवरोध नही है। इस घर मे शीतलता, सुख तथा शान्ति विद्यमान है। समस्त प्रकार के भावो का यहाँ पर प्रस्फुटन होता है। सर्वत्र उल्लास-ही-उल्लास व्याप्त है। यह विस्तृत ससार ही मेरा वास्तविक घर है। यह एक नीड के समान है। जिस प्रकार पक्षीवृन्द हर्षित होकर नीड़ मे वास करते है, उसी प्रकार सभी वहाँ आनंदित होकर सुख एवं परम शांति की अनुभूति करते है।

श्रद्धा कुमार के समक्ष अपने वास्तविक घर के विषय में बात कर रही थी कि उसने ये शब्द अपने पृष्ठ भाग से सुने—'हे माता, तुम जब इतनी उदार-मना हो, तो मुझसे इस प्रकार की विरक्ति का क्या कारण है ? मुझ भी वैसा ही स्नेह तुम क्यों नही प्रकट करती हो !' श्रद्धा ने पीछे मुड़कर देखा कि सारस्वत नगर की रानी मलिनता धारण किए इडा खड़ी थी। ये शब्द इडा के ही थे। श्रद्धा ने इन वचनों को सुनकर उसे उत्तर दिया कि मैं भला तुम्हारे प्रति विराग की भावना क्यो रखूँगी। तुम तो प्रत्येक प्राणी को शरण देने वाली हो। मुझसे बिछुड़े हुए मनु को तुमने आश्रय प्रदान किया। तुम्हारे इस प्रकार के उपकार का बदला मैं कैसे चुका सकती हूँ। मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, जिसे मैं तुम्हें प्रदान कर सकूँ। तुम्हारे आश्रय मे रहकर मेरे पति मनु ने जो अपराध किया है, उनकी पत्नी होने के नाते मैं उनकी ओर से तुमसे क्षमा याचना करती हूँ। तुम्हारा हृदय माया, ममता एवं दया से परिपूर्ण है - मुझे आशा है कि तुम अवश्य ही उन्हे क्षमा कर दोगी। इडा ने कहा कि संसार मे सभी लोग सुख-दुःख की अनुभूति करते हैं—अनेक प्रकार के कष्ट सहते रहते हैं—अपराध तो सभी से जाने-अनजाने में होते रहते हैं; हाँ, इतना अवश्य है कि लोग दूसरो के समान दु:खो की चर्चा न कर सुखो की ही चर्चा करते रहते है। इस प्रकार वे अपने अपराधों को छिपा लेते है। जिन्हे विशेष अधिकार प्राप्त हो जाते है, वे आवेश मे आकर अधिकारों का दुरुपयोग कर बैठते हैं—सीमा का अतिक्रमण करने में उन्हे किसी प्रकार का संकोच नहीं होता। उससे होने वाले भीषण परिणाम की ओर उनकी विवेक-बुद्धि पहुँच ही नहीं पाती। उनका सच्चा हितैषी भी उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए प्रयत्नस्वरूप कुछ समझाये-बुझाये, तो वे उसे शत्रु समझ बैठते है। मेरे सारस्वत नगर मे इस समय ऐसी ही दशा है। कलह-द्वेष की जड़े फैल गई हैं —भेद-भाव बहुत बढ़ गया है। राज्य में सर्वत्र अव्यवस्था फैल गई है। मैंने श्रम के आधार पर समाज के हित के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि के कर्मानुसार जो विभाजन किया था—वह कारगर साबित नही हुआ। वर्ग-विभाजन तो पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष एवं कलह का मूल कारण बन गया। सर्वत्र क्रान्ति की लहर-सी फैल गई है—प्रत्येक वर्ग मे अहंकार की भावना आ गई है। नियमो-ल्लंघन करना उनका स्वभाव बन गया है। वे नियमो के प्रति पूर्ण उदासीनता बरतते है। यहाँ तक कि नियमों के बनाने वाले ही नियमों को भंग करने लगे है। वास्तविक दशा यह है कि आज जो नियम बने है, कल वे भंग कर दिये जाएँगे। मेरी ख्याति जनपद कल्याणी के रूप मे थी और अब मैं ही अवनति के मूल रूप मे हो गयी हूँ। सारस्वत नगर की समूची प्रजा इस समय विनाश की ओर अग्रसर हो रही है। प्रजा की प्रवृत्ति असद् कार्यों की ओर हो गई है। मैंने मनु को शासन की व्यवस्था सौंप दी। तुम्हारे सौभाग्य का हरण करने

का मैंने प्रयास किया था। अपने किए हुए पर मैं पश्चात्ताप की अग्नि में स्वयं जल रही हूँ। यहाँ तक कि मुझ स्वयं से भी ग्लानि हो गई है। अतएव मैं तुमसे प्रार्थना करती हूं कि तुम मेरे प्रति अनुरागवती रहो और मुझे सन्मार्ग दिखलाओ, जिससे मेरा खोया हुआ साहस मुझ पुनः मिल सके।

इडा की पश्चात्ताप भरी बातें सुनकर श्रद्धा ने इड़ा से कहा कि तुम्हारे राज्य में अव्यवस्था इसीलिए है कि तुमने प्रत्येक कार्य को तर्क की कसौटी पर कसा—हृदय का संस्पर्श उसे बिल्कुल नही मिला। तुमने किसी के हृदय को नहीं जीता—मात्र बुद्धि तर्क के सहारे समस्त कार्य पूर्ण नही हुआ करते। आत्मीयता का कार्य अपने में एक महान् होता है। बल-प्रयोग प्रत्येक दशा में सफल नही होता है। यही कारण है कि प्रजा में आत्मीयता न रही और फलतः वे एक-दूसरे के विरोधी बन गए। तुम्हारे द्वारा श्रम के आधार पर किया गया विभाजन भी प्रजा के लिए कल्याणकारी सिद्ध नहीं हो सका। तुम्हारे अन्दर बुद्धि एवं तर्क का प्राधान्य निःसन्देह रूप मे है, किन्तु कोरे तर्क एवं बुद्धि से काम नही चलता। इसके साथ हृदय-पक्ष भी परम आवश्यक है। तुमने नारी-सुलभ सुकुमारता एवं उदारता को ताक पर रख दिया और तुम सुख-दु ख के मिथ्या जाल में घिर गईं। शासक एवं प्रजा दोनों के सम्बन्ध मधुर होने से ही शासन की व्यवस्था सुचारु रूप से बन सकती है। प्रजा के पृथक् होने पर शासक वर्ग का अस्तित्व कुछ नहीं रहता। यह समूचा विश्व चिन् शक्ति का रूप है। सभी उस शिव अर्थात् चित् शक्ति के अंग हैं—सभी के साथ समानता की भावना ही श्रेयस्कर होती है। सत्, चित् एवं आनन्द से परिपूर्ण भावना को हम जीवन की संज्ञा दे सकते है। जीवन में श्रद्धा, विश्वास एवं त्याग का मूल्य भी कुछ कम नही है। मेरा प्रिय पुत्र ही मेरी एकमात्र निधि है, मैं तुम्हें इसे सौंपती हूँ। तुम दोनों (इडा और कुमार) एक जुट होकर राष्ट्र की नीतियो का निर्धारण करना। प्रजा के कल्याण को अपनी दृष्टि में सर्वदा रखना। राज्य में किसी प्रकार का भय न फैलाना। अन्त में श्रद्धा ने कहा कि मैं मनु को खोजने के लिए मार्ग पर आगे ही बढती जाऊँगी। तुम ऐसे ढंग से कार्य करना, जिससे तुम्हारा यशोगान सर्वत्र हो सके। कुमार अपनी माता श्रद्धा के मुख से ये वचन सुनकर बोला कि हे माता! मैं तो सदा तुम्हारे साथ ही रहता हूँ और मैं तुम्हारी आज्ञा मानता रहा हूँ। मुझसे ममता तोडकर इस प्रकार से तुम रूठकर न जाओ। मै तुमसे अलग नहीं रह सकूँगा। श्रद्धा ने अपने पुत्र को समझाया कि तुम्हें इस प्रकार दुखित नहीं होना चाहिए। तुम्हारे कष्टों का निवारण अब इडा करेगी। इडा का प्यार-दुलार तुम्हारे समस्त कष्टों का निवारण कर देगा। मैं तुम्हें यह आज्ञा देती हूँ कि तुम इडा के साथ मिलकर शासन-व्यवस्था को एक सुन्दर रूप देना—प्रजा में सौमनस्य की भावना उत्पन्न

करना। तुम दोनों के एकजुट होकर प्रयत्न करने से राज्य को एक व्यवस्थित रूप मिलेगा और इड़ा को भी कष्ट से मुक्ति मिल सकेगी। तुम श्रद्धामय हो और इड़ा तर्कमयी। विश्वास तथा तर्क के बल पर समूचे कार्यों की पूर्ति सुन्दर एवं व्यवस्थित ढंग से हो सकेगी। इतना कहने के पश्चात् श्रद्धा अपने मार्ग पर अग्रसर हो गई। इडा तथा कुमार दोनों ही सारस्वत नगर के राजप्रासाद की ओर चल दिए। श्रद्धा सरस्वती नदी के उसी तटवर्ती भाग पर आगे बढ़ती गई और उसने निर्जन स्थान पर तप करते हुए मनु को देखा और उसकी प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि तुम महानता की साकार मूर्ति हो। मैं तुम्हें छोड़कर भाग निकला किन्तु तुमने मुझे अन्त में खोज ही लिया। पुत्र कुमार को तुमसे इडा ने छीन लिया। इस प्रकार उसने तुम्हारे भोलेपन के कारण तुमसे छल किया श्रद्धा ने मनु को समझाते हुए कहा कि तुम्हें पग-पग पर इस प्रकार की शंका नहीं करनी चाहिए। मेरे पुत्र को इडा ने छीना नहीं अपितु मैं स्वयं ही अपने पुत्र को इडा को सौंपकर आई हूँ। वहाँ वे दोनों मिलकर शासन की व्यवस्था को सम्भालेंगे। कुमार अनेक शुभ कार्यों को करेगा और इस प्रकार तुम्हारी कीर्ति का विस्तार होगा। कोई भी किसी को कुछ देने से दरिद्र नहीं हो जाता। श्रद्धा के औदार्यपूर्ण एवं प्रेमपूर्ण वचनों को सुनकर मनु उसकी मुहुर्मुहु प्रशंसा करने लगे। श्रद्धा के हृदय में अगाध विश्वास, प्रेम, दया, ममता आदि सभी गुण विद्यमान थे। श्रद्धा को बीती हुई बातें याद आने लगीं, जबकि उसने मनु के चरणों में सर्वस्व समर्पित किया था। श्रद्धा ने कहा कि मैं तो नित्य ही तुम्हारी हूँ और मैं नित्य ही तुम्हारा साथ देती रहूँगी। अब हम दोनों मिलकर ऐसे स्थान (दिव्यलोक) पर चलें, जहाँ सुख व शान्ति प्राप्त हो सके। श्रद्धा ने मनु से पुनः कहा कि मैंने कुमार को भली प्रकार से व्यवस्था के विषय में समझा दिया है और वे दोनो मिलकर शासन को एक नवीन एवं व्यवस्थित रूप प्रदान करेंगे। जहाँ प्रजा में समरसता का प्रचार होगा, सभी लोग अपने शुभ कर्मों द्वारा उन्नति करने का प्रयास करेंगे। किसी को किसी प्रकार का कष्ट न होगा— विरोधमयी भावनाएँ दूर हो जावेंगी। उनकी सारी शंकाएँ स्वतः निवृत्त हो जावेगी। श्रद्धा के ऐसे वचनों को सुनकर मनु के हृदय में श्रद्धा के प्रति विश्वास की तरंगें उठने लगी। इसी क्षण मनु ने देखा कि सामने कैलाश पर्वत पर नटेश शंकर तांडव नृत्य कर रहे थे। उनके तांडव नृत्य से तारों का समूह भी गतिशील दिखलाई दे रहा था। वन में सर्वत्र अनाहद नाद कर्णगोचर हो रहा था। शंकर के शरीर से श्रम-बिंदु झरने लगे—वे ही सूर्य, चन्द्रमा एवं तारागण के रूप में बन गए। नृत्य करते समय उनके चरणों से जो धूलि-कण उड़े वे असंख्य पर्वतों एवं ब्रह्माण्डों के रूप में फैल गए। भगवान शंकर के अधरों पर मन्दस्मिति हीरों से खचित पर्वत पर झलकती हुई विद्युत के समान उन्हें दिखलाई दी। उस समय नृत्य-विभोर प्रकृति भी शंकर के सौंदर्य-सागर में

तन्मय हो रही थी। भयंकर पदार्थ भी सौदर्यपूर्ण दृष्टिगोचर हो रहे थे। मनु ने इस अनुपम दृश्य को देखकर कहा कि हे देवि ! तुम मुझे शंकर के परम-पुनीत चरणों तक पहुँचा दो ताकि मैं उनके चरणों में नतमस्तक हो सकूँ। उनकी शरण में पहुँचकर मेरे पाप-पुण्य सभी एकाकार हो जावें—सभी कुछ वहाँ पवित्र एवं निर्मल हो जाता है। वहाँ मिथ्या ज्ञान दूर हो जाता है और और समरसता एवं अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है।

यह सर्ग प्रसादजी की कल्पना पर आधारित है। सांसारिक कष्टों से व्यथित मानव को इसी विराट् चेतन शक्ति के आश्रय में ही परम शान्ति मिला सकती है। इस सर्ग द्वारा कथानक के मोड देने मे विशेष योग मिला है। विचारों की दृष्टि से यह सर्ग महत्त्वपूर्ण है। इस सर्ग मे नटराज शंकर का ताण्डव-नृत्य मर्मस्पर्शी बन पड़ा है।

वह चन्द्रहीन थी ... ... निजी बात।

शब्दार्थ—चन्द्रहीन रात=अमावस्या की रात्रि; अन्धकारमयी रात्रि। स्वच्छ प्रात=आलोकपूर्ण प्रात:काल। तारक=तारे। झलमल=चमकना, टिमटिमाना। सरिता=नदी। पवन-पटल=वायु का परदा। पांत=पंक्ति। निजी बात=अपनी बात।

भावार्थ— अमावस्या की अँधेरी रात मे श्रद्धा सरस्वती नदी के किनारे पर आकर बैठ गई। सर्वत्र घोर अन्धकार छाया हुआ था। उस घोर अन्धकार को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि प्रकाशपूर्ण प्रात:काल भी उस अँधेरी रात की गोद मे सो रहा हो। सरस्वती नदी के वक्षस्थल पर अर्थात् जल में आकाश में बखरे एवं टिमटिमाते तारो के प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे। विशेष बात यह थी कि नदी की धारा वेगवती थी, किन्तु उसमे प्रतिबिम्बित तारे स्थिर दिखलाई दे रहे थे। वायु मंद-मंद गति से प्रवाहित हो रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जसे परदा धीरेधीरे-खुल रहा हो। उस सुनसान अँधेरे मे वृक्षों की पक्ति शान्त मुद्रा मे खड़ी हुई थी मानो वह अपनी ही बात को नदी के शब्दों (कल-कल ध्वनि) मे सुन रही हो।

विशेष—(१) अमावस्या की रात्रि मे अन्धकार इतना फैला हुआ था कि आलोकपूर्ण प्रभात भी छिपा हुआ प्रतीत हो रहा था।

(२) प्रकृति की सचेतनता का प्रस्तुतिकरण एवं निर्जन वातावरण का सफल चित्रण इस छन्द मे हुआ है।

(३) इस सर्ग में मिश्रित छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसमें पद्धरि तथा पादाकुलक छन्दों का संयोग है।

(४) अलङ्कार—(i) मानवीकरण—'चुपचाप''निजी बात'।
(ii) विरोधाभास—'धारा बह जाती बिम्ब अटल'।
(iii) निरंगरूपक—'पवन पटल'।

धूमिल छायाएँ ... ... लिया चूम।

शब्दार्थ—धूमिल छायाएँ=अँधेरे के कारण धुंधली आकृतियाँ (इडा तथा कुमार)। निर्जन=शून्य स्थान। गंधधूम=यज्ञादि में प्रयुक्त होने वाले सुगंधित द्रव्यों का धुंआ।

भावार्थ—इधर श्रद्धा सरस्वती नदी के किनारे आकर बैठ गई थी और अपने विचारों में तन्मय थी और उधर बेचारा कुमार अपनी माता की खोज में निकल पडा। इडा भी उन दोनों को न पाकर खोज में चल दी जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो धुंधली छायाएँ अँधेरे में इधर-उधर घूम रही हों। इधर श्रद्धा ने अपने पैर सरस्वती नदी के जल में लटकाये हुए थे। सरस्वती की लहरें उसके चरणो को चूम रही थी। उसी समय कुमार अपनी माँ की खोज मे इधर आ निकला और माँ से कहने लगा—"माँ, तू इधर बहुत दूर निकल आई, उधर संध्या बहुत देर की समाप्त हो गई। पता नही, इस निर्जन स्थान में ऐसा कौन-सा दर्शनीय आकर्षण है, जिसे देखने के लिए तू इधर आ निकली। तू बार-बार क्या देख रही है ? बस, हे माँ ! अब घर चल। अरे माँ ! देख तो सही, हमारे घर मे से सुगन्धित धुआ ऊपर की ओर निकल रहा है। कुमार की ऐसी सहज भरी बातें सुनकर श्रद्धा ने अपने पुत्र के मुख को चूम लिया।

विशेष—(१) विचारों मे तन्मय श्रद्धा का चित्राकन सफलतापूर्वक किया गया है। 'धूमिल छायाएँ' द्वारा कुमार तथा इडा की ओर संकेत किया गया है।

(२) यहाँ लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता एवं सचेतनता से ओतप्रोत छायावाद की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गई है।

(३) अलङ्कार—(i) मानवीकरण—'संध्या कब की चल गई उधर'
(ii) रूपकातिशयोक्ति—'धूमिल छाया'।

माँ ! क्यों तू ... ... होती जाती हताश।

शब्दार्थ—उदास=संतप्त, खेदयुक्त। दुसह=कठिनाई से सहन करने योग्य। दह=जलाना। हताश=निराश।

भावार्थ—कुमार श्रद्धा को सम्बोधित करते हुए कह रहा है—'हे माँ ! तेरे उदास एवं खिन्न रहने का कारण क्या है ? मेरी समझ में नही आता।

मैं तो तेरे पास ही हूँ। फिर भी तू न मालूम इतना खेदयुक्त क्यों रहती है ? मैं कई दिनों से यह देख रहा हूँ कि तू न जाने दिन-रात क्या-क्या सोच-विचार करती रहती है। मुझे भी तो आखिर इसका पता चले कि बात क्या है ? तू मुझे अपनी बात को बतला। न जाने तेरे इस संताप का कारण क्या है, जो दिन-रात तेरे अन्तस् को जलाये दे रहा है और तेरे इस शरीर को भी। इसी कारण शिथिलता के परिणामस्वरूप लम्बी-लम्बी आहें भरती रहती है। लगता है, तेरी संपूर्ण आशाओं पर तुषारापात हो गया है।

विशेष—कुमार अपनी माता के प्रति कितना चिन्तित है और वह कितना आज्ञाकारी है—इसी भाव को प्रसाद ने यहाँ व्यक्त किया है। माता के प्रति अगाध स्नेह कुमार के हृदय में भरा है। उसमें अपार साहस भी है।

वह बोली ... ... उन्मुक्त द्वार।

शब्दार्थ—अपार=अत्यधिक। अवनत=झुके हुए, उमड़ते हुए। सजल भार=जल से परिपूर्ण, भार सहित। घन=मेघ। दिशि=दस दिशाएँ। अनिल=वायु। झलमल=टिमटिमाते। तारक-दल=तारों का समूह। नभ= आकाश। रजनी=रात। अविरल=सतत्, निरन्तर। जुगनू=खद्योगत, पटवीजना।

भावार्थ—कुमार की सहज भरी बातें सुनकर श्रद्धा ने उससे कहा कि हे पुत्र ! वह तो सीमाओं में बंधा हुआ घर है—उसकी बात छोड दो। मेरा वास्तविक घर तो यह है। जहाँ नीला आकाश है, जिसकी कोई सीमा नहीं है, जिसमें जल के भार से झुके हुए मेघ वर्षा करते हैं—आकाश में घुमडते रहते हैं, जिसके साये मे सभी प्राणियो को सुखों तथा दुःखों की अनुभूति होती रहती है, जिसके नीचे दस दिशाओं से व्यक्तियों का आगमन-गमन बाधा रहित होता रहता है, जहाँ वायु एक नन्हें से बच्चे के समान क्रीड़ाएँ करता हुआ इधर-उधर सर्वत्र बहता रहता है, जिस आकाश मे बिखरे और टिमटिमाते हुए तारे ऐसे दिखलाई देते हैं, जिस प्रकार वर्षाकालीन रात्रि में जुगनू चमक रहे हों, जिसके असीम नीले आकाश के नीचे उदार एवं सुविस्तृत विश्व व्याप्त है। मेरा वास्तविक घर यही है, जिसका द्वार प्रत्येक प्राणी के लिए सदा खुला हुआ है—सभी का प्रवेश यहाँ निर्बाध है।

विशेष—(१) 'उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना की चरितार्थता की गई है। श्रद्धा एक उदार हृदया नारी है, सम्पूर्ण विश्व ही

उसका घर है। यहाँ कवि का उदारवादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है।

(२) यहाँ कवि ने 'शिशु' के रूप में वायु का, जुगनू के रूप में तारों का तथा उन्मुक्त द्वार के रूप में सम्पूर्ण जगती का सफल चित्रण किया है। विम्व-योजना विशेष रूप से दर्शनीय है।

(३) अलंकार—(i) परम्परित रूपक—'फिर···अविरल'।
(ii) उपमा—'शिशु-सा'।
(iii) मानवीकरण—'आते जाते सुख-दुःख'।

यह लोचन ··· ··· ··· ··· है नोंक-झोंक।

शब्दार्थ—लोचन गोचर=दृष्टिगोचर। सकल लोक=समूचा ब्रह्माण्ड। संसृति=संसार, सृष्टि। कल्पित=वास्तविकता रहित; मनगढन्त। भावो-दधि=भाव रूपी सागर। किरनों=किरणों; अनुभवों। स्वाती कन=स्वांती नक्षत्रकाल में मेघो से आने वाली बूँदें। सजग=सावधान। आलिंगित=आलिंगन करते हुए। नग=पर्वत। रोक-टोक=विघ्न-वाधाएं। नोंक-झोंक=छेड़छाड; क्रीड़ा।

भावार्थ—श्रद्धा ने पुत्र कुमार को सम्बोधित करते हुए कहा—हे पुत्र ! मेरे इस वास्तविक महान् गृह में समस्त ब्रह्माण्ड लोक हैं, जो नेत्रेन्द्रिय के विषय है अर्थात् नेत्रों द्वारा दिखाई देने योग्य हैं। जिस प्रकार सूर्य की किरणें (उष्मा) समुद्र के जल को भाप के रूप में परिवर्तित कर ऊपर की ओर ले जाती है और वही जल स्वांति नक्षत्रकाल में वृष्टि के रूप मे प्राप्त होकर संसार को अनेक प्रकार की वस्तुओं से पूरित कर देता है, उसी प्रकार भावों के सागर रूपी अन्तस् की अनुभूतियो के कारण काल्पनिक संसार के दुःख तथा सुख शोक तथा आनन्द से इसे विशाल रूप में फैलकर मेरे घर को प्रपूरित करते रहते हैं। जिस प्रकार पर्वत से निकलकर वहने वाले झरने पहाड़ को आलिंगित करते हुए कभी ऊँचे-नीचे दिखलाई देते है, उसी प्रकार इस विराट् विश्व (मेरे घर) मे भी अनवरत रूप से उन्नति तथा अवनति होती रहती है। जिस प्रकार पर्वत से निकलता हुआ झरना मार्ग मे वाधा डालने वाली शिलाओं को खेल-ही-खेल मे दूर कर देता है—उन उलझनों को प्रसन्नतापूर्वक हटाकर सदैव आगे वढता जाता है, उसी प्रकार मेरे घर में भी प्राणियों को अपने मार्ग मे आई हुई उलझनें तथा रुकावटें भली प्रतीत हो रही है, क्योंकि सभी प्राणियो के लिए ये विघ्न-वाधाएँ खेल के रूप में ही हैं।

विशेष—(१) यहाँ जगत् के सुखद-स्वरूप का वर्णन किया गया है। उसमें स्वतंत्रता एवं उन्मुक्तता दोनों ही है। परिश्रम का मानव-जीवन में बहुत महत्त्व है—इसके सहारे मनुष्य कर्मशील होकर विघ्न-बाधाओं से तनिक भी नहीं घबराते, अपितु लीला-मात्र में उन विघ्न-बाधाओं को हटा देते हैं, जो उन्नति में बाधकस्वरूप हैं। वे विघ्न-बाधाएँ उनके लिए आनन्ददायिनी प्रतीत होती हैं।

(२) 'उदधि' द्वारा प्रसादजी ने सुन्दर ढंग से मार्मिक भावों का निरूपण किया है। 'उदधि' से भावों की विशालता का, 'किरनों' से अनुभूतियों का, 'स्वातीकन' से दया का और 'नोंक-झोंक' से छेड-छाड़ का सुन्दर वर्णन किया है।

(३) 'स्वाति नक्षत्र' में मेघ-जल की बूँदें चातक के लिए जीवनदायिनी हैं। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार याचक की वृत्ति चातक-जैसी होनी चाहिए—हर किसी के सम्मुख हाथ फैलाना उचित नही है। स्वाति नक्षत्र के जल कण के विषय में कहा गया है :

कदली सीप भुजंग मुख स्वाति बूंद गुन तीन।

अर्थात् स्वाति नक्षत्र मे जल की बूंद केले के पत्ते पर पडे तो कपूर, सीप में पड़े तो मोती और सर्प के मुख में पड़े, तो विष बन जाता है।

(४) अलकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—'किरनों'।
(ii) रूपक—'भावोदधि'।
(iii) उपमा—'स्वाति कन'।

जग, जगता ... ... कितना विशाल।

शब्दार्थ—आँखें किए लाल=ऊषा की लालिमा के रूप मे रक्तिम आभा को धारण किए हुए। तम=अंधकार। सुरधनु=इन्द्र धनुष। रग बदल= भिन्न-भिन्न रंगों में बदल कर। मृति=मृत्यु। संसृति=संसार। नति= झुकाव; झुकना। उन्नति=उत्थान। उडु दल=तारों का समूह। अवकाश सरोवर=आकाश रूपी तालाब। मराल=हंस, चन्द्र।

भावार्थ—श्रद्धा पुत्र कुमार को सम्बोधित कर कहती है—हे पुत्र! जिस प्रकार सोकर उठे हुए व्यक्ति की आँखो में लालिमा छा रही होती है, उसी प्रकार इस विराट् विश्व के रूप में फैले हुए मेरे गृह में समस्त सृष्टि प्रात:काल आँखों में

किंतु आज उसके पास कुछ भी न था। आज श्रद्धा के समक्ष इड़ा हाथ फैलाए एक भिक्षुणी की मुद्रा मे खडी हुई थी।

विशेष—(१) वैभव-सम्पन्नता की स्थिति परम सुखावह होती है, किंतु कालचक्रवश विपन्नता आने पर कैसी दशा हो जाती है—इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है—यही निरूपण प्रसादजी ने यहाँ किया है। इड़ा की कांति, मधुरिमा एवं उल्लास सभी कुछ तो समाप्त हो गया है। उसके लिए तो परम दु:खावह स्थिति इससे अधिक क्या हो सकती है।

(२) 'मलिन छवि की रेखा' विम्ब द्वारा इड़ा का, 'राहुग्रस्त शशि-लेखा' विम्ब द्वारा विषादमयी स्थिति का तथा 'विषरेखा' बिम्ब द्वारा विषाद् का आकर्षक वर्णन किया है।

(३) अलंकार—(i) रूपक—'मलिन छवि की रेखा।'
(ii) उपमा - 'राहु ग्रस्त-सी शशि लेखा।'
(iii) विशेषण विपर्यय—'कुछ ग्रहण कर रहा दीन त्याग।'
(iv) मानवीकरण—'सोया है जिसका भाग्य-जाग।'

(४) मुहावरा प्रयोग—भाग्य का सोना और जागना।

बोली तुमसे ... ... चचला शक्ति।

शब्दार्थ—अन्धानुरक्ति=बिना सोचे-समझे प्रेम (अनुराग) की जाने वाली। अवलम्बन=आश्रय। चिर आकर्षण=सदा आकर्षित करने वाली। मादकता=मस्ती, उन्माद। अवनत=झुके हुए। घन=बादल। चिर अतृप्ति=जो बहुत समय से तृप्त न हो। उत्तेजित चंचला शक्ति=उत्तेजना से युक्त चंचल शक्ति।

भावार्थ—श्रद्धा ने इडा से कहा कि मैं तुम्हारे प्रति वैराग्य-भावना क्यों रखने लगी; तुम तो जीवन की साक्षात् रूप मे स्नेह एवं अनुराग का मूर्त्त रूप हो, जिसके प्रति सभी को परम आकर्षण हो जाता है—बुद्धि शून्य होकर अनुराग करने लगती है। जब मनु मुझ से बिछुड गए थे तब ऐसी स्थिति में उनके दु:खी जीवन की रक्षा करने के लिए उन्हे तुमने ही तो अपने यहाँ आश्रय प्रदान किया था। तुम तो आशामयी हो, तुम तो प्रत्येक प्राणी को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ हो, जिस प्रकार आकाश मे छाए हुए जल धारण किए मेघ धरणी की ओर झुकी हुई स्थिति मे होते है, उसी प्रकार तुम भी मादकता मे लीन होकर समस्त प्राणियो की ओर सर्वदा झुकी रहती हो। तुम तो प्राणियों के हृदय में उत्तेजना उत्पन्न करनी वाली हो और चपलता की शक्ति से युक्त हो—एक ऐसी विलक्षण एवं आकर्षक शक्ति जिसका अवलोकन करके मनु के मस्तिष्क मे व्याकुलता ही रही। वे कभी भी तृप्ति का अनुभव नही कर सके।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने इडा के स्वरूप का चित्रांकन किया है जिसमें अनन्त आकर्षण, मस्ती एवं चंचलता विद्यमान है तथा वह सभी को

अपनी ओर विमोहित कर लेती है। वह आकर्षण तो उत्पन्न करती है किन्तु तृप्ति नही करती। इसे तर्कयुक्त बुद्धि के रूप में अभिहित किया जा सकता है। इडा को उत्तेजनायुक्त चपला शक्ति के रूप मे भी अंकित किया गया है।

(२) अलंकार—(i) निरंगरूपक—'अधानुरक्ति', 'आशामयी तृप्ति' आदि।
(ii) रूपक—'मादकता की अवनत घन।'

मैं क्या दे ... ... हूँ रही डोल।

शब्दार्थ—मोल=कीमत; मूल्य। मधुर बोल=मधुरता से भरी बातें। अनुराग=प्रेम, अनुरक्ति। मधुर घोल=मिठास से भरा घोल। चिर-विस्मृति-सी=पुरानी भूल के समान।

भावार्थ—श्रद्धा इडा को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे इड़े! वास्तव में तुमने मनु पर जो कुछ उपकार किया है—इस कार्य की पूर्ति भला मैं तुम्हें क्या देकर कर सकती हूं। मेरे पास तो कुछ भी देने योग्य नही है। मेरे पास तो केवल अपना हृदय और दो मीठे बोल ही देने के लिए है। मेरा जीवन विलक्षणता से भरा है—मै सुख की प्राप्ति होने पर हँस लेती हूँ और दुःख की प्राप्ति होने पर रो लेती हूँ। मुझे अपने जीवन मे कुछ मिल जाता है तो उसे पाकर खो देती हूँ। ऐसा मेरे जीवन में बारम्बार हुआ है। मैंने जीवन मे किसी भी वस्तु को अपना नही माना। मै किसी से कुछ प्राप्त कर लेती हूँ तो किसी दूसरे को तुरन्त दे देती हूँ। इतना ही नही, मैं दुःख की अनुभूति में सुखानुभूति करती हुई सन्तुष्ट रहती हूँ। मेरे हृदय में अनुरक्ति और माधुर्य दोनों हैं अतः मैं एक मीठे मिश्रण के समान हूँ। बहुत समय पहले की पुरानी भूल के सदृश मैं इस संसार में भटकती घूम रही हूँ। यही कारण है कि मै अनुरागवती एवं मधुरिमा से ओत-प्रोत होते हुए भी अपने इष्ट को अभी तक प्राप्त नही कर सकी हूँ—शोचनीय स्थिति यह है कि गहराई में झांककर मुझे किसी ने नही देखा।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने श्रद्धा के हृदय मे व्याप्त मधुरिमा एवं अनुराग का सुन्दर स्वरूप अंकित किया है। इड़ा के स्वरूप के सर्वथा विपरीत श्रद्धा के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया है। श्रद्धा का समूचा जीवन दूसरों के मंगल के लिए है—वह प्रत्येक स्थिति चाहे सुखमयी हो अथवा दुःखमयी—सर्वथा सन्तुष्ट रहती है। आदर्श नारी का स्वरूप श्रद्धा में सुष्ठु प्रकार से चित्रित किया गया है। श्रद्धा तो औदार्य का साक्षात् मूर्त्त रूप है। प्रसाद के शब्दों में, 'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार'—विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

(२) 'मधुर घोल' द्वारा नारी के सहज गुणों की—माधुर्य, दया, प्रेम, ममता आदि की ओर संकेत किया गया है।

(३) अलङ्कार—(i) पूर्णोपमा—'चिर विस्मृति-सी'।
(ii) रूपक—'मधुर घोल'।

यह प्रभापूर्ण ... ... फँसे साधिकार।

शब्दार्थ—प्रभापूर्ण=सौंदर्य से युक्त। निहार=देखकर। हृतचेतन=चेतना शून्य, विवेकहीन। माया=जादुई आकर्षण। छायाशीतल=सुख एवं शान्ति प्रदान करने वाली। निश्छल=छल-छिद्र से रहित, कपटहीन, सीधे-सादे स्वभाव वाली। साधिकार=अधिकार-युक्त।

भावार्थ—इड़ा को सम्बोधित करते हुए श्रद्धा कहती है कि तुम्हारा मुख सौंदर्यमयी आभा से भरा हुआ था—ऐसे तुम्हारे मुख का अवलोकन करते ही मनु एक बार मे ही अपना होश-हवाश खो बैठे थे अर्थात् वह तुम्हारे सौंदर्य से परमाकृष्ट होकर विवेकहीन हो गये। इस जगत् मे नारी के आदर-आकर्षण एवं ममता --ये दो प्रकार के बल होते है। इन्हीं के बल पर वह समूचे संसार को शीतलता एवं छाया के रूप में सुख-शान्ति अविराम प्रदान किया करती है। जगत् को असीम सुख देने वाली तथा छल से हीन तुम जैसी नारी से किस प्रकार अपराध हो सकता है, जिसके कारण उसे क्षमा किया जाये। ऐसी नारियों से समूची धरती की शोभा होती है—ऐसी नारियों को प्राप्त कर पृथ्वी अपने को धन्य मानती है। तुम अवश्य ही क्षमा करोगी—यह सोचकर कि मनु सुधि-बुधि गंवाकर अपराध कर बैठे और मै उनकी पत्नी के नाते उनकी ओर से तुमसे क्षमा माँगती हूँ। उनकी ओर से क्षमा माँगने का मेरा अधिकार है। उनके द्वारा किए गए अपराध को तुम अवश्य ही क्षमा कर दोगी।

विशेष—(१) श्रद्धा का आदर्श पत्नी के रूप मे चित्रित किया गया है। श्रद्धा के द्वारा मनु की ओर से क्षमा-याचना के लिए कहा गया है। श्रद्धा अलौकिक गुणों की साक्षात् प्रतिमा है। इन्ही सद्गुणो के बल पर इड़ा जैसी कठोर नारी को वह प्रभावित कर सकी है।

(२) नारी के विषय मे प्रसादजी ने सुन्दर ढंग से विचारों को प्रस्तुत किया है। दया एवं ममतामयी मूर्ति नारी संसार को शान्ति एवं सुखदायिनी शीतल छाया के रूप मे है। 'अजातशत्रु' नाटक में प्रसादजी के नारी-विषयक निम्न विचार विशेष रूप से द्रष्टव्य है :

"मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन-संग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है। उसका एक शीतल विश्राम है और वह स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्ति दया-सान्त्वना के अभय-वरद-हस्त का आश्रय, मानव-समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व-शासन की एकमात्र अधिकारिणी प्रकृतिस्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है।...कठोरता का उदाहरण है पुरुष और कोमलता का

विश्लेषण है स्त्री-जाति। प्ररुप क्रूरता है, तो स्त्री करुणा है—जो अन्तर्जगत् का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए है। इसीलिए प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मनमोहक आवरण दिया है—रमणी का रूप।"

अब मैं रह सकती ... ... शत्रु हो न।

शब्दार्थ—मौन=शान्त। सीमा=मर्यादा। पावस=वर्षाऋतु। निर्झर=झरना।

भावार्थ—श्रद्धा की बातें सुनकर इड़ा ने कहा—आपकी इन सभी बातों को मैंने सुना किन्तु अब मै भी मौन धारण नहीं कर सकती, क्योंकि यहाँ अपराध किससे नही होता। प्रत्येक प्राणी—चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष—सभी से जान-बूझकर या बिना जाने-बूझे अनेक प्रकार के अपराध होते है। केवल पुरुष द्वारा ही अपराध नही होता—सभी से हो सकता है। इस संसार मे सभी पुरुष तथा स्त्रियाँ अपने जीवन में सुख तथा दुःख सहते है, किन्तु वे दूसरों के सामने अपने जीवन के दुःखों के विषय में न बतलाकर सुखो के विषय में ही खूब बढा-चढ़ाकर कहते है; क्योंकि वे दुःखों को सहन करते हुए भी दूसरों के सम्मुख प्रकट नही करना चाहते—उन्हे छिपाना चाहते है। यदि वे अपने जीवन के दुःखो को दूसरों के सामने प्रकट कर दें तो उनके द्वारा किए गए अपराधों का भेद दूसरे लोगों को ज्ञात हो जाता है। इस प्रकार एक कोटि में तो वे लोग है, जो अपराध करते है किन्तु उन्हे छिपाते रहते हैं और दूसरी कोटि मे वे लोग है, जिन्हें कुछ अधिकार प्राप्त हो जाए, तो वे अपने अधिकार का सदुपयोग करके दुरुपयोग कर बैठते है, जिस प्रकार निर्झर वर्षाऋतु मे अपनी सीमा को तोड़कर अबाध रूप म बहने लगते है—उन्हे रोकना सम्भव नही होता। मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले ऐसे दुर्दम्य प्रकृति वाले लोगों को किस प्रकार से रोकना सम्भव हो सकता है। यहाँ तक कि जो उनके द्वारा किए गए अतिचार में बाधक बनने का प्रयत्न करता है, उसे वे शत्रु के समान समझने लगते है। यदि वह हितचिन्तक के रूप में भी उनके सम्मुख अपने विचार प्रकट करें, तब भी वे उसके साथ शत्रुवत् व्यवहार करते है। उनके द्वारा सन्मार्ग पर अनुसरण नितान्त कठिन कार्य है।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने मानव द्वारा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष—दोनों रूपो मे ही होने वाले अपराधों की ओर इंगित किया है। अपराध तो सभी से जाने-अनजाने में हो जाते है—यह एक वास्तविक बात है।

(२) यहाँ 'पावस-निर्झर' के बिम्ब द्वारा अधिकार प्राप्त व्यक्तियों द्वारा अधिकार का दुरुपयोग विषयक विचार सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है। 'पावस-निर्झर' से की गई तुलना परम उपयुक्त है।

(३) अलङ्कार—पूर्णोपमा—'पावस-निर्झर'।

अग्रसर हो रही ... ... अब गया छूट।

शब्दार्थ—अग्रसर होना=आगे की ओर बढना। सीमाएँ कृत्रिम=बनावटी मर्यादाएँ; (ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के हेतु निश्चित कार्य)। श्रम-भाग-वर्ग=श्रम के आधार पर वर्ग-विभाजन यथा ब्राह्मण आदि। गर्व=अभिमान। सृष्टि=सर्जना, रचना। विप्लव=विद्रोह, उपद्रव। वृष्टि=वर्षा। लालसा=तृष्णा, उत्कट इच्छा। साहस छूटना=हिम्मत गँवा बैठना, साहस खो बैठना।

भावार्थ—इडा श्रद्धा से कह रही है कि अब मेरे शासित क्षेत्र में आपसी फूट द्रुतगति से फैलती जा रही है। मेरे द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र—जिनके लिए जिन-जिन कार्यों का निश्चित रूप बतलाया गया था, आज कोई भी इन्हें मानकर कार्य करने के लिए उद्यत एवं इच्छुक नही है। आज कोई भी सीमा में नही रहना चाहता है। समाज में सुव्यवस्था रखने के लिए मैंने जिन सीमाओ को निश्चित किया था, वे सभी सीमाएँ टूटती जा रही है। मैंने श्रम के आधार पर समाज के कल्याण के लिए ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्गों की रचना की थी—जिसमें किसी प्रकार की ऊँच अथवा नीच की भावना नही थी, किन्तु आज स्थिति कुछ दूसरी ही दिखलाई दे रही है। आज प्रत्येक वर्ग दूसरे वर्ग की अपेक्षा अपने को श्रेष्ठ एवं अधिक बली समझने लगा है। इस प्रकार वह अपने से इतर वर्ग को तीन दृष्टि से देखने लगा है। शासन की सुव्यवस्था एवं शासन के कल्याण के लिए नियम निर्धारित करने वाले लोग ही स्वेच्छाचारिता की ओर उन्मुख हो गए हैं। फलतः वे नियमो का उल्लंघन करते है। वे राज्य में विद्रोह कराते है, फिर सुव्यवस्था और शान्ति किस प्रकार से रह सकती है। मेरे राज्य में सभी लोग मदमस्त होकर तृष्णा मे फँस गये है। जिस प्रकार मदिरापान कर कोई व्यक्ति उन्माद की अवस्था मे हो जाता है, उसकी तृष्णा कभी शान्त नही हो सकती, जिस प्रकार कोई मद्यप मदिरा के घूंट लगातार पीता ही चला जाता है—उसकी मदिरापान की प्यास कभी शान्त नही हो पाती। यही कारण है कि ऐसी स्थिति को देखकर मेरा साहस छूट गया है अर्थात् अब मैं हिम्मत हार गई हूँ।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने अव्यवस्थित शासन के स्वरूप की वास्तविक झाँकी प्रस्तुत की है। वर्ग-भेद सामाजिक अव्यवस्था के कारण है। नियमो की

सुनिश्चित रूप एवं प्रतिपादित करने वाले ही जिस शासन में नियमोल्लंघन करने लगें, तो वहाँ किसी प्रकार की व्यवस्था की आशा नही की जा सकेगी।

(२) 'साहस छूटना' मुहावरे का सार्थक प्रयोग हुआ है।

(३) अलंकार—(i) रूपक—'लालसा घूंट'।

(ii) मानवीकरण—'अग्रसर हो रही यहाँ फूट'।

मैं जनपद कल्याणी ... ... चाह रही समृद्ध।

शब्दार्थ—जनपद=बस्ती, आबादी। कल्याणी=कल्याण करने वाली। निषिद्ध=निषेध योग्य, त्याग के योग्य। सुविभाजन=बटवारा; यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सामाजिक विभाजन। विषम=विपरीत (असमानता फैलाने वाले)। नाना=अनेक। केन्द्रों में=प्रधान स्थानों में। जलधर=बादल, मेघ। उपलोपम—ओले के समान। ज्वाला=विद्रोह रूपी ज्वाला (लपट)। समद्धि=प्रज्वलित, भड़कना।

व्याख्या—इड़ा कह रही है कि मैं सारस्वत नगर में कल्याण करने वाली के रूप में प्रख्यात थी; परन्तु आज मैं सर्वप्रकार से पतन का मूल कारण बन गई हूँ। अतः सभी के लिए मैं त्याज्य हूँ। मैंने सामाजिक समानता के विषय में सोच-समझकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—सभी के लिए अपने-अपने कार्य के आधार पर समाज का विभाजन किया था, किन्तु आज उस विभाजन से समाज में अनेक प्रकार की विषमताएँ—असमानताएँ उत्पन्न हो गई हैं। आज मेरे देश में अनेक प्रकार के नियमो का एक दिन निर्धारण होता है, तो दूसरे दिन उन नियमों को तोड़ दिया जाता है। इस प्रकार नियमों में किसी प्रकार की स्थिरता नही रह गई है। मेरे राज्य में प्रमुख-प्रमुख स्थानों पर भीषण विद्रोह हुआ करते हैं। इस प्रकार मेरा राज्य विनाश की ओर बढ रहा है। जिस प्रकार ओले बरसाने वाले बादल आकाश में छाकर फिर इधर-उधर बिखर कर भिन्न-भिन्न स्थानों पर ओलों की वृष्टि करते है, उसी प्रकार मेरे राज्य में प्रमुख-प्रमुख स्थानों से उत्पन्न क्रान्ति एवं विप्लव की चिनगारियाँ दूर-दूर तक अपना प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत करती चली जाती हैं। विप्लव के रूप में भड़कती यह ज्वाला ऐसी प्रतीत हो रही है कि अब निश्चित रूप से ही विनाश होगा, जिस प्रकार भड़कती आग आहुति के डाले जाने पर और अधिक भड़क उठती है।

विशेष—(१) यहाँ पर आधुनिक जीवन के सच्चे स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया है। भौतिक साधनों से सम्पन्न देश की असमानताओं की ओर दृष्टिपात किया गया है। आज के समुन्नत वैज्ञानिक युग में मानव किस दिशा की ओर अग्रसर हो रहा—यह सर्वविदित है।

(२) यहाँ उपलोपम जलधर तथा ज्वाला—दोनों ही बिम्ब अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे वर्णन की सजीवता और भी अधिक बढ़ गई है। लाक्षणिक प्रयोग द्रष्टव्य है।

(३) अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—'ज्वाला', 'आहुति'।
(ii) उपमा—जलधर सम।

तो क्या मैं ... ... **छाया अशान्त।**

शब्दार्थ—नितान्त=पूर्ण रूप से। संहार=नाश। वध्य=वध करने (मारने) योग्य। असहाय=दुर्बल, निस्सहाय। दान्त=दबाया हुआ, आक्रान्त। अविरल=निरन्तर। संघर्ष=प्रकृति को विजित करने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न। शक्ति-चिह्न=शक्ति को आविष्कृत करने वाले चिह्न; नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार। प्रणति=झुकाव, नति। अनुशासन=आज्ञा, आचार सम्बन्धित नियमों का पालन।

व्याख्या—इड़ा कह रही है कि मैंने प्रजा के कल्याण तथा उत्कर्ष के लिए अनेक प्रकार के यथासभव प्रयत्न किए, किन्तु उनसे प्रजा की कोई किसी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकी। मेरे समस्त प्रयत्न निष्फल हो जाने पर मैं सोचती हूँ कि क्या मेरा यह मात्र भ्रम ही था ? क्या मेरे लिए प्रजा के प्रति यह कर्त्तव्य उचित था कि मैं प्रजा को अपने समक्ष उसे निस्सहाय और प्रकृति के द्वारा आक्रान्त देखती रहती और मैं ऐसी स्थिति में पूर्ण रूप से शान्त रह सकती ? प्रजा को मैं यूं ही नष्ट होते हुए देखती रहती। मैंने प्रजा में शक्ति का संचार करने के लिए नवीन आविष्कारों द्वारा प्रकृति से जूझने के लिए प्रवृत्त किया, किन्तु आज वह समग्र शक्ति व्यर्थ ही प्रमाणित हुई। अनेक प्रकार के किए गए सभी यज्ञ, अनुष्ठान आदि निष्फल ही सिद्ध हुए। उनसे प्रजा की वास्तविक रूप में किसी प्रकार की समुन्नति संभव न हो सकी। परिणाम यह हुआ कि आज मेरी प्रजा त्रस्त एवं दुर्बल होकर प्रकृति की आराधना करती है। भ्रान्तिवश उसके सामने नमन करती है और प्रकृति के क्रूरतापूर्ण अनुशासन में रहते हुए, आज प्रजा के जीवन में पूर्ण अशान्ति व्याप्त है।

विशेष—(१) यहाँ वैज्ञानिक युग की ओर इंगित किया गया है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करना दुष्कर कार्य है। उसकी निस्सीम शक्ति के आगे हमारी शक्ति नगण्य है।

(२) अलंकार—(i) रूपक—'अनुशासन की छाया'।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—'शक्ति चिह्न'।
(iii) विशेषण विपर्यय—'श्रान्त प्रणति'।

तिस पर मैंने ... ... **उठे जाग।**

शब्दार्थ—दिव्यराग=अलौकिक प्रेम। अकिंचन=निर्धन। सुहाती=अच्छी लगना; भली प्रतीत होना। स्वर गाती हूँ=मीठी व अच्छी बातें करना। विराग=विरक्ति।

व्याख्या—इड़ा श्रद्धा को धिक्कारते हुए कह रही है कि हे श्रद्धे! मैंने मनु को अपने देश के स्वामी के रूप में बनाया और उन्हें वैभव-सम्पदा के चक्कर में डाल दिया। इतना ही नहीं, मैंने तुम्हारे सौभाग्य को तुमसे छीन लिया अर्थात् मैंने मनु को अपनी ओर आकृष्ट करके तुम्हारे अलौकिक प्रेम को छीन-कर अशोभनीय कार्य किया। सर्वविध ऐश्वर्य-वैभव प्राप्त करके भी मैं अपने को निर्धन के रूप में ही देख रही हूँ—ऐसा अनुभव होता है कि मेरे पास वास्तव में कुछ भी नहीं है। मेरी दशा तो ऐसी हो गई है कि मैं स्वयं अपने को भी अच्छी नहीं प्रतीत हो रही हूँ, तब दूसरों को तो भली लगने का प्रश्न ही नहीं उठता। मैं अपने द्वारा कही हुई अच्छी बात भी स्वयं सुनना पसन्द नहीं करती, फिर दूसरों को तो मेरी कही हुई बात क्या अच्छी लगेगी। तात्पर्य यह है कि अन्य लोग मेरी बात सुनना भला किस प्रकार चाहेंगे। इसलिए मैं आप से क्षमा माँगती हूँ; आप मुझे अब क्षमा कर दीजिएगा। आप किसी प्रकार की विरक्ति अपने मन में न रखें—यही मेरी विनती है। आपकी मेरे प्रति अनु-रक्ति बनी रहे, तो सम्भव है, मेरे अन्तस् में पुनः चेतनता जाग उठे और मैं अपने जीवन में लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकूँ। कहने का आशय यह है कि आपके सौजन्य से खोया हुआ साहस मैं अपने हृदय में फिर से जुटा सकूँ और लक्ष्योन्मुखी होकर सफलता प्राप्त कर सकूँ।

विशेष—यहाँ प्रसादजी ने इड़ा की दैन्यपूर्ण स्थिति का स्वाभाविक चित्रण किया है। इसके साथ ही जीवन के वैषम्य के विषय में भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इड़ा के अन्तर्द्वन्द्व की सफल झाँकी यहाँ प्रसादजी ने प्रस्तुत की है।

हे रुद्र रोष ... ... बना भ्रान्त ।

शब्दार्थ—रुद्र रोष=शिव का प्रकोप; प्रकृति का प्रकोप। विषम ध्वान्त=गहन अंधकार। चिर चढ़ना=बलपूर्वक अधिकार करना। हृदय न पाना=मन पर अधिकार न कर सकना। विकल=बेचैन। आलोक=प्रकाश (सौजन्य, प्रेम)। श्रान्त=थके हुए; परिश्रान्त। भ्रान्त=भ्रमपूर्ण; दुःख देने वाला।

व्याख्या—श्रद्धा ने इड़ा से कहा कि रुद्र के प्रकोप के रूप में प्रकट होने वाला प्राकृतिक प्रकोप गहन अन्धकार के रूप में अभी व्याप्त है—पूर्ण रूप से अभी शान्त नही हो पाया है। तुम्हारे जीवन में तुम्हारी सबसे बडी भूल यही रही है कि तुमने सदा दूसरों के ऊपर बलपूर्वक अधिकार करने का प्रयत्न किया है—अपने सद्गुणों एवं मधुर व्यवहार द्वारा उनके मन पर तुम कभी भी विजय प्राप्त नही कर सकी हो! बलपूर्वक दूसरों पर विजय प्राप्त करना सच्ची विजय नहीं है। कहने का आशय यह है कि तुम्हारे द्वारा किए गए समस्त कार्यों में तर्क-बुद्धि का प्राधान्य रहा। उसमें हृदय को किंचित् भी स्थान नही मिला। यही कारण है कि तुम व्याकुलता का अनुभव करती हुई समस्त कार्यो को करती रही, किन्तु सच्ची शान्ति तुम्हारे मन को नही मिल सकी। तुम्हारी इस भूल के कारण अन्य प्राणियों में भी आपसी अपनापन (सौहार्द्र) की भावना लुप्त हो गई, जिसके अभाव मे वे एकजुट होकर जीवन में अग्रसर न होकर एक थके-माँदे पथिक के रूप मे जीवन व्यतीत करते रहे। उन्हें सच्चा सुख और शान्ति प्राप्त नहीं हो सकी। इसीलिए तुम्हारे द्वारा किया गया सामाजिक वर्ग-विभाजन उनके लिए सुखद न होकर भ्रान्तिपूर्ण अर्थात् दुःखद रहा।

विशेष—(१) शासन में मात्र बुद्धि या तर्क के बल पर प्रजा पर शासन करना एक भूल ही है—सच्चा शासन तो प्रजा के हृदय को जीत कर ही किया जा सकता है। यह सच्चा शासन स्थायी होता है। दूसरे के हृदय पर शासन करने के लिए शासक का स्वभाव मृदु (कोमल) होना चाहिए। कोमल एवं मधुर व्यवहार से क्या सिद्ध नही हो जाता। इस विषय में 'महाभारत' मे भी लिखा है—

मृदुना दारुणं हन्ति, मृदुना हन्त्यदारुणम् ।
ना साध्यं मृदुनाक श्चित् तस्मात् तीव्रतरं मृदुः ॥

(२) विषम ध्वान्त तथा आलोक द्वारा क्रमशः विनाश तथा सौजन्यपूर्ण वह र की ओर संकेत किया गया है।

(३) अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—'आलोक'।
(ii) रूपक—'वन विषम ध्वान्त।'

जीवन धारा सुन्दर ... ... सरल राह।

शब्दार्थ—सत=सत्य। सतत= निरन्तर। सुखद=सुख प्रदान करने वाला। अथाह=गहरा, अगाध। तर्कमयी=तर्क से युक्त। लहर=व्यथा की लहर। प्रतिबिम्बित तारा=तारों के प्रतिबिम्ब के समान दिखाई देने वाले मिथ्या रूप सुख तथा दुःख। जड़ता की स्थिति=अज्ञानभरी दशा। सरल राह=सीधा-साधा मार्ग।

व्याख्या- इड़ा को समझाते हुए श्रद्धा कह रही हैं कि हे देवि! नदी की वेगमयी धारा के सदृश जीवन की धारा अनादिकाल से निर्बाध रूप से प्रवाहित होती रही है। जीवन की धारा का यह प्रवाह सत्यमय एवं सुख प्रदायक है। इसके साथ ही गम्भीरता लिए हुए है किंतु जीवन के इस प्रकार के प्रवाह को तुम नही समझ सकीं। तुमने इस दिशा मे कभी प्रयत्न ही नही किया। तुम तो तर्क-बुद्धि की प्रतिभा के रूप में ही रही हो। जीवन की धारा के इस प्रकार के प्रवाह को बुद्धि-तर्क द्वारा समझना संभव नही है। यदि कोई प्राणी नदी की धारा के रहस्य को ज्ञात करने के लिए उसमें उद्भूत लहरों की गणना करता रहे या किनारे बैठकर उस धारा में प्रतिबिम्बित तारों को पकड़े तो यह उसी की भूल है—ठीक ऐसी ही स्थिति तुम्हारी रही है। तुम भी जीवन के रहस्य को जानने के लिए दुःख की लहरों की गणना करती रही हो या जीवन में मिथ्या रूप में सुखो तथा दुखों के माध्यम से ही जीवन को समझने का प्रयत्न करती रही हो—तुम रात-दिन रुक-रुककर खण्ड रूप मे जीवन की धारा के इस सतत् प्रवाह को मात्र बाह्य रूप में विलोकन करने का प्रयास करती रहीं। यह तुम से जीवन में भूल हुई है। अब भविष्य में इस प्रकार की भूल अपने जीवन में मत करना। तर्क द्वारा जीवन की अविच्छिन्न धारा के प्रवाह का अवलोकन करना मूर्खता का परिचायक है—ऐसी स्थिति मे स्वभावतः भूल हो जाती है। कभी धूप—कभी छाया—इसी प्रकार से जीवन मे कभी सुख और कभी दुःख आते रहते हैं—समय एक-सा नही रहता है। अतएव हमें सुख तथा दुःख दोनों को अपने जीवन का अभिन्न रूप समझना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि सुख तथा दुःख का सम्पृक्त रूप ही जीवन की अविच्छिन्न प्रवाहित धारा है—यही जीवन का अखण्ड प्रवाह है। तुम तर्क की गुत्थियों में उलझी रहीं और

परिणाम यह हुआ कि तुमने जीवन के इस सीधे-सादे मार्ग का परित्याग कर दिया।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने नदी की धारा से तुलना करते हुए जीवन की धारा का चित्ताकर्षक वर्णन प्रस्तुत किया है। भारतीय दर्शन-शास्त्र के अन्तर्गत आत्मा को अजर-अमर कहा गया है। तर्क द्वारा जीवन की अखण्डता से कोई अवगत होना चाहे तो वह उसकी भूल है। वह तर्क के बल पर जीवन की अखण्डता से परिचित नही हो सकता। उपनिषदों में भी इस भाव को निम्न प्रकार से व्यक्त किया गया है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

जीवन की अमरता के विषय में श्रीमद्भागवद्गीता में इस प्रकार वर्णित किया गया है—

न जायते म्रियते वो कदोचित्
नाग्रम भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

कविवर पन्त ने भी जीवन के अखण्ड प्रवाह की तुलना नदी की अविच्छिन्न प्रवाहित धारा से की है। पंतजी के शब्दो में देखिए :

इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास।
हे जगजीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-तरण के आर-पार,
शाश्वत जीवन नौका-विहार।

सुख-दुःख के रूप को 'धूप-छाँह' के बिम्ब द्वारा प्रदर्शित किया गया है। सुख-तथा दुःख—इस संसार में सभी पर आते रहते हैं। एक विद्वान ने लिखा है—

"चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि दुःखानि च"

अर्थात् रथ के पहिए के समान मानव-जीवन में सुख एवं दुःख क्रम से आते रहते हैं। अतः प्रसादजी ने दोनों के सम्पृक्त रूप को ही जीवन को धारा का अंग स्वीकार किया है।

(३) अलंकार—(i) रूपक—'जीवनधारा', 'सुख-दुःख की धूप-छाँह'।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—'लहर' तथा 'तारा'

चेतनता का भौतिक ... ... जाग जाग।

शब्दार्थ—चेतनता=चेतनाशील प्राणी। भौतिक विभाग=श्रम के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में किया गया विभाग अथवा विभाजन। विराग=विरक्ति। चिति=चेतना शक्ति। नित्य=स्थायी। नृत्य=नर्तन; चक्कर लगाना। निरत=लीन। सतत्=लगातार; सदैव। झंकृत=झंकार उत्पन्न होना।

व्याख्या—श्रद्धा इड़ा को सम्बोधित करते हुए कहती है—समस्त प्राणियों के अन्दर चेतना एक समान रूप से रहती है। इसी कारण सभी एक समान हैं। परस्पर एक रूप हैं—उनमे छोटे-बड़े का कोई किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं है, किन्तु तुमने श्रम के आधार पर अपनी समूची प्रजा को ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्गों में विभाजित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उन समस्त प्राणियों में ऊँच-नीच की भावना उत्पन्न हो गई। इसके साथ ही पारस्परिक मेल-जोल की भावना नष्ट होती चली गई और उन सभी को उदासीनता की प्रवृत्ति ने आक्रान्त कर लिया। इस प्रकार उनका पारस्परिक प्रेम विनष्ट हो गया। यह संसार नित्य, शाश्वत एवं सत्य रूप है—यह संसार उसी नित्य, शाश्वत एवं सत्य से युक्त चेतना-शक्ति का ही स्वरूप है। इस संसार की रचना अणुओं तथा परमाणुओं से हुई है। कणों, अणुओं और परमाणुओं के परस्पर मिलने और वियुक्त होने के कारण यह संसार भिन्न-भिन्न रूपों में बनता और बिगडता रहता है। इस संसार के शत-शत रूपो में परिवर्तन होने का यही कारण है। अणु-परमाणुओं के कणों का कार्य अबाध गति से चलता रहता है और ये अनेक रूपों में परिवर्तित होते हुए भ्रमण करते रहते हैं। यद्यपि इस संसार मे परिवर्तनशीलता है तथापि इसमे आनन्द एवं उत्साह सदा विद्यमान रहता है। यहाँ सदा मधुर झंकार ही केवल कर्णगोचर होती रहती है कि जागो अर्थात् इस संसार की अभिन्नता तथा अखण्डता को समझो, तभी इस संसार के वास्तविक स्वरूप से सुचारु रूप मे अवगत हो सकोगी।

विशेष—(१) प्रसादजी ने यहाँ इस संसार को चेतना-शक्ति के स्वरूप में अभिहित किया है। उसे शाश्वत, नित्य एवं सत्य रूप बतलाया है। '[illegible]-हृदयम्' में इस विषय का वर्णन इस प्रकार है—"ननु जगदपि [illegible]

किंचित्, अभेदे च कथं हेतुहेतु मदभाव: ? उच्यते ! चिदेव भगवती स्वच्छ स्वतंत्र रूपा तत्तदन-जगदात्मना स्फुरति।" इसी प्रकार सोमानन्द जी ने 'शिव दृष्टि' में भी लिखा है :

आत्मैव सर्वभावेषु स्फुरन्नि वृत्तिमद्विभु:
अनिरुद्धेच्छा प्रसर: प्रसरद् दृक् क्रिया : शिव: ॥

जिस प्रकार निर्मल दर्पण मे भूमि, जल आदि के प्रतिबिम्ब दिखलाई देते हैं, उसी प्रकार सृष्टि के रूप में बिम्ब रूपिणी चिति का ही स्वरूप दिखलाई देता है। वह चिति बिम्ब है और यह जगत् प्रतिबिम्ब है और जिस प्रकार मुख से भिन्न मुख का प्रतिबिम्ब नही होता उसी तरह यह समूचा संसार भी उस संविदात्मा चिति से किसी प्रकार पृथक् नहीं है। माहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में इस प्रकार उल्लेख किया है—

निर्मले मुकुरेयद्वद् भान्ति भूनिजलादय: ।
अभिश्रारतद्वदेक स्मिश्चिन्नार्थ विश्ववृत्तय: ॥
तदेवमुभयाकोरभव मासं प्रकाशयन् ।
विभाति वरदो बिम्ब प्रतिबिम्ब दृशाखिले ॥
तेन संवित्ति मुकुरे विश्वमात्मानमर्पयत् ।
नाथस्य वदतेऽमुष्य विमलां विश्वरूपताम् ॥

स्वामि विवेकानन्द के कथनानुसार सम्पूर्ण जगत् का विस्तार उस ईश्वर से हुआ है। ईश्वर ही जगत् बन जाता है और अन्त में जगत् उसी में समाहित हो जाता है। अत: यह समष्टि जगत् एक निरपेक्ष अखण्ड सत्ता है और जड पदार्थ, मन, आत्मा मे कोई अन्तर नही है। वे सब एक ही ईश्वर की अनुभूति विभिन्न पहलू मात्र हैं।

मै लोक अग्नि में ... ... **कर कर्म कान्त।**

शब्दार्थ— लोक अग्नि = ताप त्रय, आधिदैविक, आधिभौतिक, आधिदैहिक—तीन प्रकार के तापों की अग्नि। तप = जलना। प्रशान्त = शान्त। जलती छाती = वेदनायुक्त हृदय। दाह = अग्नि, वेदना। निधि = भण्डार। मानव = श्रद्धा का पुत्र। राह = पथ। सौम्य = सुमधुर एव शान्त स्वभाव वाला। सुखद = सुखदायी। विनिमय = बदलना। कान्त = सुन्दर।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि जिस प्रकार से कोई यज्ञ-वेदिका के पास आसीन होकर आनन्द एवं परम प्रसन्नता—शान्ति की मुद्रा में आहुति देती हुई

तत्पश्चर्या करती है, उसी प्रकार मैं भी इस संसार के तीनों तापों—दैहिक, दैविक और भौतिक की अनल मे परम शान्ति एवं आनन्दपूर्वक सर्वस्व होमती हुई तपश्चर्या करती हूँ। कहने का आशय यह है कि मैं भी उस तपस्विनी के समान लोक कल्याण के लिए निःस्वार्थ भावना से सर्वस्व अर्पित कर देती हूँ—मैं इसमें परम आनन्द की अनुभूति करती हूँ। एक तुम हो जो मुझे क्षमा भी नही कर रही हो और उल्टे मुझसे कुछ लेने की अभिलाषा कर रही हो। तुम मुझे वेदना-युक्त हृदय की जलन के रूप में दृष्टिगोचर हो रही हो। मेरे पास तो केवल एक ही निधि है, मैं इसी को तुम्हारे लिए अर्पित करती हूँ। कहने का आशय यह है कि मेरा तो एक प्रिय पुत्र कुमार है—मैं इसी को तुम्हारे लिए सौंपती हूँ। मै अपनी राह लेती हूँ अर्थात् मैं अपने मार्ग पर बढती रहूँगी और मनु को खोज लूँगी। इतना कहने के बाद श्रद्धा ने अपने प्रिय पुत्र कुमार से कहा कि हे मधुर एवं शान्त स्वभावयुक्त वत्स ! अब तुम यहाँ पर ही इनके साथ रहो। तुम अपने सुन्दर एवं शान्त विचारो एवं श्रेष्ठ कल्याणदायी कार्यों को सारस्वत नगर के समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए अर्पित कर दो।

विशेष—(१) यहाँ श्रद्धा की लोक-कल्याणमयी भावना की झांकी प्रस्तुत की गई है। लोक-कल्याण के लिए श्रद्धा अपने प्रिय पुत्र को समर्पित करने में तनिक भी संकोच का अनुभव नहीं करती।

(२) यहाँ प्रसादजी ने 'अग्नि' के बिम्ब द्वारा ताप का, 'आहुति' के बिम्ब द्वारा कष्टों के सहन का, 'दाह' के बिम्ब द्वारा हृदय की जलन का तथा 'निधि' के बिम्ब द्वारा श्रद्धा-पुत्र कुमार का चित्ताकर्षक वर्णन किया है।

(३) अलंकार—(i) निरंगरूपक—'जलती छाती की दाह'।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—'लोक अग्नि', 'आहुति' तथा 'निधि'।
(iii) परिकरांकुर—'सौम्य'।

तुम दोनों देखो ... ... सुयश गीति।

शब्दार्थ—राष्ट्रनीति=राष्ट्र व्यवस्था; राष्ट्र नियम। भीति=भय। मरु=रेगिस्तान। नग=पर्वत। छली=छल (कपट, धोखा) करने वाला। प्रेमपली=प्रेम में लीन। रीति=परिपाटी; ढंग। सुयश गीति=यशोगान।

व्याख्या—श्रद्धा इडा तथा अपने पुत्र कुमार से कह रही है कि अब तुम दोनों मिलकर राष्ट्र की नीतियों का निर्धारण करके शासन का एक सुव्यवस्थित

रूप प्रदान करो। इस सम्बन्ध मे एक विशेष बात ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि शासन में किसी प्रकार का भय उत्पन्न मत करना, कारण भय द्वारा चलाया गया शासन स्थायी एवं सच्चा नहीं होता। तुम एकजुट होकर प्रजा के मन पर विजय प्राप्त करने का यथासम्भव प्रयास करना। मैं नदी, रेगिस्तान, पर्वत अथवा कुंज-गलियो मे मनु को खोजने जा रही हूँ। मुझे आशा है कि मैं मनु को खोज लेने में सफलता प्राप्त करूँगी और वैसे ही मनु के स्वभाव में सरलता है और वे इतने कपटी अथवा धोखा देने वाले नही हैं। मेरे हृदय में मनु के प्रति अगाध प्रेम है। मैं इस ओर भी दृष्टि रखूँगी कि तुम्हारे द्वारा शासन को किस प्रकार से व्यवस्थित रूप प्रदान किया जा रहा है तथा तुम्हारे द्वारा नीतियों को किस प्रकार से व्यावहारिक रूप प्रदान किया जा रहा है। अपने प्रिय पुत्र कुमार को सम्बोधित करती हुई श्रद्धा कह रही है कि तुम्हें आशीर्वाद के रूप में यही कहना है कि तुम्हारे द्वारा ऐसे कल्याणकारी एवं सुखद कार्य किये जावें, जिससे तुम्हारा यशोगान सर्वत्र प्रसारित हो।

विशेष—यहाँ प्रसादजी ने बतलाया है कि शासन का सच्चा रूप प्रजा के मन को आनन्दित करना है—उसे हर प्रकार से प्रसन्न रखने में ही शासक वर्ग का कल्याण है। भय अथवा आतंक द्वारा शासन स्थापित करने से कोई अच्छा परिणाम नही निकलता। इसके साथ ही इस प्रकार के शासन में स्थायित्व नहीं होता। रीतियो-नीतियो तथा परम्पराओ के समुचित निर्धारण एवं पालन में लोक-कल्याण की दृष्टि सर्वोपरि होनी चाहिए। रामराज्य इन्ही सब कारणों से प्रजा के लिए सब प्रकार से मंगलमय था। रामराज्य में किसी प्रकार का कष्ट प्रजा के लिए नही था। पारस्परिक मेल-जोल की भावना समस्त प्रजाजन में व्याप्त थी। प्रजा के कल्याण मे ही शासक का कल्याण निहित होता था। तुलसीदास के शब्दों में—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज्य काहू नहि व्यापा॥

बोला बालक ... ... ·· फिर यही क्रोड़ ।

शब्दार्थ—ममता=वात्सल्य भाव। जननी=माता। मुंह न मोड़=उदासीन भाव न रखो; बेरुखी मत करो। प्रण=प्रतिज्ञा। वरदान=मंगलमय। क्रोड़=गोद; अंक।

व्याख्या—श्रद्धा का पुत्र कुमार अपनी माँ की बातों को सुनकर कहने लगा—हे माता! तुम मेरे प्रति वात्सल्य भाव को इस प्रकार न ठुकराओ। मेरे

साथ तुम उदासीनता की भावना हृदय में मत लाओ। तुम्हारे द्वारा मुझे त्यागना अच्छा नहीं प्रतीत हो रहा। मैं तो आपकी आज्ञा का सदा पालन करता रहा हूँ। आपने मेरे प्रति स्नेह दिया है—मै आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर आपके स्नेह के सम्वल से यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं यथासंभव अपनी प्रतिज्ञा का यथासाध्य पालन करूँगा, चाहे मैं जीवित रहूँ या मर जाऊँ। किसी भी दशा मे मैं अपने किए गए प्रण का त्याग नही करूँगा। आपके शुभ वरदान के स्वरूप मेरा जीवन-कल्याणमय वने—यही मेरी आकांक्षा है। मुझे छोड़कर आप यहाँ से जा रही हो तो मेरी यही कामना है कि आपके द्वारा बतलाए गए कार्य को पूर्ण करने के पश्चात् मुझे आपकी यही गोद पुनः मिले, जिसमे मुझे इतना अधिक परमानन्द, ममता एव परम सुख प्राप्त हुआ है।

विशेष—(१) आज्ञाकारी पुत्र के रूप मे कुमार का चित्रण सुन्दर ढंग से किया गया है। कुमार जैसे आज्ञाकारी पुत्र के लिए माता की आज्ञा बहुत महत्त्व रखती है। फलतः वह अपनी आनन्ददायिनी माता से पृथक् होने तथा निर्दिष्ट कार्यो की पूर्ति के लिए उद्यत हो जाता है। माता की गोद कितनी सुखदायिनी है, इसकी अनुभूति कुमार के अन्तस् मे व्याप्त है—यही कारण है कि वह माता की सुखद गोद पुनः प्राप्त करने के लिए कामना करता है। प्रतिज्ञा पालन ही उसके जीवन का अभीष्ट है।

(२) 'मुँह मोड़ना' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(३) अलंकार—मानवीकरण—'स्नेह सदा करता लालन'।

हे सौम्य! इड़ा ... ... माँ की पुकार॥

शब्दार्थ—शुचि=पुनीत; पवित्र। दुलार=प्यार; स्नेह। व्यथा=वेदना। भार=वोझ। श्रद्धामय=श्रद्धा अथवा आस्था से परिपूर्ण। मननशील=चिन्तन से युक्त। अभय=भय-रहित; निर्भय। निचय=समूह। समरसता=एकाकारिता; एकरूपता। पुकार=इच्छा; मन की चाह।

व्याख्या—श्रद्धा अपने पुत्र कुमार को सम्वोधित करते हुए कहने लगी कि हे वत्स! तुम सौम्य स्वभाव हो। मेरे विछोह के कारण यहाँ तुम्हे जो व्यथा-वेदना होगी, उसका भार इड़ा का दुलार-प्यार निवारण कर देगा। कहने का तात्पर्य यह है कि इड़ा के प्यार से तुम्हे कष्ट की अनुभूति नही होगी। इड़ा तर्क से परिपूर्ण है—अर्थात् इड़ा प्रत्येक सत्य बात की तर्क द्वारा जाँच करती है और हे पुत्र! तुझ में आस्था भरी हुई है अर्थात् तू तर्क के चक्कर में न पड़कर

लगे। दूसरे शब्दों में, नगर की शासन-व्यवस्था विषयक विभिन्न विचारों को समन्वित कार्यरूप में परिणत करने के लिए वे आन्तरिक सामीप्य की अनुभूति करने लगे।

विशेष—(१) कविवर प्रसाद ने श्रद्धा के हार्दिक औदार्य की अतिशयता का निरूपण किया है। इसके साथ ही उसके मनोभावों का व्यापक प्रभाव भी दर्शाया गया है, जिसमें भिन्न स्वभाव वाले व्यक्तियों में भी वैचारिक एकता का उदय हो जाता है—सौमनस्य स्थापित हो जाता है, फिर किसी प्रकार के कलह-द्वेष का हृदय में अवकाश ही नही रहता।

(२) जलकण आघात प्राप्त कर इधर-उधर बिखर जाते हैं, क्षणान्तर में वे लहरों में बदलकर प्रवाहित होने लगते हैं—वे अपने मूलरूप का त्याग कुछ ही क्षणों के लिए करते हैं, पुनः उसी अपने मूलरूप में समाहित हो जाते हैं—इससे जीवन की सतत प्रवहमान धारा की ओर इंगित किया गया है। इसी प्रकार उन दोनों के हृदयों के सम्मिलन का मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है।

(३) अलंकार—(i) श्लेष—जीवन।

(ii) दृष्टान्त—समस्त पद मे।

निस्तब्ध गगन था ... ... दीन ध्वान्त।

शब्दार्थ—निस्तब्ध=शान्त; शब्दहीन। असीम=निस्सीम आकाश। कान्त=सुन्दर। शून्य बिन्दु=शून्य की आकृति के सदृश बिन्दु (बूंदें)। व्यथिता=दुःखिनी। श्रमसीकर=श्रम के फलस्वरूप पसीने की बूंदे; स्वेदबिंदु। झरना=झड़ना; गिरना। दीन=दुःख एवं दीनता से परिपूर्ण। ध्वान्त=अन्धकार।

व्याख्या—कवि प्रसाद प्रस्तुत पद में रजनी के शान्तिमय रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस समय आकाश में पूर्ण रूप से शान्ति छाई हुई थी। समस्त दिशाओं में भी शान्ति छाई हुई थी। उस समय निस्सीम आकाश का परम सुन्दर एवं आकर्षक चित्र दिखलाई दे रहा था। आकाश रूपी हृदय पर तारों के रूप में शून्य की-सी आकृति धारण किए हुई बूंदें ऐसी दिखलाई दे रही थी, जिस पर संतप्त एवं श्रान्त रात्रि के शरीर पर पसीने की बूंदें झलक रही हों। न जाने रात्रि के शरीर पर ये श्रम-बिंदु कब और कैसे झलक आए; विशेष बात यह थी कि वे बूंदें झलक तो रहीं थी, किन्तु झड़कर गिर नही रही थीं। पृथ्वी घोर अन्धकार की छाया से आवृत्त थी जिसमें कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं हो

रहा था। अनेक वृक्षों से युक्त सरस्वती नदी का समीपवर्ती प्रान्त विषादपूर्ण गहन अन्धकार को चतुर्दिक बिखेर रहा था।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने रजनी की निस्तब्धता का सुन्दर निरूपण किया है। उस समय प्रस्तुत विषादपूर्ण अन्धकार की गहनता पर प्रकाश डाला गया है। शून्य सदृश आकार वाली बूँदों को तारों के रूप में तथा रजनी के श्रमसीकरों के रूप में दर्शाया गया है, जो अतीव मर्मस्पर्शी बन पड़ा है।

(२) अलंकार—(i) गम्योत्प्रेक्षा—'श्रमसीकर'।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—'शून्य बिंदु'।
(iii) मानवीकरण—समस्त पद में।

शत शत तारा ... ... जाती तुरन्त।

शब्दार्थ—शत-शत=सैकड़ों; अनेक। मण्डित=शोभित। अनन्त=आकाश। कुसुमों=फूलों। स्तवक=गुच्छा। ऊपर का विश्व=आकाश लोक। पूरित=भरा हुआ। माया सरिता=आकाश गंगा। किरनों की=तारों की किरणें। लोल=चपल, चचल। निचले स्तर पर=आकाश से अधोवर्ती (नीचे की ओर)। दुरन्त=भयावनी। छाया दुरन्त=गहन एवं भयप्रद अंधकार। तुरन्त=शीघ्र।

व्याख्या—रात्रि के भव्य रूप के विषय मे प्रसादजी कह रहे हैं कि उस समय निस्सीम आकाश सैंकडों तारों से ऐसा विभूषित हो रहा था जैसे सुविकसित पुष्पों के गुच्छों के फलस्वरूप आकाश मे वसन्त शोभित हो रहा हो। इसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इन तारों ने आकाश-लोक को अपने द्वारा एक सुन्दर एवं चित्ताह्लादक हास से परिपूर्ण कर दिया है तथा तारों के मंद प्रकाश से आकाश का हृदय भर गया है। ऊपर एक आकाश सरिता भी प्रवाहित हो रही थी जिसमें से तारो की किरणों की चपल तरंगें ऊपर की ओर उठती हुई दिखलाई दे रहीं थीं। इस आकाश के निम्नवर्ती भाग में रात्रि के गहन एवं भयप्रद अधकार की छाया फैली हुई थी। अंधकार की छाया रात के घिरते ही न जाने कब चुपचाप आ जाती थी और चुपके से प्रातः काल हो जाने पर शीघ्र ही खिसक जाती थी।

विशेष—(१) यहाँ 'कुसुमों का स्तवक' के माध्यम से तारों से विभूषित अनन्त के सौंदर्य का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त 'माया

सरिता' के बिम्ब के माध्यम से आकाश गंगा का मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। प्रसादजी की बिम्ब योजना अपने में अनूठापन लिए हुए होती है।

(२) अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति —'माया-सरिता, 'दुरन्त छाया';
(ii) रूपक—'किरनों की लोल लहर'।
(iii) मानवीकरण—'हंसता ऊपर का विश्व मधुर'।
(iv) गम्योत्प्रेक्षा...'शत-शत ' वसन्त'।

सरिता का वह... ... ...अम्लान फूल।

शब्दार्थ—सरिता=नदी; सरस्वती। एकान्त=जनहीन। कूल=तट। पवन=वायु। हिंडोले झूल रहा था=मद-मंद गति से प्रवाहित हो रहा था। दल=समूह। ओझल=दृष्टि से परे। छप-छप=विशेष ध्वनि। दीप्ति=प्रकाश। तरल=प्रकाशयुक्त। संसृति=रात्रिकालीन शान्त रूप। गंध-विधुर=गंध हीन; गंध रहित। अम्लान=मुरझाया हुआ।

व्याख्या—श्रद्धा सरस्वती नदी के किनारे के सहारे-सहारे आगे बढ़ती हुई उस नदी के जनशून्य तटवर्ती स्थान पर पहुँची जहाँ वायु हिंडोले झूल रहा था अर्थात् वायु वहाँ मन्दगति से प्रवाहित हो रही थी। उस नदी के जल से उठने वाली लहरें किनारे से टकराकर विलुप्त हो रही थीं। किनारों से लहरों के टकराने के फलस्वरूप 'छपछप' की ध्वनि ठहर-ठहर कर उत्पन्न हो रही थी। उस नदी के जल में प्रतिविंबित तारों का प्रकाश चपल तरंगों में थर-थर कम्पायमान-सा दृष्टिगोचर हो रहा था। समूचा विश्व उस रात्रि के घने अंधकार मे लीन होकर सोया-सा तथा गंधहीन मुरझाए फूल-सा प्रतीत हो रहा था।

विशेष—(१) नदी के तटवर्ती निर्जन स्थान के वर्णन मे प्रसादजी की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। 'गंध विधुर अम्लान फूल' के बिम्ब के माध्यम से सुन्दरता से विहीन विश्व का अच्छा चित्र खीचा गया है।

(२) अलंकार—(i) मानवीकरण—'था पवन···विधुर'।
(ii) गम्योत्प्रेक्षा—'संसृति अपने···फूल'।
(iii) पुनरुक्ति—'धीरे-धीरे'।

तब सरस्वती-सा ··· ··· ··· ··· ले रहा सांस।

शब्दार्थ—शिला लग्न=शिला में जड़े हुए। अनगढ़े रत्न=बिना गढ़े

हुए। नयन=नेत्र। तम=अन्धकार। निस्वन=ध्वनि। गुहा=गुफा। लता-वृत्त=लता-वेलों से आच्छादित।

व्याख्या—सरस्वती नदी की उस रात्रि मे जन-शून्य तट पर पहुँचकर श्रद्धा ने नदी की सन्‌सन की ध्वनि को सुना। श्रद्धा ने इधर-उधर आस-पास देखा कि उसी साँय-साँय की ध्वनि की भाँति ही किसी जीवित व्यक्ति की गहरी और लम्बी-लम्बी साँसो से भी साँय-साँय की आवाज सुनाई दे रही थी। अवधानपूर्वक श्रद्धा ने जव दृष्टिपात किया, तव उस व्यक्ति के दो खुले नेत्र ज्योति विखेरते हुए दिखाई दिए जैसे वे दोनों नेत्र विना काटे तथा छाँटे हुए दो रत्न-शिला में जड़ दिए हों। ऐसे गहन अन्वकार में सन्‌सन की ध्वनि को सुनकर श्रद्धा के हृदय में परम आश्चर्य हुआ कि इस समय रात्रि के घने अन्वकार में इस निर्जन स्थान पर भी ऐसा कौन व्यक्ति है, जो इस प्रकार से स्वर निकाल रहा है। उसके हृदय में पुनः यह विचार उठा कि कही संभवतः यह नदी का ही स्वर हो, किन्तु नहीं, श्रद्धा जव निकट पहुँची, तो उसका सन्देह दूर हो चुका था। उसने देखा कि लताओं से आवृत्त एक कन्दरा के पास कोई जीवित प्राणी ही विराजमान होकर लम्वी-लम्वी साँसें ले रहा था।

विशेष—(१) निर्जन एवं गहन अन्धकारपूर्ण स्थान पर प्राणी के मन में अनेक प्रकार के भ्रम उत्पन्न होना नितान्त स्वाभाविक है—यही वात श्रद्धा के विषय में भी कही जा सकती है। रात के अंधेरे में नदी की साँय-साँय की ध्वनि तथा जीवित व्यक्ति द्वारा ली जाने वाली लम्वी-लम्वी साँसों की ध्वनि—ये दो प्रकार की ध्वनियाँ किसी भी प्राणी के लिए सन्देह का पूर्णतः अवकाश तो देती ही हैं। अतएव श्रद्धा को पुनः यही भ्रम होता है कि संभवतः यह नदी का ही स्वर हो, किन्तु दो नेत्रों को निकट से देखने के उपरान्त उसका भ्रम पूर्णतः निवृत्त हो गया। इस प्रकार प्रसादजी ने श्रद्धा के विचारों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है।

(२) मनु के नेत्रों की सजीवता एवं वास्तविकता का निरूपण करने के लिए 'शिला लग्न अनगढ़े रतन' के विम्ब का सशक्त प्रयोग किया है।

(३) अलंकार—(i) पूर्णोपमा—'सरस्वती-सा'।

(ii) वस्तूत्प्रेक्षा—'शिला लग्न अनगढ़े रतन'।

(iii) ध्वन्यर्थ व्यंजना—'सन सन' तथा 'निस्वन'।

वह निर्जन तट ... ... विश्व मित्र।

शब्दार्थ—निर्जन=एकान्त। शैल शिखर=पर्वत की चोटियाँ। विश्व-मित्र=संसार के मित्र रूप में।

व्याख्या—सरस्वती नदी का वह जन-शून्य तट परम मनोहर एवं पवित्र था। वह एक चित्र के सदृश अंकित हुआ प्रतीत हो रहा था। उसके समीप पर्वत की ऊँची चोटियाँ थीं, किन्तु उन चोटियों से कही अधिक ऊँचा श्रद्धा का सिर दिखलाई पड़ रहा था, क्योंकि पर्वत की वे चोटियाँ जड़ थीं, जबकि श्रद्धा एक चेतन के रूप में थी। जड होने के नाते उन चोटियों में दया, ममता, क्षमा, सहनशीलता आदि सद्‌गुणों तथा मानव की सहजानुभूतियों का नितान्त अभाव था। उन्हें सुख-दुःख का कोई ज्ञान नही था। श्रद्धा सांसारिक तापों की अग्नि में जलकर और अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करती हुई, द्रवीभूत होती हुई सुवर्णमयी प्रतिभा के रूप में ढल गई थी। जिस प्रकार स्वर्ण को अग्नि में तपाकर गर्म किया जाता है, गलाया जाता है, तब उसे इच्छित सुन्दर साँचे में ढाला जाता है, उसी प्रकार श्रद्धा भी संतापों को सहती हुई सोने की प्रतिमा के रूप में मनु के सम्मुख उपस्थित हुई। श्रद्धा के ऐसे अनुपम और भव्य रूप को अपने सम्मुख उपस्थित होते देखकर मनु चिंतित हो उठे और सोचने लगे कि श्रद्धा का रूप कितना विचित्र एवं दिव्य है। यह कितनी अलौकिक नारी है। यह तो सपूर्ण विश्व की साकार मूर्ति है और लोक-मंगलकारिणी के रूप में है।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने श्रद्धा के जननी तथा लोक-हितैषिणी के रूप को विशेष रूप से चित्रित किया है। नारी में ममता का अभाव होता है—वह मातृहृदया होती है। उसमे अनेक कष्टों के सहन कर सकने की क्षमता होती है—वह लोक-कल्याण के लिए सर्वस्व समर्पित कर देती है। नारी का यह समुज्ज्वल रूप वस्तुतः अलौकिक है।

(२) 'अग्नि में तप गलकर बनी स्वर्ण प्रतिमा'—यह पंक्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

(३) अलंकार—(i) व्यतिरेक—'कुछ उन्नत···का सिर'।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—'लोक-अग्नि'।
(iii) परिकर—विश्वमित्र।
(iv) रूपक—स्वर्ण-प्रतिमा।

बोले रमणी ... ... मन का प्रवाह।

शब्दार्थ—रमणी=रमण करने योग्य। चाह=इच्छा। वंचिता=सब प्रकार से ठगी हुई। प्रवाह=बहाव, गति।

व्याख्या—मनु श्रद्धा से कहने लगे कि हे श्रद्धे! तुम एक ऐसी नारी के रूप में नही हो, जो मात्र भोग करने योग्य या रमण करने योग्य ही हो और जिसके मन में सदा काम-वासना की भावना ही व्याप्त रहती हो। तुम तो सर्व समर्पित कर देने वाली महान् नारी हो. फिर भी तुम सुखों से वंचित रही हो। तुमने अपना सर्वस्व लुटाकर और अहर्निश रो-कलपकर मुझे पुनः पा लिया। प्राणों पर तुले हुए सारस्वत नगर के जिन निवासियों से अपने प्राणों की रक्षा करने हेतु मैं भागकर आया था, तुम उन इड़ा और प्रजा के हाथ अपने प्रिय पुत्र कुमार को सौंप आईं। मुझे महान् आश्चर्य है कि पुत्र को सौंपते समय तुम्हारा यह कठोर हृदय तनिक भी पीडित नहीं हुआ। इस विषय में मैं तो यही सोचता हूँ कि तुम्हारे मन का प्रवाह विचित्र है।

विशेष—(१) प्रसादजी ने श्रद्धा के लोक-मंगलकारी, दया, त्याग एवं औदार्य का प्रदर्शन करने के लिए ही मनु द्वारा श्रद्धा के विषय में ऐसा विचार प्रकट कराया है। इसमे कोई सदेह नही है कि श्रद्धा भारतीय नारी के आदर्श की साकार मूर्ति है। नारी के 'रमणी' रूप के अतिरिक्त अन्य रूप भी किसी प्रकार से कम नही है। नारी को त्यागमयी माता, विश्व-जननी, विश्व-मित्र एवं लोक-हितैषिणी के रूप में बतलाया गया है। नारी के विभिन्न रूपों का दिग्दर्शन कराया गया है, किन्तु मनु जैसे स्वार्थी विचार वाले व्यक्तियो को नारी के मन की गति सदा विचित्र ही दृष्टिगोचर होती है।

ये श्वापद से ... ... से आह तीर।

शब्दार्थ—श्वापद=हिंसक जन्तु—सिंह, व्याघ्र आदि। शावक=पशु या पक्षी का छोटा बच्चा। हृत्तल=हृदय।

व्याख्या—मनु श्रद्धा से कहते हैं कि हे श्रद्धा! सारस्वत प्रदेश के समस्त निवासी वन्य पशुओ के समान हिंसक हैं और उन्हें किसी की हत्या करने में तनिक भी संकोच नही रह गया है। मेरा वह वीर बालक एक पशु या पक्षी के बच्चे के समान सुकोमल है। मैंने उस प्रिय पुत्र की वाणी सुनी थी। उसकी वाणी शीतलता, स्नेह, सरल-भाव से युक्त थी—उसकी वाणी में लेशमात्र भी छल न था। तुम्हारा अन्तस्तल कितना कठोर है कि तुम उसके हाथों अपने

प्रिय पुत्र को सौंप आई। तुम्हारे स्वभाव में वैसी ही धीरता है—भोलापन है। यही कारण है कि इड़ा तुमसे इस वार छल कर गई। ऐसे अवसर पर भी तुमने धैर्य का परित्याग नहीं किया। हाय! अब तो अवसर हाथ से निकल गया। हाथ से तीर छूट ही गया—ऐसी दशा में जो भवितव्य है—वह तो होकर ही रहेगा।

विशेष—(१) यहाँ पितृ-हृदय की वात्सल्य भावना से भरी उक्तियाँ मर्म-स्पर्शी हो उठी है। पितृ-हृदय का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रसादजी द्वारा यहाँ किया गया है।

(२) यहाँ हिंसक श्वापद के विम्ब के माध्यम से सारस्वत प्रदेश के निवासियों का तथा 'कोमल शावक' के विम्ब के माध्यम से सुकोमल कुमार का सुन्दर ढंग से निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त 'छुट गया हाथ से तीर आह!' में मुहावरे का प्रयोग विशेष रूप से अवलोकनीय है, जिसमे लाक्षणिकता का समावेश है।

(३) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

प्रिय! अब तक ... ... अस्पष्ट अंक।

शब्दार्थ—सशंक=शंकायुक्त। रंक=निर्धन। विनिमय=आदान-प्रदान। ऋण=कर्ज। धन=पूंजी; सम्पत्ति। स्वजन=कुटुम्बी लोग। निर्वासित=देश निकाला होना। लगे डंक=कष्टानुभूति करना। स्पष्ट अंक=स्पष्ट चिह्न।

व्याख्या—श्रद्धा ने मनु को उत्तर देते हुए कहा कि हे प्रिये! तुम्हारी बातों पर मुझे महान आश्चर्य है कि तुम्हारा हृदय अब तक नाना प्रकार की शंकाओं से व्याप्त है अर्थात् तुम्हे पग-पग पर इस प्रकार शंका करना उचित नहीं है। किसी के पास यदि कुछ है तो उसे देकर कोई दरिद्र नहीं हो जाता। मैंने इडा के लिए अपने पुत्र को सौंप दिया है और इसके वदले मे मैंने तुम्हें प्राप्त कर लिया है। इसे तुम आदान-प्रदान की संज्ञा से अभिहित कर सकते हो अथवा परिवर्तन भी कह सकते हो। तुम्हारे सारस्वत नगर से यहाँ चले आने तथा मेरे द्वारा वहाँ पुत्र के सौंपे जाने से अभाव की पूर्ति की जा रही है। दूसरे शब्दो में, हम यूँ कह सकते है कि पुत्र को वहाँ देकर आने से तुम्हारा वह ऋण पूजी का रूप ग्रहण कर रहा है। तुम्हारे द्वारा किया गया अपराध, जो तुम्हारे लिए तथा सारस्वत नगर की प्रजा के लिए बंधनस्वरूप था, आज सुयोग्य पुत्र द्वारा

शासन को सुव्यवस्थित रूप दिए जाने के फलस्वरूप मुक्ति के स्वरूप में परिवर्तित हो रहा है। स्वाभाविक है वहाँ शासन का सुव्यवस्थित रूप बन जाने के पश्चात् वहाँ की समस्त प्रजा तुम्हारे द्वारा हुए अपराध को विस्मृत कर देगी। अब जबकि तुम परिवार-जनों को छोड़कर देश से बाहर निकले हुए व्यक्ति के समान यहाँ चले आए हो वे तुम्हें पीड़ित नहीं करेंगे। अब तो यह भली प्रकार से स्पष्ट है कि तुम्हें आदान-प्रदान को व्यावहारिक रूप देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जो कुछ तुम्हारे पास है उसे तुम्हें आत्मीयों को देना चाहिए और उनसे जो कुछ भी मिले उसे तुम्हें हर्षित होकर ग्रहण करना चाहिए।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने आदर्श पुत्र का चित्रण किया है। सुपुत्र अपने पवित्र विचारों के अनुरूप लोक मंगलकारी कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है तो वह अपने पूर्वजों द्वारा किए गए अशुभ कार्यों के विषय में सोचने-विचारने का तनिक भी अवसर नहीं देता—सभी लोग भूल जाते हैं। सर्वत्र उसका यशोगान होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि जिस परिवार में एक सुपुत्र उत्पन्न हो जाता है तो वह अपने द्वारा किए गए सुकार्यों के कारण परम ख्याति प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त उसी के पूर्वजों द्वारा किए गए दुर्व्यवहारों एवं दुष्कर्मों के विषय में लोग भूल जाते हैं। सभी के द्वारा वह प्रशंसा का पात्र बन जाता है।

(२) 'डंक' के बिम्ब के माध्यम से वेदना का सुन्दर चित्रण हुआ है।

(३) अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—'डंक'।

(ii) विरोधाभास—'अपराध···मुक्ति'।

तुम देवि ! आह ··· ··· ··· ··· लघु विचार।

शब्दार्थ—निर्विकार=विकारहीन। सर्वमंगले=सबका कल्याण करने वाली। महती=महान्। निकर=स्थान। लघु=संकुचित; क्षुद्र।

व्याख्या—श्रद्धा का कथन सुनकर मनु आदरपूर्वक कहने लगे—हे देवि ! तुम हृदय से कितनी उदार हो। तुम तो विकारों से हीन मातृमूर्ति हो जिसके हृदय में समूचे विश्व के प्रति वात्सल्यभाव विद्यमान है। समूचे विश्व के कल्याण की अभिलाषिणी ! तुम वास्तव मे महान् हो ! तुम समस्त प्राणियों के कष्टों को स्वयं सहन कर लेती हो, तुम सदैव सभी को सुखी रखने की सतत् चेष्टा करती हो और सबसे मधुर एवं सुखद वाणी में बोलती हो। तुम विरोधी व्यक्तियों के प्रति भी समान व्यवहार रखती हो। उनके अपराधों को तुम क्षमा

कर देती हो। इससे प्रतीत होता है कि तुम्हारा निवास क्षमा रूपी गृह में है। तुम्हारे हृदय में दूसरों के दुःखों से द्रवीभूत होने की भावना विद्यमान है। तुम्हारे इस भव्य एवं अनुपम रूप को देखकर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि मैं अभी भूल में ही हूँ—मैं अपने को भुला बैठा हूँ। मैंने तो तुम्हें अब तक मात्र नारी के रूप मे ही समझा था किंतु अब मैं यह सुचारु रूप से समझ पाया हूँ कि तुम महान् हो और तुम्हें केवल नारी के रूप मे समझने का मेरा विचार क्षुद्र था।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ श्रद्धा के मातृ रूप का चित्रण किया है। 'त्रिपुर रहस्य' मे वर्णित विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। वहाँ भी श्रद्धा का वर्णन इस प्रकार से है:

श्रद्धा माता प्रपन्नं सा वत्सलेव सुते सदा।
रक्षति प्रौढ़भीतिभ्यः सर्वथा न हि संशयः।
श्रद्धा हि जगतां धात्री श्रद्धा सर्वस्व जीवनम्।
अश्रद्धे मातृ विषये बालो जीवते कथं वद्॥

इसके अतिरिक्त प्रसादजी ने कामायनी मे अनेक स्थलों पर श्रद्धा के लिए कल्याण-भूमि, अमृतधाम, संसृति का व्यापक रहस्य, विश्वमित्र आदि शब्दों का प्रयोग किया है जिससे प्रतीत होता है कि प्रसादजी ने मानव-जीवन में श्रद्धा को सर्वोपरि माना है। सृष्टि का मूल कारण काम है। कामपुत्री होने के नाते श्रद्धा सृष्टि के विकास में एक प्रकार से सर्वोपयुक्त उपादान है।

(२) अलंकार—(i) रूपक—'क्षमा निलय'।
(ii) परिकर—'सर्वमंगले'।
(iii) उपमा—'नारी—सा ही'।

मैं इस निर्जन··· ··· ··· ··· ···बन घुसा तीर।

शब्दार्थ—अधीर=बेचैन; व्यग्र। तीखा समीर=तेज वायु। भावचक्र=भाव रूपी चक्की। सत्ता=अस्तित्व। लघुता=क्षुद्रता; तुच्छता। वक्ष=छाती। अनुशय=वैर।

व्याख्या—मनु श्रद्धा को सम्बोधित कर कहते है कि हे श्रद्धे! मैं सरस्वती के इस निर्जन तट पर अत्यन्त व्यग्र होकर भूख, वेदना तथा तीव्र वेग वाली वायु के झोकों को सहन करता हुआ तथा अपने नाना प्रकार के भावों की चक्की मे पिसता हुआ आगे ही बढ़ता चला आया हूँ। मैंने जीवन में अपने द्वारा की गई त्रुटियो या भूलो के विषय में सोचा ही नही। जिस प्रकार व्यक्ति के हृदय में

अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते है और उनका कोई अस्तित्व न होने के कारण वे झट से विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार मैं अपना सर्वस्व लुटाकर शून्य के समान रह गया हूँ अर्थात् मेरा व्यक्तित्व अब कुछ नही रह गया है। यदि तुम मेरी छाती को चीरकर देखो, तो तुम वास्तविकता से अवगत हो सकोगी। वास्तविकता यह है कि सारस्वत नगर से चुपके से यहाँ मेरे भाग आने का कारण मेरी तुच्छता नही है—यह मेरा ओछापन नहीं है। मैंने वहाँ से भागकर यहाँ आने में अपराध अवश्य किया है, किन्तु इसका मूल कारण मेरी क्षुद्रता नही है। वास्तविक कारण तो यह है कि मेरे अन्तस् में जो एक प्राचीन वैर तीर के समान घुसा हुआ था, बस, इसी कारण मुझसे यह भूल हुई है अन्यथा वहाँ तुम्हें त्यागकर यहाँ भाग आने की मेरी कोई इच्छा नही थी। तात्पर्य यह है कि हे श्रद्धे! तुम मेरी लघुता देखने का प्रयास न करो। तुम तो महिमामयी हो, अनुरागिनी हो। अतः तुम मेरी ओर कृपा दृष्टि रखो।

विशेष—(१) मनु ने सारस्वत नगर से यहाँ भागकर आने का कारण प्राचीन वैर (अनुशय) बतलाया है—इसके विषय में निर्वेद सर्ग में भी स्पष्टतः संकेत किया गया है। मनु का कथन है कि मेरा हृदय प्रतिशोध एवं प्रतिहिंसा से जल रहा है, परन्तु श्रद्धा के रहते हुए मैं बदला नही ले सकता। इसलिए अब जहाँ भी मुझे शान्ति मिलेगी उसे वही खोजता हुआ मैं जा रहा हूँ—

और शत्रु सब, ये कृतघ्न फिर इनका क्या विश्वास करूँ।
प्रतिहिंसा, प्रतिशोध दबाकर मन-ही-मन चुपचाप मरूँ।
श्रद्धा के रहते यह संभव नहीं कि कुछ कर पाऊँगा,
तो फिर शान्ति मिलेगी मुझको जहाँ, खोजता जाऊँगा।

(२) 'चक्र' के बिम्ब के माध्यम से भावों का उद्वेलन एवं 'तीर' के बि—के माध्यम से प्राचीन वैर का सुन्दर चित्रण किया गया है।

(३) अलंकार—(i) रूपक—'भावचक्र' तथा 'जिसमें · तीर'।
(ii) उपमा—'विकार-सा'।

प्रियतम! यह नत ··· ··· ·· तुम्हारी, सत्य बात

शब्दार्थ—नत=नम्र, मधुर। निस्तब्ध=शान्त; शब्दहीन। बिगत बात बीती हुई बातें। प्रलय=देवजाति की सृष्टि का नाश करने वाली प्रलय सम्बल=सहारा। निश्छल=कपट रहित। शान्तिप्रात=शान्ति रूपी प्रात काल।

व्याख्या – मनु की परितापयुक्त बातें सुनकर श्रद्धा उनसे बातें करती हुई कहने लगी—हे प्रियतम ! आज शब्दहीन एवं झुकी हुई (मधुर) रजनी मुझे अपने जीवन की पिछली घटनाओं का पुनः स्मरण करा रही है। देवसृष्टि की विनाशकारी प्रलय की शान्ति हुई थी, उस समय मैंने अपना जीवनरूपी आश्रय (सर्वस्व) तुम्हारे चरणों में कपट रहित भाव से (विशुद्ध मन से) समर्पित किया था। मैं तुम्हारी हो गई थी। अभी मेरी स्मरण-शक्ति क्षीण नहीं हुई है अर्थात् मुझे भली प्रकार से स्मरण है। यह अवसर अपने को क्षुद्र समझने एवं पश्चात्ताप करने का नहीं है। जिस प्रकार अन्धकार ने परिपूर्ण रात्रि के प्रकाश से युक्त प्रात.काल होता है, उसी प्रकार जीवन की सामरस्यपूर्ण भावों के धरातल पर चलें, जहाँ अनेक प्रकार के कष्टों से मुक्त होकर शान्ति प्राप्त हो सके। यह बात सत्य है कि मैं नित्य ही तुम्हारे साथ रहूँगी – मैं तुम्हारी ही हूँ।

विशेष—(१) प्रसादजी ने श्रद्धा के भार्या रूप का चित्रण सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। भार्या अपने पति के सम्मुख सर्वस्व समर्पित कर, उसे सर्वोपरि मानकर तथा उसकी त्रुटियों पर ध्यान न देकर सर्वदा उसके कल्याण की ही कामना करती है। नारी के भार्या रूप का उल्लेख महाभारत में हुआ है। उसे गृहकुशल, प्रजावती, पतिव्रता, पतिपरायणा आदि और यहाँ तक धर्म, अर्थ, काम पदार्थों के मूल रूप में चित्रित किया है—

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या प्रतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता॥
अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः॥
भार्यावन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः।
भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्त श्रियान्विताः॥

—महाभारत, आदि पर्व, ७४/४०-४२

(२) अलंकार—रूपक—'शान्ति प्रात'।

इस देव द्वन्द्व ... ... है पड़ी लीक।

शब्दार्थ—देवद्वन्द्व = देव दम्पत्ति; श्रद्धा तथा मनु। प्रतीक = चिह्न। विष = फूट, कलह। कर्मोन्नति = शुभ कर्मों द्वारा प्राप्त उन्नति। सम = समान। मुक्त = स्वतन्त्र। रहस्य = गूढ़। शुभ संयम = संयमपूर्ण जीवन। अलीक = असत्य। लीक = परिपाटी, परम्परा।

व्याख्या—श्रद्धा मनु को सम्बोधित कर कहती है कि हम दोनों (श्रद्धा एवं मनु) का पुत्र मानव हमारे प्रतिनिधि के रूप में है। वह अपनी सुयोग्यता एवं विश्वास के द्वारा उन समस्त भूलों तथा त्रुटियों का सुधारक होगा जो सारस्वत प्रदेश में हुई हैं। इसके साथ वहाँ पारस्परिक कलह, द्वेष, भौतिक सुखों की लिप्सा तथा भेद भिन्नता रूपी भयावह विष का जो प्रसार हो रहा है—वह अपने सत्कर्मों द्वारा प्रजा को अपने अनुकूल बनाते हुए तथा उसमें सौमनस्य की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित करते हुए उस विष को दूर कर सकेगा। इस प्रकार सारस्वत नगर के वे समस्त निवासी सर्व प्रकार के कष्टों से वस्तुतः मुक्त हो जाएँगे। फलतः उनके अतिरिक्त अथवा आन्तरिक भ्रम का निवारण स्वतः हो जावेगा। वे यह भली प्रकार से समझ सकेंगे कि संयमित जीवन तथा शुभ-कर्मोन्मुखी प्रवृत्ति ही सफलता की कुंजी है। उनके जीवन मे सर्वतोन्मुखी समुन्नति होगी। वे अपने सत्कर्मों द्वारा सामरस्य की भावना की स्थापना करेंगे। कलह, द्वेष, ईर्ष्या तथा भेद-प्रवृति आदि मे परिपूर्ण जीवन मिथ्या है—ऐसा जीवन स्थायी नहीं हुआ करता है। जिस प्रकार गाड़ी के पहियो की लीक तब तक रहती है जब तक कि दूसरी गाड़ी उसी मार्ग से न गुजरे, ज्यों ही दूसरी गाड़ी के पहिए वहाँ से गुजरते हैं—दिखाई देने वाली पिछली लीक तुरन्त मिट जाती है, उसी प्रकार सारस्वत नगर में वैर, द्वेष, फूट आदि की जो परिपाटी पड़ गई है, वह अब मानव के सौजन्य, सामरस्य तथा शुभ व्यवहारों द्वारा मिट सकेगी और फिर वहाँ से अनवरत प्रयत्नों द्वारा सौमनस्य एवं एकता की एक शुभ परिपाटी स्थापित हो सकेगी।

विशेष—(१) यहाँ 'देव-द्वन्द्व' से अभिप्राय श्रद्धा एवं मनु से है। श्रद्धा आध्यात्मिकता तथा मनु भौतिकता के रूप में संकेतित हैं। मनुष्य समाज में एकांगी भौतिक उन्नति तथा ऐन्द्रिय सुखोपभोग रूपी घातक विष फैला हुआ है—शुभ कर्मों तथा अथक-अनवरत प्रयत्नों द्वारा इस विष को भी अमृत रूप में परिणत किया सकता है। समाज में फैली हुई मिथ्या परिपाटी की उपेक्षा करके उसका उन्मूलन नही किया जा सकता है—उसके लिए तो समय, संयम तथा शुभ प्रेरणा की अपेक्षा होती है तब समस्त भ्रमों का निवारण स्वतः हो जाता है।

(२) यहाँ 'विष' के बिम्ब के माध्यम से पारस्परिक कलह-द्वेष आदि का सुन्दर चित्रण किया गया है।

चेतना का साकार स्वरूप था। उस समय इस विराट् आलोक-पुरुष का सब ओर आलोक ही आलोक बिखर रहा था—वह आलोक क्रीड़ा करता हुआ-सा दृष्टिगोचर हो रहा था। उस समय चपल तरंगों के समान आलोक की किरणें मधुरिमा ग्रहण किए हुए चतुर्दिक बिखर रही थी।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने आलोक पुरुष (शिव-शक्ति) की उत्पत्ति इस प्रकार मे बतलाई है जिस प्रकार सागर-मंथन से चतुर्दश भास्वर रत्नों की उत्पत्ति हुई थी। इस प्रकार कवि ने चित्ताकर्षक दृश्य उपस्थित कर दिया है। इसके अतिरिक्त कवि ने गहन अन्धकार का नील वर्ण जलनिधि से साम्य प्रदर्शित किया है। यह वर्णन भी सजीव हो उठा है। यहाँ रंग, वर्ण तथा गुण साम्य आदि का सफलतापूर्वक निर्वाह कवि द्वारा किया गया है जो अपने में एक अनुपमता लिए हुए है। छान्दोग्य उपनिषद् में शिवस्वरूप के विषय में इस प्रकार से वर्णन किया गया है—'मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्य-संकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यस्तोऽवाक्यनादरः' अर्थात् वह उपास्यदेव मनोमय, प्राणरूप शरीरधारी, प्रकाशरूप, सत्य-संकल्प, आकाश तुल्य व्यापक, सम्पूर्ण जगत् का कर्त्ता, पूर्णकाम, सर्वगम्य सर्वरस, सम्पूर्ण जगत् को सब ओर से व्याप्त करने वाला, वाणी रहित एवं भ्रमहीन है।

(२) समुद्र के मथन करने से चौदह रत्नों की उत्पत्ति हुई थी। चौदह रत्नों के नाम इस प्रकार है—लक्ष्मी, रम्भा (अप्सरा), विष, वारुणी, अमृत, शख, ऐरावत गज, धन्वन्तरी वैद्य, धनुष, कामधेनु, कल्पवृक्ष, चन्द्र, चिन्तामणि और उच्चश्रवा। इसके विषय मे दोहा इस प्रकार है :

श्री रम्भा विष वारुणी, अमिय शंख गजराज।
धन्वन्तरि धनु धेनु तरु, चन्द्र सुमणि अरु बाज ॥

(३) 'आवरण पटल' के बिम्ब के माध्यम से नीले आकाश का, 'जलनिधि' के बिम्ब के माध्यम से अन्धकार का, 'सरिता' के बिम्ब के माध्यम से ज्योत्स्ना का और आलोक-पुरुष के बिम्ब के माध्यम से शिव का सुन्दर चित्रण किया है।

(४) अलंकार—(i) रूपक—'आवरण-पटल', ज्योत्स्ना-सरिता'।
(ii) निरंगरूपक—'तम जलनिधि'।
(iii) मानवीकरण—'प्रकाश का था कलोल'।
(iv) रूपकातिशयोक्ति—'आवरण-पटल'।

बन गया तमस ... ... हो रहा दिशाकाल ।

शब्दार्थ—तमस=अन्धकार। अलक जाल=केशों का समूह। सर्वांग=शरीर के सब अंग। अन्तर्निनाद ध्वनि=समाधिस्थ होने पर ब्रह्माण्ड में कर्ण-गोचर होने वाला नाद। शून्य भेदिनी=आकाश का भेदन करने वाली। नट-राज=ताण्डव नृत्य करने वाले शंकर; नटेश। निरत=लीन। प्रहसित=हँसता हुआ। मुखरित=ध्वनित। दिशाकाल=दिशा और समय।

व्याख्या—चैतन्य शक्ति के असीम स्वरूप शिव के समस्त अंगों में निस्सीम आलोक परिपूर्ण रूप में भरा हुआ था। आकाश में ऊर्ध्व भाग में प्रसृत अन्धकार उस असीम शक्ति शिवरूप के केशकलाप के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा था। समूचा ब्रह्माण्ड अनहद नाद से व्याप्त हो गया था। चैतन्य शक्ति स्वरूप शिव गहन अन्धकार के पटल को फाड़कर निकले थे अर्थात् उस चिन्मयी शक्ति की सत्ता अन्धकार पटल का भेदन करने वाली थी। चैतन्य स्वरूप शिव स्वयं ताण्डव नृत्य में लीन थे (शिव के लिए ताण्डव नृत्य परम प्रिय होता है)। नटराज शिव के ताण्डव नृत्य के फलस्वरूप अन्तरिक्ष आलोक रूप हास एवं ध्वनि से युक्त था। उस ताण्डव नृत्य की बेला में समस्त ध्वनियाँ लय के अनुरूप ताल दे रही थी। उस समय दिशाओं तथा समय के विषय में किसी को कुछ भी ज्ञान नहीं था। सर्वत्र एकरूपता ही दृष्टिगोचर हो रही थी।

विशेष—(१) प्रसादजी ने यहाँ शिव के ताण्डव नृत्य का उल्लेख करते हुए ब्रह्म की क्रिया-शक्ति के विषय में भी बतलाया है। लिंग पुराण के एक आख्यान में ताण्डव नृत्य को आनन्दकारी भी बतलाया गया है। वैसे शिव-तांडव-स्तोत्र तथा देवीनाम विलास ग्रंथों में शिव के ताण्डव नृत्य का मनोहारी वर्णन उपलब्ध होता है।

(२) अलंकार—(i) मानवीकरण—'था अन्तरिक्ष ... मुखरित'।
(ii) रूपक—'बन गया ... जाल।'

लीला का स्पन्दित ... ... हुआ नाद ।

शब्दार्थ—लीला=नृत्य। स्पन्दित=गतिशील। आह्लाद=आनन्द। प्रभा-पुंज=ज्योति समूह। चितिमय=चेतनता से परिपूर्ण। श्रमसीकर=स्वेद बिंदु। हिमकर=चन्द्रमा। दिनकर=सूर्य। भूधर=पर्वत। संहार=विनाश। सृजन=रचना; निर्माण। युगलपाद=दोनों चरण।

व्याख्या—ताण्डव नृत्य करते समय भगवान् नटराज शिव परम प्रसन्न मुद्रा में दृष्टिगोचर हो रहे थे। ताण्डव नृत्य की इस लीला से आनन्द आन्दो-

लित हो रहा था। शिव का ताण्डव नृत्य दिव्य आलोक-समूह के चेतनामय आह्लाद का सूचक था। नटराज शिव के शरीर ने ताण्डव नृत्य जन्य श्रम के कारण स्वेद-बिन्दु टपक रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इन्ही बिन्दुओं से तारे, चन्द्र तथा सूर्य की रचना हुई हो। पर्वत भगवान् शिव के (नृत्य करते समय) चरणों से उडे हुए धूलि कणों के समान दिखाई दे रहे थे। ताण्डव नृत्य करते समय भगवान् शिव के दोनो चरण सृष्टि के नाश तथा सृजन के कारण स्वरूप बने हुए थे। उनके दोनों चरणो में परम गतिशीलता विद्यमान थी। कहने का तात्पर्य यह है कि भगवान् शिव के दोनों चरणों में एक चरण संहार तथा दूसरा चरण सृष्टि की रचना के प्रतीक रूप में था। सर्वत्र अनहद नाद मुखरित हो रहा था।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने ब्रह्म की चित् शक्ति का वर्णन करते हुए शिव के संहारक एवं स्रष्टा—दोनों के रूप में चित्रित किया है। वैसे पौराणिक आख्यानों के अनुसार ब्रह्मा को सृजन कर्त्ता, विष्णु को पालक एवं शिव को सहारक के रूप में निर्दिष्ट किया गया है। शैव-दर्शन के अन्तर्गत शिव को पाँच कार्यों के कर्त्ता के रूप में व्यक्त किया गया है—

सृष्टि संहारकर्तारम विलय स्थिति कारकम्।
अनुग्रह करम देवम् प्रणतार्ति विनाशनम्॥

(२) **अलंकार**—(i) पूर्णोपमा—'संहार···युगल पाद' तथा 'धूलिकण से भूधर'।
(ii) अतिशयोक्ति—'झरते थे···दिनकर'।

बिखरे असंख्य ब्रह्माण्ड ··· ··· ··· रहा खोल।

शब्दार्थ—असंख्य=अगणित, अनगिनत। युग=समयावधि विशेष—युग चार है—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। तोल=संतुलन। विद्युत कटाक्ष=बिजली के समान भयावह दृष्टि। संसृति=सृष्टि। चेतन परमाणु=गतिशील विद्युत्कण; अणु-परमाणु। दोल=हिंडोला, झूला। पट=परदा; आवरण।

व्याख्या—नटराज शिव के ताण्डव नृत्य करते समय अनेक गोलाकार ब्रह्माण्ड चारों ओर बिखरे हुए थे। सतयुग आदि युगों मे एक युग का समाप्त होता हुआ तथा दूसरा उसके स्थान पर संतुलन ग्रहण करता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा था। शिव की विद्युत के समान भयावह दृष्टि जिस ओर चली जाती, ऐसा मालूम हो रहा था कि उसी ओर सृष्टि में कम्पन होने लगा हो। असंख्य

चेतन परमाणु मिलते, कभी नाना रूप धारण कर बिखर रहे थे। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि समूचा जगत् एक विशाल झूले में झूल रहा हो। प्रत्येक क्षण मे एक नवीन दृश्य दिखलाई दे रहा था, जिससे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि विराट् शक्ति पट खोलकर अनेक नवीन दृश्य क्रमशः उपस्थित कर रही हो। सर्वत्र परम रमणीयता दृष्टिगोचर हो रही थी।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने चिन्मयी विराट् शक्ति के प्रभाव की व्यापकता का उल्लेख किया है। रमणीयता का रूप वही है, जिसमें क्षण-क्षण मे नवीनता उद्भूत हो। पण्डितराज जगन्नाथ ने इस सम्बन्ध में लिखा है—

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

(२) यहाँ 'विद्युत' के विम्ब के माध्यम से कटाक्ष का, 'परिवर्तन का पट' के बिम्ब के माध्यम मे परिवर्तित नवीन रूपों एवं 'महादोल' के बिम्ब के माध्यम से विश्व के आन्दोलित होने का चित्ताकर्षक वर्णन किया गया है।

(३) अलंकार—(i) रूपक—'परिवर्तन का पट'।

(ii) गम्योत्प्रेक्षा—'यह विश्व झूलता महादोल'।

उस शक्ति शरीरी ... ... हिम धवल हास।

शब्दार्थ—शक्ति शरीरी=अनन्त शक्ति का साकार शिव। शाप= अमंगल। निरत=लीन। कांति सिंधु=शोभा का समुद्र। धरती=धारण करती। कमनीय=रमणीय। भीषणतर=अधिक भयानक। हीरक गिरि= हीरों का पर्वत। विद्युत विलास=बिजली की क्रीड़ाजन्य आभा। उल्लसित= उल्लास (प्रसन्नता) से युक्त। हिम धवल हास=वर्फ के समान उज्ज्वल हंसी।

व्याख्या—इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि अनन्त शक्तियों से समवेत साकार रूप शिव ने उस समय धारण कर रखा था। उसमें से निकलता हुआ दिव्य आलोक समस्त आधि-व्याधियों एवं पापों-अमंगलों को नष्ट कर रहा था। नृत्य करते समय उनके शरीर से निकलने वाले उस दिव्य आलोक में अखिल प्रकृति गलती हुई नटेश शिव के शरीर में समाहित हो रही थी। जिस प्रकार नदियाँ सागर में गिरकर एकरूपता में परिवर्तित हो जाती हैं, शिव के उस दिव्य शरीर मे संपृक्त होकर प्रकृति एक नूतन रूप धारण कर रही थी। प्रकृति का अधिक भयावह रूप भी उस शिव-शक्ति के दिव्य आलोक में संपृक्त होकर परम सुन्दर दिखलाई दे रहा था। ताण्डव नृत्य काल में नटराज शिव परम प्रसन्न मुद्रा में दृष्टिगोचर हो रहे थे। उस समय परम शिव के मुख पर प्राकृतिक वर्फ के सदृश शुभ्र हँसी ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो हीरे के पर्वत पर विद्युत क्रीड़ा कर रही हो।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने शिव को अनन्त शक्तियों से संपृक्त शरीरी बतलाया है। शिव की पाँच मुख्य शक्तियो का उल्लेख 'प्रत्यभिज्ञादर्शन' मे उपलब्ध होता है। ये शक्तियाँ हैं—चित्, आनन्द, ज्ञान, इच्छा तथा क्रिया।

(२) यहाँ 'सिंधु' के बिम्ब के माध्यम से अमित कान्ति और 'हीरक गिरि पर विद्युत् विलास' के बिम्ब के माध्यम से नटराज शंकर की परम प्रसन्नता का चित्रांकन किया गया है।

(३) अलंकार—(i) उपमा · 'उल्लसित···हास'।
(ii) गम्योत्प्रेक्षा—'हीरक···विलास'।
(iii) विरोधाभास—'अपना स्वर···भीपणतर'।
(iv) रूपक—'कान्ति सिंधु'।

देखा मनु ने ··· ··· ··· अखण्ड आनन्द वेश।

शब्दार्थ—नर्तित=नृत्य करते हुए। नटेश=नटराज शंकर। हतचेत=वेसुध। विशेष=अधिक। आश्रय=सहारा, अवलम्बन। पावन=पवित्र। निर्मल=स्वच्छ। असत्य से ज्ञान लेश=असत्य से उत्पन्न मिथ्या ज्ञान का लव (सूक्ष्म अंश) विष रूप।

व्याख्या—ताण्डव नृत्य करते हुए नटराज के दर्शन करने पर मनु वेसुध-से होकर श्रद्धा से कहने लगे कि हे देवि! यह दृश्य परम रमणीय है। तुम मुझे सहारा देकर उस परम शिव की साकार मूर्ति के चरणों के समीप ले चलो। जिन चरणों के आश्रय मे पहुँचकर समस्त पाप-पुण्य मिलकर, अपने मल को दूर कर, परम पवित्र हो जाते हैं। जहाँ पर असत्य से उद्भूत मिथ्या (संशयात्मक) ज्ञान का अंश-मात्र भी विद्यमान नहीं रहता। वह परम शिव समरसता मे ओत-प्रोत है तथा अखण्ड आनन्द का साकार स्वरूप है।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने यह व्यक्त किया है कि सांसारिक कष्टों एवं मिथ्या ज्ञान से मनु का का हृदय परम शान्त एवं श्रान्त था। उन्होने परम शिव के चरणों में आश्रय एवं अखण्ड आनन्द प्राप्त करने की अभिलाषा व्यक्त की है। इन विचारों पर शैव विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सांसारिक कष्टों से दुखित एवं श्रान्त प्राणी का सफल चित्रांकन किया है। परम शिव शक्ति के चरणो से ही सच्ची शांति एवं अखण्ड आनन्द प्राप्त होता है। इसी प्रकार का भाव साम्य रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखित 'गीतांजलि' में 'डाको डाको डाको आमारे' शीर्षक कविता में उपलब्ध होता है।

(२) यहाँ 'समरस अखण्ड आनन्द वेश' के बिम्ब के माध्यम से भगवान् परमशिव के सत्, चित, एवं आनन्द—तीनों का सफल चित्रण किया गया है।

रहस्य सर्ग

कथानक—श्रद्धा मनु को अपने साथ लेकर कैलाश पर आरोहण करने के लिए कृत संकल्प होकर आगे वढी । ज्यों-ज्यों वे कैलाश पर चढते गए त्यों-त्यों उन्हे अनेक प्रकार के भयप्रद एवं रमणीय रूप-विधानमय दृश्य दृष्टिगोचर हुए । छाई हुई सफेद वर्फ, संकरे रास्ते, ऊवड़-खावड विपम भूमि, खाइयाँ उन्होंने देखी । इसके अतिरिक्त सूर्य की किरणों का हिमखण्डों से झाँकते प्रतिविम्वों से चंद्रमा की भ्रान्ति उत्पन्न कर देने वाला दृश्य, झरते हुए झरनों का कलकल निनाद एवं सर्वत्र व्याप्त हरीतिमा उनके आकर्षण के केन्द्र रहे । पर्वत की अभ्रंकपा चोटियाँ भी उनके अन्तस् में आनंद की झलक उत्पन्न कर रही थी । दुर्गम मार्ग को पार करते-करते मनु थक-से गए । उन्होने चलने की असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा कि हे श्रद्धे ! अव पवन के शैत्य एवं वेग को सहन करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं रह गई है—मैं अव आगे की ओर वढने में अपने को असमर्थ-सा पा रहा हूँ और मै कठोर हृदय भी नहीं हूँ कि पीछे आत्मीय जनों को यूं ही छोड़ दू—मैं उन्हें सहसा नही भुला सकता । अतः पीछे लौट चलो । श्रद्धा ने कहा कि अव पीछे लौटने का समय नही रहा । हमें साहस का सम्वल लेकर कुछ और आगे वढना चाहिए ताकि हमें कोई विश्राम करने योग्य स्थान मिल सके । आगे वढकर उन्होंने समतल भूमि पर पदन्यास किया और उन्होंने तीन दिशाओं में तीन विभिन्न रंगों के तीन लोकों के दर्शन किए । मनु द्वारा उन तीनो लोकों के विपय मे पूछने पर श्रद्धा ने कहा कि मैं इनके विषय मे तुम्हे वतलाती हूँ । उषा की रक्तिम आभा से व्याप्त जो गोलक दिखलाई दे रहा है—वह इच्छालोक है । इसमे भाव मूर्त्त रूप मे निवास करते है । शव्द, रूप, स्पर्श तथा रस की अप्सराएँ नृत्य करती है । यहाँ की शासन-कर्त्री माया है, यहाँ मनुष्य अपनी इन्द्रियों के भिन्न-भिन्न व्यापारों के अनुकूल कार्य करने मे रुचि लेता है । उस मनुष्य के स्वभाव पर यह निर्भर करता है कि वह सद्भावो या असद्भावों में से किन भावों को अपनाना पसंद करता है। श्रद्धा ने दूसरे लोक के विपय में मनु को वतलाया कि वह श्यामवर्ण में निखरता हुआ कर्मलोक है । इस लोक की आभा धूमिल है । इससे आशय यह है, कि कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य क्या है, इसके विषय में निश्चित रूप से निर्णय दे सकना

कठिन है। यहाँ पर शासन करने वाली नियति है जिसके अधीन कर्म-चक्र सदा गतिमान रहता है। कर्म करने वालों के लिए विश्राम करना वांच्छनीय नही है। उनकी प्रवृत्ति सदा कर्मों के करने मे ही होती है। उनका जीवन सदा सघर्पमय रहता है। कर्मनिष्ठता ही उनके जीवन का आधार होता है। जो अकर्मण्य है वे शोक सतप्त रहते हे। सबसे अधिक महत्व की बात यहाँ यह है कि यहाँ के वैभव तथा समृद्धि मे स्थायित्व नहीं है। सब भंगुर है। कर्म करने वालो के लिए मुक्ति का द्वार अवरुद्ध है। उन्हें जन्म-मरण की उलझन से निवृत्ति प्राप्त नही होती। कर्मों से ही संस्कारों की निर्मिति होती है और उन सस्कारो के कारण ही जीव को भिन्न-भिन्न शरीरो मे गमन करना होता है। तीसरे लोक के विषय मे श्रद्धा ने इस प्रकार विचार व्यक्त किए—यह ज्ञान-लोक है जिसमे बुद्धि चक्र सदा गतिशील रहता है। यहाँ के प्राणियों मे सुख तथा दुःख दोनो मे स्थिति उदासीनता लिए प्राप्त होती है। यहाँ के प्राणी मुक्ति प्राप्त करने के लिए इच्छुक होते है। इनमे किसी प्रकार का लोभ नही होता। धर्म में प्रवृत्ति रखने वालों का यहाँ आदर होता है, वही श्रेष्ठ माना जाता है। शास्त्रसम्मत निर्देशो का यथाशक्य पालन करते है। पापाचरण की ओर इनकी प्रवृत्ति नही होती—मन मे ऐसे विचार नही आने देते। विशेप ध्यातव्य यह है कि ये मनुष्य की इच्छाओ को महत्व की दृष्टि से नही देखते। उनकी इच्छाओ के प्रति इनकी हीन-दृष्टि होती है। प्राणियों के जीवन मे इच्छा, कर्म और ज्ञान में कोई समुचित तालमेल नहीं है। यही उनके जीवन की अशाति का प्रधान कारण है। मनुष्य की इच्छाएं समग्र रूप से पूर्ण नही हो पाती। वह कर्म करता है तो वह ज्ञान पर आधृत नही होता और ज्ञान-क्षेत्र में बढ़ता है तो जीवन को ही हेय समझने लगता है—उसी समय श्रद्धा की स्मिति की मधुर रेखा ज्वाला के रूप मे उन लोको मे विकीर्ण हो गई जिससे वे तीनो लोक एकाकार हो गए। तत्पश्चात् दैवी सगीत की स्वर-लहरी को सुनते हुए वे दोनो तल्लीन हो गये।

रहस्य सर्ग मे प्रसादजी के दार्शनिक विचारो की झलक मिलती है। मनुष्य का जीवन तीन भागो मे विभाजित है—इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया। इसी के फलस्वरूप मानव-जीवन मे अनन्त इच्छाएँ होती है। ज्ञान-तत्व के प्राप्त हो जाने पर भटकना तथा सुखो की प्राप्ति के लिए संघर्ष करना मानव का स्वभाव-सा बन गया है। वास्तव मे मानव-जीवन का समन्वित रूप इन तीनो—इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया की समन्विति में ही है। मानव-जीवन मे सामरस्य एवं अखण्ड

आनन्द की प्राप्ति इन तीनों के समन्वित रूप मे ही उपलब्ध हो सकती है। इस समन्विति में श्रद्धा (विश्वास) का योगदान भी विशेष रूप से वांच्छनीय है। यहाँ प्रसादजी ने दार्शनिक विचारो को प्रकट करने में समरसता उत्पन्न कर दी है। यहाँ दार्शनिक विचारों के रुखेपन को मधुर बना दिया गया है। शरीर के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण रूप मे ये तीनों लोक दर्शाए गए है—इच्छालोक, ज्ञानलोक और कर्मलोक। 'हिमालय' के दर्शन के प्रसंग मे प्रसादजी को प्रकृति के चित्रण करने का पर्याप्त अवसर मिला है। वस्तुत· दार्शनिक विचारों की दृष्टि से 'रहस्य सर्ग' महत्वपूर्ण है।

ऊर्ध्व देश उस······गिरि अभिमानी।

शब्दार्थ—ऊर्ध्व=समुन्नत। तमस=अंधकार। स्तब्ध=नीरव, शान्त। अचल=अभी हुई। हिमानी=वर्फ। चतुर्दिक=चारों दिशाएँ। गिरि= हिमालय पर्वत।

व्याख्या—प्रसादजी कह रहे है कि हिमालय पर्वत का समुन्नत प्रदेश नीले अंधकार से आवृत्त था। वहाँ पर वर्फ ऐसी जमी हुई थी कि पिघलती ही न थी। यही कारण था कि वहाँ किसी प्रकार की हलचल न थी और वातावरण शान्त था। वहाँ तक पहुंचने वाला मार्ग भी समाप्तप्राय हो गया था—ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो मार्ग भी आगे थककर वर्फ मे विलीन हो गया हो। ऐसा दृष्टिगोचर हो रहा था कि अपनी उच्चता पर अभिमान करने वाला हिमालय पर्वत भी स्वयं स्तब्ध होकर चारों दिशाओ मे निहार रहा हो।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ हिमालय पर्वत की उच्चता का वर्णन किया है। हिमालय के समुन्नत प्रदेश का वास्तविक एवं मनोरम चित्रण उपस्थित किया गया है।

(२) प्रसादजी ने 'नील तमस' के विम्व के माध्यम से नीले आकाश का चित्रण किया है। इसके साथ ही उन्होने भौगोलिक वस्तुस्थिति का भी निरूपण किया है—हिमालय पर कुछ दूर ऊँचाई तक चढने के बाद मार्ग आगे दिखलाई नही देता। आगे जाकर सब ओर वर्फ ही बर्फ जमी हुई दिखलाई देती है। हिमालय की उच्चता के विषय में एक अभिमानी से तुलना करके एक परम रम्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। हिमालय के दिव्य एवं अलौकिक स्वरूप की झाकी कवि श्री दिनकर के शब्दों में देखिए :

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार दिव्य गौरव विराट् ! पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल !

मेरी जननी के हिमकिरीट ! मेरे भारत के दिव्य भाल !
युग-युग अजेय निर्वंध मुक्त ! युग-युग गर्वोन्नत नित महान् !
निस्सीम व्योम में तान रहा, युग से किस महिमा का वितान !

(३) प्रसादजी ने प्रस्तुत सर्ग में ताटंक छंद मे अन्त में एक गुरु (ऽ) जोडकर एक नवीन छद निर्मित किया है। इस विशेष छंद मे ३२ मात्राएँ और १६-१६ पर यति है !

(४) अलंकार—मानवीकरण।

दोनों पथिक चले·····उत्साही से बढ़ते।

शब्दार्थ—दोनो=श्रद्धा तथा मनु। साहस=हिम्मत। उत्साही=उमंग से भरे हुए।

व्याख्या—प्रसादजी का कथन है कि इस हिमालय की ऊँचाई पर श्रद्धा एवं मनु दोनों पथिक न जाने कब से चढते चल रहे हैं। उस दुर्गम मार्ग मे श्रद्धा आगे-आगे चल रही थी और मनु उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। श्रद्धा साहस की साकार मूर्ति के रूप मे थी और मनु उत्साह की मूर्ति के रूप मे थे—इस प्रकार वे दोनों मार्ग पर बढते ही जा रहे थे।

विशेष—(१) श्रद्धा एवं मनु के पर्वतारोहण का विषय उपस्थित कर प्रसादजी ने यहाँ पर्वतारोही दल की मनोरम झांकी प्रस्तुत कर दी है—पर्वतारोही दल में अदम्य साहस एवं उत्साह होता है जिसके फलस्वरूप वे दुर्गम चढाई पर आगे बढते जाते है। श्रद्धा में अपार साहस था और मनु भी कैलाश पर्वत पर शिव के दर्शन करने के लिए परम उत्साही थे। जिस प्रकार साहसी व्यक्ति को दुर्गम पथ पर बढते देखकर या किसी दुष्कर कार्य को करते हुए देखकर अन्य लोग भी उत्साहपूर्वक अनुसरण करने लगते है उसी प्रकार श्रद्धा के पीछे-पीछे मनु भी हिमालय के दुर्गम मार्ग पर बढते चले जा रहे थे।

(२) अलंकार—पुनरुक्ति—ऊँचे-ऊँचे चढते-चढते।
उपमा—साहस उत्साही से बढ़ते।
यथासंख्य—श्रद्धा·····बढते।

पवन वेग प्रतिकूल,·····क्यों निर्मोही।

शब्दार्थ—पवन=वायु। प्रतिकूल=विरुद्ध, विपरीत। बटोही=पथिक, रास्तागीर। भेदकर=फाडकर, विदीर्ण कर। निर्मोही=निर्दय, निष्ठुर।

व्याख्या—पर्वत के उस समुन्नत प्रदेश पर वायु प्रतिकूल गति से प्रवाहित हो रही थी अर्थात् वह ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित हो रही थी जो उन

दोनों के आगे बढने मे विघ्न उत्पन्न कर रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो वह कह रही हो कि हे पथिक ! तू मुझे चीरता हुआ आगे की ओर क्यों बढ़ा जा रहा है। तुझे अपने जीवन के प्रति मोह भी नही है। कम से कम अपने प्राणो की तो तू चिन्ता कर; आगे की ओर क्यों बढ़ा जा रहा है।

विशेष—(१) प्रसादजी ने तीव्र गति से एवं प्रतिकूल रूप मे प्रवाहित वायु के वर्णन द्वारा लक्ष्योन्मुख व्यक्ति के अग्रसर होने मे आने वाली बाधाओं तथा कष्टो की ओर संकेत किया है। ये विघ्न-बाधाएँ व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुँचने मे अवरोध उत्पन्न करती है। साहसी-विवेकी प्राणी इन विघ्न-बाधाओं से संघर्ष करते हुए और अपने बुद्धि-कौशल से उनका निवारण करते हुए सदा अग्रसर होने मे सफलता प्राप्त कर लेते है। पीछे मुड़ना उन्होने जीवन मे कभी सीखा ही नही। सिद्धि के मार्ग मे तो ऐसी बाधाएँ उपस्थित होना नितान्त स्वाभाविक है—आपत्तियों को सम्मुख आते देखकर घबराना ही कायरता है जो मानव के लिए किसी भी प्रकार से उचित नही है।

(२) यहाँ 'बटोही' के रूप मे मनु की ओर सकेत है। श्रद्धा मनु को साधना-पथ प्रदर्शन कराने वाली है। मनु साधना अथवा सिद्धि के पथ पर अग्रसर हो रहे है। श्रद्धा तो जीव और ब्रह्म के मिलन मे 'मध्यस्थ' का कार्य कर रही है।

छूने को अम्बर······भयकरी खाँई।

शब्दार्थ—अम्बर=निस्सीम आकाश। सतत=लगातार, अनवरत। विक्षत =कटे-फटे। अंग=अवयव।

व्याख्या—एक ओर तो पवन तीव्र एवं प्रतिकूल गति से वहाँ प्रवाहित हो रहा था और दूसरी ओर कैलाश पर्वत की ऊँचाई बढती हुई-सी दृष्टिगोचर हो रही थी अर्थात् वे जितनी चढाई चढ़ते जाते थे उतनी ही कैलाश पर्वत की ऊँचाई बढ़ती ही चली जा रही थी मानो वह आकाश का स्पर्श करने को विशेष लालायित हो रही हो। उस मार्ग मे अनेक गड्ढे तथा भयावनी खाइयाँ थी जिन्हें देखने पर ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो हिमालय पर्वत रूपी शरीर के कटे-फटे अवयव बिखरे पडे हो। कहने का तात्पर्य यह है कि विघ्न-बाधाएँ अपने भयंकर रूप मे प्रत्यक्ष दिखलाई दे रही थी।

विशेष—(१) 'भीषण खड्ड भयकरी खाँई' के बिम्ब के माध्यम से साधना-पथ में उपस्थित होने वाली भयानक बाधाओ का सशक्त चित्रण किया गया है। कवि उसमान ने साधना के मार्ग मे आने वाली बाधाओं का चित्रण निम्न प्रकार से किया है—

कहेसि कुंवर यह पंथ दुहेला। अस जनि जानु हंसी औ खेला ॥
अगम पहाड़ विपम गढ़ घाटी। पांखिन जाइ चढ़े नहिं घाटी ॥
खोह खराट जाइ नहिं लांघी। देखि पतार कांपि नर जांघी ॥
छाइ सोइ जोनिउ परतेजा। सार पांसुली लोह करेजा ॥

इसी प्रकार 'पद्मावत' में जायसी ने रत्नसेन के साधना-पथ की विघ्न-बाधाओं का उल्लेख किया है—

ओहि मिलन जो पहुंचे कोई। तब हम कहव पुरुष भल सोई ॥
है आगे परवत की वाटा। विपम पहार अगम सुठि घाटा ॥
बिच बिच नदी, खोह औ नारा। ठावंहि ठांव बैठ वट पारा ॥

(२) अलकार—गम्योत्प्रेक्षा—विक्षत···खाई।
मानवीकरण—छूने को···ऊँचाई।

रविकर हिम······लौट आ जाता।

शब्दार्थ—रविकर=सूर्य की किरणें। हिमखण्ड=वर्फ के टुकड़े। हिमकर=चन्द्रमा। द्रुततर=अधिक शीघ्र, तेज।

व्याख्या—हिमालय पर्वत के उत्तुग शिखरो पर जमी हुई वर्फ के खण्डों पर सूर्य की किरणे पड़ रही थी जिसके कारण सूर्य के प्रतिविम्व इस प्रकार दिखलाई दे रहे थे जिस प्रकार अनेक चन्द्रमा के आकार हों। उस हिमालय की चोटी के चक्कर काटता हुआ वायु भी जहां से चलता था, शीघ्र ही लौटकर फिर वही पर आ जाता था।

विशेष—(१) हिमालय के समुन्नत प्रदेश पर वहुत शीत होता है। वर्फ के टुकडों पर सूर्य का प्रतिविम्व चन्द्र जैसा रूप धारण करता दिलखाई देता है। वैज्ञानिको के विचार से वायु की तीव्रता धरातल से छः मील तक की ऊँचाई मे होती है।

(२) अलंकार—मानवीकरण—द्रुततर···आ जाता।
परिकरांकुर—'हिमकर'।
विरोधाभास—'रविकर···वनाता'।

नीचे जलधर दौड़······चपला के गहने।

शब्दार्थ—जलधर=मेघ। सुरधनु=इन्द्र धनुष। कुंजर-कलभ=हाथी का वच्चा। इठलाना=मस्ती के साथ घूमना-चलना। चपला=विद्युत। गहने=आभूषण।

व्याख्या—हिमालय पर्वत के निम्नवर्ती भाग में मेघ दौड़ रहे थे जिनमें इंद्रधनुप शोभित हो रहा था। विजली भी चमक रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वे मेघ इन्द्रधनुप की विभिन्न रंगों से युक्त माला पहने हुए तथा विद्युत के देदीप्यमान आभूपण धारण किए हुए हाथी वच्चे के समान मस्ती से दौड़ लगा रहे हों।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने वादलों का गज-कलभ के साथ साम्य स्थापित किया है। यहाँ उन्होने इन्द्रधनुप को माला एवं चमकती विद्युत को आभूपण के रूप में वतलाया है। सस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास ने 'मेघदूतम्' में मेघों के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है :

आषाढ़स्य प्रथम दिवसे मेघामश्लिण्टसानुम्।
वप्रक्रीड़ा परिणतगजप्रेक्षणीयम् ददर्श ॥

यहाँ पर उन्होने मेघों को वप्रक्रीडा (दन्तप्रहारी) निरत गज के रूप में व्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त मेघ का गोपवेश के रूप में निरूपित चित्र भी कम चित्ताकर्षक नही है :

रत्नच्छाया व्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत् पुरस्तात्
वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य।
येन श्यामं वपुरतितराम् कान्तिमापत्स्यते ते।
बर्हेणेव स्फुरित रुचिनो गोपवेषस्य विष्णोः।

(२) यहाँ कुन्जर-कलभ के विम्व के माध्यम से 'विद्युत-युक्त मेघो' का रमणीय चित्र प्रस्तुत किया गया है।

(३) **अलंकार**—पूर्णोपमा—नीचे जलधर······इठलाते।
रूपक—'सुन्दर सुरधनु माला पहने,' 'चमकाते चपला के गहने'।
सांगरूपक—समस्त पद में।

प्रवहमान थे······धाराए जैसे।

शब्दार्थ—प्रवहमान=प्रवाहित हो रहे थे। निर्झर=झरने। निम्नदेश=निचला भाग। शत-शत=सैकड़ों, अनेक। गण्ड=गण्डस्थल, कनपटी (कर्ण-प्रान्त)। श्वेत गजराज=ऐरावत हाथी। मधु=हाथी की कनपटी से वहने वाला मद जिसे 'दान' भी कहा जाता है।

व्याख्या—उस हिमालय गिरि से निकलकर शीतल जल से परिपूर्ण अनेक निर्झर निचले भाग की ओर प्रवाहित हो रहे थे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो

रहा था मानो ऐरावत हाथी के कर्ण-प्रान्त से मद (दान जल) की धाराएँ फूट-फुट कर बह रही हो।

विशेष—(१) यहाँ पर बिम्वविधान चित्ताकर्षक हो उठा है। 'श्वेत गज-राज गण्ड' के बिम्व के माध्यम से हिमालय पर्वत का हिमाच्छादित निम्न देश का एव 'मधु धाराएँ' के बिम्व के माध्यम से प्रवहमान झरनो का सुंदर चित्रा-कन किया गया है।

(२) **अलंकार**—वस्तूत्प्रेक्षा—समस्त पद मे।

हरियाली जिनकी······थे भगते।

शब्दार्थ—उभरी=ऊपर की ओर निकली हुई। चित्रपटी=चित्रपट, चित्र फलक। प्रतिकृति=चित्र। वाह्यरेख=वाहरी रेखाएँ, वाहरी रूप रेखाएँ।

व्याख्या—हिमालय पर्वत के समतल भाग में घास ऊपर की ओर वाहर निकल आई थी। वह समतल भाग हरियाली से परिपूर्ण होने के कारण ऐसा दिखलाई दे रहा था मानो वह चित्रफलक हो। उस समतल भाग मे सतत प्रवाहित होती हुई द्रुतगामिनी नदियाँ इस प्रकार दृष्टिगोचर हो रही थी मानो किसी चित्रफलक पर स्थिर बाह्य रेखाएँ खीच दी गई हो।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने चित्रपटी के माध्यम से हिमालय पर्वत के समतल भाग पर छाई हुई हरीतिमा का तथा प्रतिकृतियों के बाह्य रेख के बिम्ब के माध्यम से प्रवाहित होती हुई नदियो का आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया है।

(२) **अलंकार**—उपमा—हरियाली······लगते।

विरोधाभास—प्रतिकृतियों···भागते।

लघुतम वे सब······रहा सवेरा।

शब्दार्थ—लघुतम=वहुत छोटे (आकार मे)। वसुधा=धरित्री; पृथ्वी। महाशून्य=निस्सीम आकाश। रजनी का सवेरा होना=रात्रि का सवेरा (अन्त) होना अर्थात् किसी दुस्साध्य कार्य का ही समाप्न हो जाना।

व्याख्या—हिमालय की ऊंचाई पर चढकर वहाँ से नीचे पृथ्वी की ओर देखने पर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि पृथ्वी पर जो कुछ भी है, वे सव आकार मे छोटे है। उन पर निस्सीम एव विस्तृत आकाश विद्यमान था। दूसरे शब्दो मे, आध्यात्मिक भावो के धरातल पर पहुँच जाने पर भौतिक पदार्थो की तुच्छता का आभास होना नितान्त स्वाभाविक है। भौतिक जगत् की तुच्छता के विषय मे साधक को आभास हो जाता है। जिस प्रकार रात्रि का अंधकार प्रातः होते-

होते दूर हो जाता है उसी प्रकार श्रद्धा एवं मनु दोनो का पर्वतारोहण जैसा दु:साध्य कार्य अब समाप्त होने वाला था ।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने वास्तविक तथ्य का उद्‌घाटन किया है : ऊँचाई पर चढ़कर नीचे की ओर देखने पर यही मालूम होता है कि पृथ्वी पर जितने भी पदार्थ हैं वे आकार मे बहुत छोटे से है । वैसे यहाँ भौतिक पदार्थो की नगण्यता के विषय मे संकेत किया गया है ।

(२) 'रजनी का सवेरा होना'—यह पंक्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

(३) अलंकार—रूपक—'ऊँचे चढने''''''सवेरा' ।
रूपकातिशयोक्ति—'सवेरा' ।

(४) लाक्षणिक प्रयोग—सवेरा मे ।

कहाँ ले चली''''''पथिक हूँ ।

शब्दार्थ—साहस छूटना=निराश हो जाना । निस्सम्वल=असहाय; पाथेय (पथ को तय करने के लिए भोजन सामग्री) से हीन । भग्नाश=निराश ।

व्याख्या—पर्वत के दुर्गम मार्ग पर चढते-चढ़ते बहुत ऊँचाई पर मनु पहुँच चुके थे । यात्रा की थकान उन्हें पर्याप्त रूप में हो गयी थी । मनु श्रद्धा को सम्बोधित करते हुए कहने लगे कि हे देवि ! तुम मुझे अब और आगे कहाँ ले जा रही हो ? मै पर्वत की दुर्गम चढ़ाई पर चलते-चलते अब पर्याप्त रूप में श्रान्त हो गया हूँ । अब मैं आगे चढने के लिए साहस नही बटोर पा रहा हूँ । जिस प्रकार पांथ के पास मार्ग के लिए भोजन, व्यय आदि के अभाव हो जाते है तो वह निराश हो जाता है और आगे बढने मे अपने मे असमर्थता की अनुभूति करता है उसी प्रकार मेरी दशा भी उसी असहाय पाथ के समान हो रही है । मेरी आशाएँ अब धूमिल हो गयी हैं—मैं अब निराश हो चुका हूँ ।

विशेष—(१) साधना के मार्ग में साधक के सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ, उलझने एवं भयंकर विपत्तियाँ आती है—यहाँ तक कि वह आशा तथा धैर्य खो बैठता है, किन्तु सच्चा साधक अपने हृदय मे आशा एवं साहस को सदा संजोये रहता है । आशा एवं साहस ही उसका सम्बल है । लक्ष्य के समीप पहुँचने पर भी साधक को लक्ष्य का आभास मात्र भी दिखलाई नही देता । तो ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि वह निराश हो जाता है । इस प्रकार प्रसाद ने निस्सम्बल भग्नाश पथिक के बिम्ब के माध्यम से मनु की आन्तरिक अनुभूतियो का सहज चित्रण किया है जो परम मनोरम बन पड़ा है ।

(२) 'साहस छूटना' मुहावरे का प्रयोग भी विशेष द्रष्टव्य है ।

(३) अलंकार—रूपक, 'साहस''''''पथिक हूँ ।'

लौट चलो······अड़ न सकूँगा।

शब्दार्थ—वातचक्र=वेगवती वायु, आँधी-तूफान। श्वास रुद्ध करने वाले=दम घुटने वाले। शीत पवन=शीतल अर्थात् बर्फीली हवा। अड़ना=सामना करना।

व्याख्या—मनु पर्वत की दुर्गम चढाई के मार्ग को तय करते-करते थककर चूर हो गए और श्रद्धा से कहने लगे—हे श्रद्धे! अब पीछे लौट चलो—अब आगे की ओर बढ़ना मेरे लिए दुष्कर कार्य है। यहाँ तीव्र गति वाली आँधी चल रही है—इसके विपरीत मैं अब आगे नही चल सकता—यहाँ बर्फीली (शीतल) वायु इतनी तीव्र गति तथा प्रतिकूल गति मे बह रही है जिसमे मेरा दम घुटता जा रहा है—मैं अब दुर्बल हो गया हूँ। अतः मैं ऐसी स्थिति मे इसका सामना करने मे असमर्थ हूँ।

विशेष—(१) भौगोलिक तथ्य यह है कि हिमालय पर्वत की उच्च शिखरो पर बर्फीली (परम शीतल) एव तीव्र वेग वाली आंधियां चलती रहती हैं। इसके अतिरिक्त जितनी ऊँचाई पर पहुँच जाएंगे उतना ही वायु का दबाव कम होता जाता है। फलतः सांस लेने मे भी कठिनाई होती है—ऐसी स्थिति मे चढाई पर चढना जैसा दुस्साध्य कार्य असम्भव-सा हो जाता है। इसी तथ्य का उद्-घाटन प्रस्तुत अवतरण मे किया गया है।

(२) मुहावरे का प्रयोग ध्यातव्य है।

मेरे, हाँ वे······उनको पाया हूँ।

शब्दार्थ—वे=इडा, मानव, सारस्वत नगर की प्रजा। सुदूर=बहुत दूर।

व्याख्या—पर्वतारोहण से श्रान्त मनु श्रद्धा से कहने लगे—हे देवि! मैं जिन लोगो को पीछे छोड आया हूँ और जिनसे मै पहले अप्रसन्न था—अब मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मेरी यह भूल थी। उन्होने मेरे साथ किसी प्रकार का शत्रुवत् व्यवहार नही किया—वे तो मेरे आत्मीय थे। यद्यपि वे सभी इड़ा, मानव तथा सारस्वत नगर की प्रजा आदि यहाँ से बहुत दूर पृथ्वी पर रह गए है तथापि उनके सौजन्य एवं स्नेह को मै अभी भूल नहीं सका हूँ। मुझे अभी तक उनकी याद आ रही है।

विशेष—(१) यहाँ पर मनु के स्वजनों के स्मरण ने मनु के अन्तस् मे व्याकुलता उत्पन्न कर दी है। उनके नैकट्य की मधुर स्मृतियाँ उनके हृदय में

अब काँधने लगी है। फलतः मनु उनके सौजन्य एवं प्रेम की लालसा अपने हृदय में संजोए हुए हैं। इसी प्रकार साधक को साधना मार्ग में अनेक आकर्षण प्राप्त होते हैं। उनमे सच्चे साधक का मन नही रमता। यदि ऐसा हो जाए तो साधक सिद्धि से वञ्चित रह जाता है। मन को वश में करना साधक के लिए परम अभीष्ठ है—सांसारिक मोहपाश अपने में कम आकर्पण नही रखते है। मानव के बंधन एवं मोक्ष का एकमात्र कारण उसका मन ही है। गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—'मनएव मनुष्याणां। कारणं बन्धमोक्षयो.'—जो योगी संसार से पूर्णतः विरक्त हो जाते हैं—सिद्धि मार्ग मे वे ही सफल हो पाते है। इस विषय में 'पद्मावत' का निम्नलिखित ग्रंश ध्यातव्य है—

कठिन ग्राहि सिंघल कर राजू। पाइय नाहिं जूझ कर साजू॥
ग्रोहि पथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी जती तपी सन्यासी॥

यह विश्वास भरी……ललक उठी थी।

शब्दार्थ—स्मिति=मुसकान। निश्छल=कपट रहित। करपल्लव=हाथ रूपी पत्ते। ललक उठना=ललचा जाना।

व्याख्या—मनु को इस प्रकार निराश होता हुआ देखकर श्रद्धा के आस्य-मण्डल पर आत्मविश्वास एवं कपटहीन (स्वाभाविक) मुसकान बिखर गई। श्रद्धा के पल्लव के समान सुकोमल हाथों से पर्वत की दुर्गम चढ़ाई पर चढने में मनु की सहायता करने की इच्छा बलवती हो उठी। भाव यह है कि मनु को निराश एवं निरुपाय देखकर श्रद्धा के हृदय मे विश्वास एवं कपटहीनता की भावना ने मनु को मार्ग पर अग्रसर करने के लिए सहायता करने की इच्छा समधिक रूप में जाग्रत हो उठी।

विशेष—(१) श्रद्धा का अवलम्बन ही मनु को सिद्धि पथ पर अग्रसर कर रहा है क्योंकि वह तो निराश हो बैठे है। त्रस्त एव निराश मनुष्य को जीवन में नारी का योगदान विशेपतः महत्वपूर्ण होता है। नारी के विभिन्न रूप है—गृहिणी, सचिव, सखी आदि। वह मात्र अर्द्धांगिनी नहीं है।

(२) 'श्रद्धां हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विदन्ते वसु'—के रूप में श्रद्धा के निष्कपट एवं विश्वासपूर्ण हृदय का चित्रांकन प्रसादजी ने यहाँ किया है जो वस्तुतः मनोहर है। विश्वासमयी श्रद्धा मनु को सावधान करती हुई कर्त्तव्य की प्रेरणा देती है।

(३) 'पल्लव' के बिम्ब के माध्यम से यहाँ श्रद्धा के हाथ की अंगुलियों की सुकोमलता का चित्रण किया गया है। श्रद्धा कोमलता की साकार मूर्ति है।

(४) अलंकार—रूपक—'कर-पल्लव'।

विशेषण विपर्यय—सेवा कर'''उठी थी।

दे अवलम्ब''''''न ठिठोली।

शब्दार्थ—अवलम्ब=सहारा। विकल=व्याकुल। ठिठोली=मजाक।

व्याख्या—श्रद्धा इस प्रकार व्यथित एवं चिन्तित अपने सहयोगी मनु को अपने हाथ का सहारा देते हुए उनसे मधुर स्वर मे कहने लगी कि अब हम पर्वत की चढाई पर चलते-चलते बहुत दूर पहुँच चुके है और हम स्वजनों को बहुत दूर नीचे छोड़ आए हैं। अब हम ऐसे स्थान पर आ चुके है कि यहाँ से वापस नीचे पहुँचना एक दुष्कर कार्य है। ऐसी स्थिति में अब पीछे लौटने वाली मजाक की बात करने का अवसर नहीं है अर्थात् ऐसा कहना आपके लिए ऐसे अवसर पर शोभा नही देता।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने मुहावरे का प्रयोग किया है। साधना के मार्ग में ऐसे बिंदु पर पहुँचकर जहाँ सफलता मिलने वाली हो, पीछे की ओर लौट पड़ना सच्चे साधक के लिए किसी भी प्रकार से शोभनीय नहीं है। किसी भी कार्य को करने से पूर्व सोच-विचार कर लेना चाहिये। दृढ सकल्प कर लेने के बाद अग्रसर होने पर पीछे मुडना कायरता का द्योतक है। विघ्न-बाधाओं से जूझना ही जीवन है—इस विषय में सस्कृत के एक विद्वान ने भी कहा है—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्न विहिताः विरमन्ति मध्याः
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति।

अर्थात् निम्नकोटि लोग वे है जो आने वाली विघ्न-बाधाओं के भय से किसी कार्य को आरम्भ ही नही करते। मध्यम कोटि के वे मनुष्य है जो किसी भी कार्य को आरम्भ तो कर देते हैं किन्तु ज्यो ही विघ्न-बाधाएं सम्मुख आ जाती है, वे कार्यक्षेत्र से भाग खड़े होते हैं और उत्तम वर्ग के मनुष्य किसी भी कार्य को प्रारम्भ करके पूर्ण ही करते है, चाहे उन्हें विघ्नों का क्षण-क्षण में आघात क्यों न सहना पड़े।

(२) भाषा प्रवाहपूर्ण है।

दिशा विकम्पित''''''भूधर है।

शब्दार्थ—विकम्पित=कांपती हुई। असीम=सीमा रहित। अनन्त=आकाश। पदतल=चरणो के नीचे। भूधर=पहाड़। पल=समय।

व्याख्या—श्रद्धा मनु से कहने लगी कि अब हम ऐसे स्थान पर खड़े हुए हैं जहाँ पर दिशाएँ कांपती हुई-सी प्रतीत हो रही है अर्थात् सम्यक रूप से यह भी नही निश्चित हो पा रहा है कि कौन-सी दिशा किस ओर है। इसके साथ समय का भी कोई पता नही लग रहा है—समय की सीमा के विपय मे ठीक ज्ञान नही हो रहा है। अब हम ऐसे स्थान पर आ पहुँचे है जहाँ दिशा एव काल का ज्ञान प्राप्त करना अनिश्चित-सा हो गया है। अब तो अपने ऊपर सीमाहीन, विस्तृत आकाश ही दिखलाई दे रहा है, अनुभव करके यह तो वतलाओ कि जिस पर्वत पर तुम खड़े हो क्या वह अब भी तुम्हारे चरणों के नीचे है।

विशेष—(१) साधना की चरम सीमा के विपय मे यहाँ उल्लेख संकेत रूप मे किया गया है। साधक ऐसे स्थान पर पहुंच चुका है जहाँ वह दिशा-काल सीमा से मुक्त हो जाता है। साधक अपनी साधना के चरम बिंदु पर पहुंचकर ब्रह्म मे लय हो जाता है। सूर्य, चंद्र, तारे, धरती आदि की अनुभूति से वह साधक परे हो जाता है। इस सम्बन्ध में कण्ठोपनिपद् मे लिखा है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिद विभाति ॥

(२) अंतिम दो पंक्तियों का भाव यह है कि वे स्थूल रूप मे पर्वत पर भले ही खडे है—किन्तु इस समय वे भौतिक पदार्थों के आकर्षण से सर्वथा परे है। वे ऐसे आधार पर खड़े हुए है जो दिशा काल की सीमाओं से मुक्त हैं।

निराधार है……उपाय नहीं है।

शब्दार्थ—निराधार=आधार रहित। नियति=संसार का नियमन करने वाली शक्ति।

व्याख्या—श्रद्धा ने मनु से कहा कि हम जिस स्थल पर खड़े है—उस स्थान के नीचे पर्वत न होने के कारण हम लोग यहाँ आधारहीन होकर खड़े है तो भी हमे यही पर ठहरना पड़ेगा। हम इस स्थान पर रहकर परमात्मा की पूरे ससार के नियमन करने वाली शक्ति के प्रभाव से मुक्त हो चुके है। हमे यहाँ ठहरना ही होगा—इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही है।

विशेष—(१) यहाँ प्रसाद की नियतिवादी विचारधारा का विकास हुआ है जो शैवदर्शन पर आधारित है। माहेश्वराचार्य अभिनवगुप्त ने नियति के विपय मे यह वतलाया है कि यह भिन्न-भिन्न कारणों की योजना करने वाली शक्ति है। शैवदर्शन मे इसे ग्यारहवाँ तत्व माना गया है। यह नियति प्रत्येक जड़-चेतन पदार्थ को अपने कार्य मे लगाती रहती है। उसका प्रभावक्षेत्र

सम्पूर्ण विश्व है। साधना की चरम सीमा पर पहुँचकर साधक नियामक शक्ति के शासन से प्रभावित नही हो पाता। इस समय श्रद्धा तथा मनु दोनों ज्ञान के चरम बिंदु पर पहुँच चुके है। यही कारण है कि श्रद्धा वहीं ठहरने के लिए कह रही है ताकि उन्हें विश्व के सुख-दु:खमय कार्य न देखने पड़ें। इस नियामिका शक्ति के सम्मुख किसी व्यक्ति की कुछ भी नही चलती है।

झाई लगती जो······ही आ सहती।

शब्दार्थ—झाई=नेत्रों के सम्मुख अंधेरा-सा (धुँधलका) छा जाना। झोंक दूसरी=उत्साह।

व्याख्या—श्रद्धा मनु से कहती है कि हे मनु ! सूर्य, चंद्रमा तथा नक्षत्रों के यहाँ विद्यमान होने के कारण तुम्हें अपने नेत्रो के सामने धुँधला-सा अंधेरा दिखलाई दे रहा है। यह छाया हुआ अंधकार थोड़ा-सा ऊपर बढने की ओर प्रेरित कर रहा है। अब तक वायु के तीव्र झोंके, जो अनुभूत हुए है, वे अब नही होंगे। आगे थोड़ा और चलने पर ये विपरीत तथा तीव्र झोंके हमारा कुछ भी न कर सकेंगे। जब हमारे मन में परम उत्साह होगा तब तीव्र वायु के झोकों को भी हम सहन कर सकेंगे।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने पर्वत पर आरोहण करने वालों की दशा का वास्तविक चित्रण किया है। पर्वतारोहियों को पर्वतारोहण करने में बेहद थकान अनुभव होती है। यहाँ तक कि प्रतिकूल तथा तीव्र वायु के झोको से वह साहस खो-सा देता है। उसकी स्थिति उस समय वे ही भली प्रकार से समझ सकते है। हाँ, मन का उत्साह और प्रेरणा ही एक ऐसी महान भावना है जो उन्हे अग्रसर होने मे विशेष सहायता करती है। अन्त मे साहस एवं उत्साह का सम्बल ग्रहण कर वह अपने लक्ष्य में विजय प्राप्त करता है। इसी प्रकार साधक को भी साधना के मार्ग में कम कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता। सांसारिक आकर्षण एवं मोहपाश उसे विचलित करने का यथासंभव प्रयत्न करते है किन्तु सच्चा साधक मोहपाश में कभी आबद्ध नही होता। लक्ष्योन्मुखी प्रवृत्ति एवं कल्पना की शक्ति उसके मन में अपार साहस एवं उत्साह भर देती है। यहाँ श्रद्धा विश्वास की साकार मूर्ति है। वह भी मनु को अग्रसर करने के लिए सचेष्ट है। श्रद्धा में निस्सीम साहस है। अभीष्ठ यही है कि ज्ञान के क्षेत्र मे पहुंचने के लिए इस समय प्रतिकूल वातावरण की यातनाओं को सहकर विजय प्राप्त की जा सकती है।

(२) **अलंकार**—रूपकातिशयोक्ति—'झोंक दूसरी ही आ सहती'।

श्रान्त पक्ष, कर……जम रहें।

शब्दार्थ—श्रान्त=थके हुए। पक्ष=पंख। विहग-युगल=पक्षी-दम्पति। शून्य=आकाश।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि आज हम दोनो उडते हुए नर और मादा पक्षियो के जोडो के समान है। जिस प्रकार वे दोनों पक्षी असीम आकाश में वायु मे उडते हैं, उड़ते उड़ते थक जाने पर अपने पंखो को फैलाकर और अपनी आंखे मूद कर विश्राम कर लेते है, उसी प्रकार हम भी उन पक्षियो के समान आँखें बद करके यहाँ निराधार शून्य मे कुछ क्षण के लिए टिक लें ताकि विश्राम प्राप्त कर आगे वढ सके। शून्य तथा पवन पंखों के रूप मे हमे आधार प्रदान करें।

विशेष—(१) यहाँ मनु तथा श्रद्धा की तुलना पक्षी-दम्पति से की गयी है। गुण-साम्य विशेष रूप से दर्शनीय है—जिस प्रकार यात्रा से श्रान्त होकर वेचारे पक्षी निराधार शून्य मे पंखों को फैलाकर विश्राम कर लेते है, ठीक उसी प्रकार श्रद्धा निराधार में कुछ क्षणों के लिए मनु से विश्राम करने के लिए कह रही है। शून्य तथा पवन ही उनके सहायक है।

(२) नेत्र वद से अभिप्राय यह है कि हमे सांसारिक मोहपाश से विरक्ति हो जावे तभी स्थायी शान्ति प्राप्त हो सकती है। देशकाल की सीमा से मुक्त होकर साधक ज्ञान के अनन्त आलोक की स्थिति मे पहुँचने से पूर्व समधिक थकान तथा विकलता का अनुभव करता है—कतिपय क्षणो का विश्राम उसे आगे बढ़ने मे सहायता प्रदान करता है।

(३) यहाँ प्रसादजी ने विहग-युगल के माध्यम से मनु तथा श्रद्धा का चित्ताकर्षक वर्णन प्रस्तुत किया है।

(४) अलंकार—उपमा।

घबराओ मत……त्राण पा गये।

शब्दार्थ—समतल=चौरस भूमि (समभूमि)। त्राण=रक्षा, वचाव।

व्याख्या—श्रद्धा ने मनु को सान्त्वना देते हुए कहा कि अव घबराने की आवश्यकता नही है। अव तो हम विषम मार्ग को पार कर चुके है—हम समतल तथा सुन्दर स्थान पर आ पहुँचे है। श्रान्त एवं व्यथित मनु ने जब श्रद्धा की विश्वास भरी एवं मधुरिमा पूर्ण उक्ति सुनी तव उन्होंने अपने मुंदे नेत्रों को खोलकर सामने देखा कि वास्तव मे आगे समभूमि है—रमणीय स्थान है तो उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानो वे सुरक्षित स्थान पर पहुंच गए हों। उनके व्यथित मन

में एक नवीन आशा का संचरण हो गया। वे निराशा एवं थकान से मुक्ति की मानो अनुभूति करने लगे।

विशेष—(१) प्रसादजी ने श्रान्त, व्यथित एवं विकल व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। विषम एवं खार-गड्ढे वाले मार्ग को पार करते हुए जैसे कोई पथिक थक जाता है और वह निराश होकर विकल हो उठता है वैसे ही मनु भी श्रान्त एवं विकल हो चुके है। किन्तु ज्यों ही उसे समान भूमि के दर्शन होते है तो फिर उसके मन मे एक आशा जाग जाती है, वह साहस के साथ आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है। साधना के मार्ग की यातनाओं से त्रस्त साधक एक बार तो साहस खो बैठता है, किन्तु अनुकूल वातावरण एवं भौतिक साधनों से पूर्ण विरति का अनुभव कर उसका मन परम प्रसन्न हो उठता है। मनु भी आन्तरिक एवं बाह्य संघर्षो से जूझते हुए और येन-केन प्रकारेण आगे बढ़ते हुए आनन्द के चरम शिखर पर जा पहुँचते हैं।

(२) अलंकार—उपमा और रूपक।

ऊष्मा का अभिनव······नही व्यस्त थे।

शब्दार्थ—ऊष्मा=गर्मी। अभिनव=नूतन; नवीन। अस्त=छिपना। दिवा=दिन। दिवा-रात्रि का संधिकाल=दिन और रात के मिलने के बीच का समय; सायंकाल। व्यस्त=जुटे हुए, लीन।

व्याख्या—प्रसादजी कहते है कि समतल भूमि पर पहुँचकर मनु अपने हृदय में शक्ति तथा स्फूर्ति का अनुभव करने लगे। वहाँ ग्रह, नक्षत्र तथा तारे छिप चुके थे अर्थात् दिन में सूर्य निकलने तथा रात्रि मे चन्द्र-तारो के निकलने का कोई अस्तित्व ही शेष नही रह गया था। यहाँ तक कि दिन और रात्रि के मिलने का समय (सायंकाल) होने का कोई भी अनुभव नही होता था। तात्पर्य यह है कि वहाँ दिन-रात्रि का काल-विभाजन समाप्त हो गया था। अतएव प्रतीक रूप में सूर्य तथा तारे आदि दृष्टिगोचर नही होते थे। प्रकारान्तर से वह स्थान साधारण सीमा-रेखाओ तथा सामयिक परिवर्तन से सर्वथा मुक्त था।

विशेष—(१) प्रसादजी ने यहाँ ज्ञान के प्रभाव-क्षेत्र की ओर संकेत किया है। यह स्थान देशकाल की सीमाओ तथा सासारिक बधनो से सर्वथा मुक्त था। कठोपनिषद् मे भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है।

ऋतुओं के स्तर······सचेतनता नवीन सी।

शब्दार्थ—ऋतुओ के स्तर=क्रम से ऋतुओं का आना; ऋतु-परिवर्तन। तिरोहित=विलीन होना; नष्ट होना। विलीन=छिपना।

व्याख्या—उस समतल स्थान में ऋतुओं का क्रमबद्ध परिवर्तन समाप्त हो चुका था अर्थात् वहाँ भौगोलिक तथ्य दृष्टिगोचर नहीं होता। कारण, यह स्थान देश, काल तथा दिशाओं की सीमा से सर्वथा मुक्त था। पहले पृथ्वी मण्डल एक रेखा के समान दिखलाई दे रहा था, वह अब रेखा भी दिखलाई नहीं दे रही थी। अध्यात्म के इस पुनीत लोक में पहुँचकर मनु के अन्तस् में नूतन शक्ति का संचरण हो गया था।

विशेष—(१) प्रसादजी ने यहाँ जिस प्रकार का निरूपण किया है, वैसा ही भाव साम्य के रूप में उल्लेख जायसी ने किया है :

जहाँ न राति न दिवस है, जहाँ न पौन न पानि।
तेहि बन सुअटा चलि बसा, कौन मिलावै आनि॥

(२) प्रत्यभिज्ञादर्शनम् में नियति के तत्व को सीमित आत्मा की नियामिका शक्ति के रूप मे अभिहित किया गया है। ज्यों ही वह आत्मा सीमित अवस्था से मुक्त होकर शिवतत्व की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है, त्यों ही वह नियामिका शक्ति के शासन से मुक्त हो जाती है और उसे ताप, शैत्य एवं ऋतु-परिवर्तन आदि की अनुभूति नही होती। फलतः पृथ्वी-मण्डल के मनोरम आकर्षण से विरत होकर उसके हृदय मे नवीन चेतना उद्बुद्ध हो जाती है।

त्रिदिक विश्व, आलोक······किन्तु सजग थे।

शब्दार्थ—त्रिदिक=तीनों दिशाएँ। आलोक-बिन्दु=प्रकाशपुंज। त्रिभुवन =तीन लोक, स्वर्ग लोक, मर्त्यलोक एवं पाताल लोक। सजग=जाग्रत। अनमिल=भिन्न।

व्याख्या—मनु को तीन दिशाओं में स्थित प्रकाश के तीन बिन्दु (गोले-प्रकाशपुज) दृष्टिगोचर हुए मानो वे प्रकाशपुज तीन लोक—स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल के प्रतीक के रूप मे हों। वे तीन लोक एक-दूसरे से सर्वथा पृथक होते हुए भी जाग्रत अर्थात् चेतनता के प्रकाश से पूर्णतः ओतप्रोत थे।

विशेष—(१) प्रसादजी ने यहाँ पर शैवागम की विचारधारा के अनुरूप त्रिलोक का वर्णन किया है। शैव-दर्शन के अन्तर्गत इच्छा, ज्ञान एव क्रिया—इन तीन लोको का उल्लेख मिलता है। इन तीन लोको का नियमन करने वाली शक्ति त्रिपुरा देवी की संज्ञा से अभिहित की गई है। इसका रूप ब्रह्मा, विष्णु एव शिवमय है। इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया—इस त्रिपुर के तीन कोण बताए गए है। इच्छा-शक्ति विश्व के निर्माण की कारण-स्वरूपा है—यह शक्ति ही सृष्टि की कामना करती है तथा समस्त प्राणियों को भिन्न प्रकार के कर्मों मे लीन

करती है। ज्ञान-शक्ति दो प्रकार की होती है। उसका एक रूप तो अपूर्णता का आभास कराता है और दूसरा रूप शुद्धाशुद्ध मार्ग को ज्ञान-प्रकाश से आलोकित करता है। क्रिया-शक्ति से समस्त प्राणियों का संघटन होता है। जब ये तीनों शक्तियां एक ही चिति (चेतना-शक्ति) मे लीन हो जाती है तब सामरस्य की अनुभूति होती है। इस अवस्था को तन्त्रालोक में 'निरंजनावस्था' से अभिहित किया गया है।

(२) यहाँ तीन आलोक-बिंदु के बिम्ब के माध्यम से उक्त तीनो लोको का चित्ताकर्षक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

मनु ने पूछा······इन्द्रजाल से मुझे बचाओ।

शब्दार्थ—ग्रह=सूर्य आदि नक्षत्र। इन्द्रजाल=मायाजाल।

व्याख्या—जब मनु ने अपने नेत्रों से इन तीन प्रकाश-पुंजों (लोकों) को देखा तो उन्हे परम आश्चर्य हुआ और वे श्रद्धा से उनके विषय में पूछने लगे कि हे श्रद्धे! ये दिखलाई दे रहे नए नक्षत्र कौन से है? इनके क्या नाम है? मुझे यह तो बतलाओ कि मै किस नवीन लोक मे आ पहुचा हूँ। मुझे तुम समझाओ ताकि मैं इस जादुई मायाजाल से मुक्त हो सकूँ। मैं इस समय विशेष उलझन मे उलझ कर रह गया हूँ।

विशेष—(१) तीनो लोकों को देखकर मनु के हृदय में उनके विषय मे जिज्ञासा उत्पन्न हो उठी है, इसके साथ ही विस्मय भी उन्हे कम नही हो रहा है। इस उलझन से वे मुक्ति प्राप्त करना चाहते है। कारण यह है कि मनु के हृदय मे सांसारिक आकर्षण का कोई महत्व अब नही रह गया है। इन तीनो लोको के ज्ञान से वे अभी तक अनभिज्ञ है। उनके कुतूहल को शान्त करने के लिए श्रद्धा तीनो लोकों के विषय मे क्रमपूर्वक एवं विस्तारपूर्वक आगे बतलावेगी।

(२) इन्द्रजाल के बिम्ब द्वारा मनु की आन्तरिक उलझन का मर्मस्पर्शी चित्रांकन किया गया है।

इस त्रिकोण के······क्रिया वाले ये।

शब्दार्थ—त्रिकोण=तिकोना, तीन बिन्दुओ के रूप मे स्थित त्रिपुर। विपुल=अधिक। क्षमता=सामर्थ्य।

व्याख्या—मनु को दिखलाई पड़ने वाले इन तीन लोको का रहस्य समझाते हुए श्रद्धा कहने लगी कि ये तीन लोक तीन बिन्दुओं (प्रकाश-पुंजो) के रूप मे

भिन्न होकर स्थित है। इन तीन विन्दुओ से मिलकर एक त्रिकोण प्रतीत हो रहा है। तुम इस त्रिकोण के मध्यवर्ती विन्दु (केन्द्र विन्दु) के रूप में यहाँ अवस्थित हो। (ब्रह्माण्ड पिण्ड का सूक्ष्म रूप है अतः पिण्ड को ब्रह्माण्ड का केन्द्र-विन्दु माना गया है)। अव तुम तीनों लोकों मे से प्रत्येक लोक को सुस्थिर होकर देखो। इन तीनों लोकों मे अत्यधिक शक्ति एवं सामर्थ्य भरी हुई है। ये तीनों लोक क्रमशः इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया के प्रतीक रूप मे हैं।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियो मे दर्शन तथा कविता का सपृक्त रूप विशेष रूप से दर्शनीय है। यहाँ तीन मनस्तत्वों—इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया का कवित्वपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कवि ने मनु को त्रिकोण के मध्य विंदु के बिम्ब के माध्यम से विशेष रूप मे निर्दिष्ट किया है। मनु मन के प्रतीक रूप में है और इस मन के चतुर्दिक त्रिलोक स्थित है। दर्शनवादी विचारधारा के अनुसार यह मन चार प्रकार की अवस्थाओ (जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय), चार प्रकार के शरीरो (स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं महाकारण) और चार प्रकार की सृष्टि (अंडज, उद्भिज, स्वेदज एवं योनिज) में व्याप्त रहता है। स्वर्ग, नरक, चर-अचर आदि की आश्रय भूमि मन को ही वतलाया गया है। इसी मन के प्रभाव से प्राणी देव, दैत्य, नर आदि भिन्न रूपो मे प्रकट होता है।

वह देखो रागारुण······प्रतिमा का मन्दिर।

शब्दार्थ—रागारुण=अनुराग के समान लाल रंग वाला। कंदुक=गेंद। छायामय=छाया से युक्त; सूक्ष्म। कमनीय=सुन्दर। कलेवर=शरीर। भावमयी प्रतिमा=भावों का साकार रूप; भावो का मूर्त्त रूप अर्थात् इच्छा।

व्याख्या—भावलोक की ओर संकेत करते हुए श्रद्धा ने वतलाया कि पहले इस लोक को देखो। यह लोक अनुराग के समान लाल रग वाला है अर्थात् अनुराग रंजित है और ऊषा की गेंद अर्थात् गोल ब्रह्माण्ड की भांति मनोरम दृष्टिगोचर हो रहा है। यद्यपि इसका यह स्थूल शरीर नही है, तथापि यह छाया से युक्त होकर अर्थात् सूक्ष्म शरीर से भी परम चित्ताकर्षक प्रतीत हो रहा है। यह भावो का लोक है अर्थात् यहाँ भावो से परिपूर्ण इच्छा साकार रूप मे निवास करती है जिस प्रकार किसी देवालय मूर्ति प्रतिष्ठित है।

विशेष—(१) साहित्य में अनुराग का रंग लाल वर्णित किया गया है। अनुराग का सम्बन्ध इच्छाओं से होता है। अतः भावलोक का रंग भी लाल

बतलाया गया है। भावों का अस्तित्व आकर्षक होने पर भी छायामय अर्थात् धुंधला-सा होता रहता है।

(२) यहाँ 'ऊषा के कन्दुक' के बिम्ब के माध्यम से भावलोक का सुन्दर वर्णन हुआ है। जिस प्रकार कन्दुक की सार्थकता स्थिर रहने में न होकर एक ओर से दूसरी ओर जाने मे ही होती है उसी प्रकार इच्छाएँ भी क्षण-क्षण में नवीन रूप धारण करती रहती है।

(३) अलंकार—रूपक, पूर्णोपमा।

शब्द, स्पर्श, रस······रंगीन तितलियाँ।

शब्दार्थ—शब्द=कर्णगोचर होने वाली आवाज। स्पर्श=त्वगिन्द्रिय द्वारा अनुभव की जाने वाली स्वानुभूति। रूप=नेत्रों द्वारा देखी जाने वाली क्रिया। गंध=नासिका (घ्राणेन्द्रिय) द्वारा सूंघने की अनुभूति की जाने वाली क्रिया। पारदर्शिनी=आरपार दीखने वाली। सुघड़=सुन्दर। पुतलियाँ=मूर्तियाँ; पुत्तलिकाएँ।

व्याख्या—भावलोक का वर्णन करते हुए श्रद्धा ने मनु को समझाया कि इस भावलोक मे मधुर ध्वनि सुनने के लिए श्रोत्रेन्द्रियाँ, कोमल अंगस्पर्श करने के लिए त्वगिन्द्रियाँ, मधुर, कटु, कषाय, तिक्त आदि स्वादों को चखने के लिए रसनेन्द्रियाँ, मनोरम और सुन्दर वस्तुओं का दर्शन करने के लिए नेत्रेन्द्रियाँ एवं सुगंधि की अनुभूति करने के लिए घ्राणेन्द्रियाँ, मनोरम, सुगठित एवं पारदर्शिनी पुतलियो के रूप मे सदा सर्वत्र नृत्य करती हुई दिखलाई देती हैं, जिस प्रकार परम सुन्दर तथा रंग-विरंगी तितलियाँ मनमोहक, सुविकसित एवं सुरभित पुष्पों पर सदा मंडराती रहती है।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने पाच ज्ञानेन्द्रियों के विषय में बतलाया है—श्रोत, त्वक्, रसना, नेत्र तथा नासिका। प्रत्येक इन्द्रिय का अपना-अपना पृथक क्षेत्र होता है। इन्द्रियो का अपने व्यापार में प्रवृत्त होना एक प्रकार की सहज क्रिया है—अपने विषय की ओर स्वत: खिची चली जाती हैं। अतएव ये पारदर्शिनी है। इन इन्द्रियो की समता रंग-विरंगी तितलियों से स्थापित करके अतीव मनोरम चित्र उपस्थित कर दिया गया है। अतएव रंगीन तितलियों का बिम्बविधान सटीक हो गया है; जिस प्रकार तितलियाँ सुगन्धित फूलों पर मंडराती है—नृत्य करती है उसी प्रकार प्राणी मात्र की ये इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय की ओर बावली-सी होकर नाचती फिरती हैं।

(२) अलंकार—मानवीकरण।

इस कुसुमाकर के······माया में।

शब्दार्थ—कुसुमाकर=वसन्त, ऋतुराज; यौवन। कानन=वन। अरुण पराग=रक्त वर्ण का पुष्परज, मकरन्द; प्रेम। माया=जादू; आकर्षण।

व्याख्या—श्रद्धा मनु से कहती है कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध-पृथक-पृथक विषय की ओर भागने वाली ये पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ यौवन एवं अनुराग की भावना से परिपूर्ण शरीर के चारों ओर तृष्णा बुझाने के लिए इठलाती है, कभी शरीर मे लीन हो जाती हैं और कभी-कभी इन पर घूमती फिरती हैं। इनकी ये सब क्रियाएँ उसी प्रकार होती है जिस प्रकार वसन्त ऋतु के आने पर वन में रक्तिम आभा वाले परिमल से परिपूर्ण सुरभित, सुविकसित एवं रंग-बिरंगे फूलो पर उन्माद भरी भावना के वशीभूत होकर रंगीन तितलियाँ कभी इधर-उधर इठलाती हुई चक्कर लगाती है, कभी उन फूलों पर सो जाती हैं और कभी जागकर पुनः मडराने लगती है।

विशेष (१) यहाँ प्रसादजी ने सुरभित, सुन्दर एवं सुकोमल फूलों पर मण्डराती हुई तितलियो से ज्ञानेन्द्रियो की समता स्थापित की है जिससे वर्णित विषय मनोरम बन गया है। वस्तुतः सहृदयिता [illegible] रूप से [illegible] है। भावनाओं का कल्पना-लोक भी परम सुखद एवं [illegible] होता है।

(२) यहाँ 'कुसुमाकर के कानन' के बिम्ब के माध्यम से यौवन तथा अरुण पराग के बिम्ब के माध्यम से अनुराग का सफल [illegible] किया गया है।

(३) अलंकार—मानवीकरण, रूपकातिशयोक्ति।

वह संगीतात्मक ध्वनि······तर कर देती।

शब्दार्थ—संगीतात्मक ध्वनि=स्वर, लय, ताल के अनुरूप ध्वनि। ध्वनि का अंगडाई लेना=ध्वनि गूंजना। मादकता=मस्ती। [illegible] [illegible]। तर करना=निमग्न कर देना।

व्याख्या—श्रोत्रेन्द्रिय के विषय शब्द के [illegible] [illegible]
जब इन भावलोक में मधुर [illegible] शब्द-ध्वनि वाली [illegible] की [illegible]
लय एवं ताल के अनु[illegible] ध्वनि [illegible] हुई [illegible]
पहुंचती है तब वह मस्ती [illegible] [illegible] वातावरण
रस में निमग्न कर देती [illegible] [illegible]
गायक स्वयं भी आनन्द [illegible] [illegible]
वातावरण को आनन्द [illegible] देता है। [illegible]

मीठी तथा सुकोमल भावनाएँ नवीन रूप धारण कर उद्भूत होती है तब मन मस्ती में झूम उठता है।

विशेष—(१) यहाँ यह बतलाया गया है कि इस भावलोक में पाचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय प्राणियो की लालसा को सदा बढ़ाते रहते हैं।

(२) यहाँ 'मादकता की लहर' के बिम्ब के द्वारा सगीत की ध्वनि का सुन्दर वर्णन किया गया है।

(३) अलंकार—विशेषण विपर्यय, मानवीकरण

आलिगन सी मधुर.........फिर जा मुंदती।

शब्दार्थ—आलिगन=आश्लेष, गले मिलना। प्रेरणा=इच्छा। सिहरन=कम्पन, पुलक। अलम्बुषा=लाजवन्ती का पौधा जो अंगुली का संकेत पाकर ही मुरझा जाता है; छुईमुई। व्रीडा=लज्जा, संकोच, सिकुड़न।

व्याख्या—श्रद्धा मनु से कहती है कि स्पर्श की भावना से ओतप्रोत मधुर प्रेरणा आलिगन-सा करती हुई पहले तो स्पर्श करती है अर्थात् मानव के मन को अपनी ओर आकृष्ट करती हुई जकड-सा लेती है किन्तु उसी समय सत्वगुण के उदय होने के कारण वह प्रेरणा एक कंपकपी के रूप में परिणत हो जाती है जिससे शरीर की दशा लाजवन्ती के पौधे के समान हो जाती है। जिस प्रकार लाजवन्ती का पौधा पहले तो सुचारु रूप से विकसित होता है किन्तु अंगुली के स्पर्श मात्र से मुरझा जाता है उसी प्रकार यह शरीर आलिगन से पूर्व तो सुविकसित रहता है क्योंकि उसमें आलिगन करने की तीव्र भावना विद्यमान होती है किन्तु आलिगन की सुखद अनुभूति में लीन होकर सकोच का अनुभव करता है। तात्पर्य यह है कि इच्छाओ की पूर्ति पूर्ण रूप से नही हो पाती।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने त्वगिन्द्रिय के स्पर्श विषय का सशक्त एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है।

(२) 'अलम्बुषा' के बिम्ब के माध्यम से नर-नारी के आलिगन का विषय चित्ताकर्षक हो गया है।

(३) अलंकार—पूर्णोपमा।

यह जीवन की.........स्पंदित होती।

शब्दार्थ—मध्यभूमि=मध्यलोक; यौवन की अवस्था। लालसा=तीव्र इच्छा। प्रवाहिका=नदी। स्पंदित=गतिशील, प्रवाहमय।

व्याख्या—श्रद्धा यहाँ रसनेन्द्रिय के विषय मे कह रही है कि जिस प्रकार जीवन में यौवनावस्था, मध्यावस्था कहलाती है उसी प्रकार यह भावलोक जीवन

का मध्यलोक समझना चाहिए। युवावस्था में जिस प्रकार प्रेम की मधुर धारा बहती है, इच्छाओ की तीव्र एव उत्ताल तरंगें उठती है तथा वे प्रेम-मार्ग को प्रतिक्षण प्रशस्त करती रहती है। उसी प्रकार इस भावलोक में आनन्द की रस-धारा भावलोक को आप्लावित करती रहती है, लहरों के समान आकांक्षाएं हिलोरें लेती है और इसी ललक से प्रेरित होकर भाव सरिता सदैव गतिशीलता धारण करती रहती है।

विशेष—(१) यहाँ प्रमादजी ने भावलोक को जीवन की मध्य भूमि के रूप में बतलाया है क्योंकि 'प्रत्यभिज्ञादर्शनम्' मे इच्छा-शक्ति को 'भावरूपा' के नाम से अभिहित किया गया है।

(२) यहाँ नदी की धारा एवं लहरों के बिम्ब को प्रस्तुत करके यौवन-काल मे प्रवाहित हो जाने वाली प्रेम की धारा एवं लालसा का मनोहर चित्र अंकित किया गया है।

(३) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति, सांगरूपक।

जिसके तट पर······सुन्दर मतवाले।

शब्दार्थ—जिसके=प्रेम नदी के। विद्युत् कण=अणु-परमाणु। मनोहारिणी=मन को सुन्दर प्रतीत होने वाली। छायामय सुषमा=अपार्थिव सुन्दरता; सूक्ष्म सौंदर्य।

व्याख्या—दृगन्द्रिय के विषय 'रूप' के विषय में श्रद्धा वर्णन कर रही है कि इस भावलोक में सतत प्रवाहित होने वाली प्रेम रस की नदी के किनारे विद्युत् कणों (अणु-परमाणुओं) के समान चित्ताकर्षक आकृति वाले अनेक जीव अपने अपार्थिव (सूक्ष्म) सौन्दर्य से युक्त होकर मादकता में विभोर होकर विचरण कर रहे हैं। तात्पर्य यह है कि भावलोक में इच्छाएँ अपने छायारूप में ही अवस्थित होती है, वे साकार नही हो पाती।

विशेष—(१) 'छायामय' पद से आशय यह है कि इच्छाओं का रूप छायामय ही होता है। इन इच्छाओं-आकाक्षाओं में विद्युत का-सा आकर्षण विद्यमान होता है। सूक्ष्म होने पर भी अनुभूति के योग्य एवं अमूर्त्त होने पर भी आकर्षक तथा मादक होती है।

(२) अलंकार—उपमा।

सुमन संकुलित भूमि······बूंदें झीनी।

शब्दार्थ—सुमन संकुलित=फूलों से भरी हुई। भूमि=मध्यलोक; भावलोक। रध्र=छेद। रसभीनी=रस से सिक्त। वाष्प=भाप। अदृश्य=दिखाई

न दे सकने योग्य। फुहारे=फव्वारे।

व्याख्या—घ्राणेन्द्रिय के विषय गंध का वर्णन करती हुई श्रद्धा कहने लगी कि भावरूपी पुष्पो से मधुर गंध बिखरा करती है। दूसरे शब्दों में—यहा प्रत्येक प्राणी के रोम-रोम मे से मधुर भावनाएँ प्रकट होती रहती हैं। मधुर गंध के अनेक फुव्वारे सदा छूटते रहते है जो मधुर गंध रूपी भाप के आवृत्त होने के कारण दृष्टिगोचर नही हो पाते। इनमें से अनवरत रस की भीनी-भीनी बूंदे झड़ती रहती है।

विशेष—(१) 'वाष्प अदृश्य फुहारे इसमें'—यह पंक्ति विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य यह है कि निराशा और असफलता को प्रकट करने वाली भावनाओ—आहो तथा आसुओ का यहा अनस्तित्व नहीं है। यहाँ कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति विशेष रूप से दर्शनीय है।

(२) यहाँ फुहारे के बिम्ब के माध्यम से गंध की प्राप्ति का सुन्दर चित्रांकन किया गया है।

घूम रही है······मुसक्याती माया।

शब्दार्थ—चतुर्दिक=चारो दिशाएँ। चलचित्र=फिल्म; चित्र। संसृति छाया=भावलोक के प्राणियो के प्रतिबिम्ब, अमूर्त भावसृष्टि। आलोक-विदु=प्रकाश विंदु।

व्याख्या—श्रद्धा मनु से कह रही है कि जिस प्रकार सिनेमा की फिल्म (चलचित्र) मे चित्रो मे अंकित विभिन्न दृश्य आँखों के सामने से घूमते दिखलाई देते है उसी प्रकार भावलोक मे भी यहा के प्राणियो के प्रतिबिम्ब चारो दिशाओ मे विचरण करते-से दृष्टिगोचर होते है और माया प्रकाश के केन्द्र विंदु अर्थात् भावलोक को चारो ओर से घेरकर यहाँ बैठी हुई मुसकराती रहती है क्योकि माया तो भावलोक की संचालिका-शक्ति के रूप मे है और मोह-राग मे बाधने वाली है। क्षण-क्षण मे बनते-बिगडते हुए भावचित्रो का अवलोकन करते हुए सदा मुसकराती रहती है।

विशेष—(१) 'प्रत्यभिज्ञादर्शनम्' मे माया को ईश्वरीय शक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है और भावलोक की संचालनकर्त्री बतलाया गया है। यह एक ऐसी ईश्वरीय शक्ति है जो शिव से अभिन्न होकर भेदपूर्ण सृष्टि उत्पन्न करती है। इसे विश्व के मूल कारण के रूप मे व्यक्त किया गया है। इसी से तीन पाशो, तीन मलो और पांच कंचुकों की उत्पत्ति होती है। यह

माया स्थिर होती है तथा सर्वत्र विद्यमान रहती है। यह विमोहिका शक्ति है जिससे चित्र शक्ति का प्रकाश आवृत्त हो जाता है। शैवदर्शन के विचारों के अन्तर्गत 'माया' का 'अस्ति' रूप ही स्वीकार्य है। शैवों के मतानुसार 'माया' विश्व की सृजन-शक्ति कहलाती है।

(२) 'चलचित्र' के विम्व के माध्यम से यहाँ भावलोक के मानवों की इच्छाओं का सशक्त चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

(३) अलंकार---उपमा।

भावचक्र यह······को चकित चूमती।

शब्दार्थ—भावचक्र=भाव रूपी पहिया। रथनाभि=रथ की धुरी। अराएं=पहिए के बीच मे लगने वाली लकड़ियाँ या ताने। चक्रवाल=पहिए की गोल आकृति।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि जिस प्रकार सारथि रथ चलाता है, रथ के चलने पर रथ के पहिए धुरी पर घूमते है और उस धुरी से सम्बद्ध पहिए के अन्दर की ओर चारो ओर लगी हुई ताने (अराएँ) कभी नीचे तथा कभी ऊपर की ओर आकर उस पहिए के गोल आकार को चूमती हुई सी दृष्टिगोचर होती है, ठीक उसी प्रकार भावलोक मे विराजमान माया-शक्ति अपनी इच्छा के अनुसार भावचक्र का प्रवर्तन करती रहती है—यह भावचक्र उसी की इच्छा की धुरी पर घूमा करता है। तात्पर्य यह है कि माया द्वारा प्रेरित भाव इच्छाओं को उत्पन्न करते है। शृंगार, करुण, रौद्र, हास्य, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, वीर एव शान्त—ये नौ रस इस भावचक्र की अराओ के रूप मे है जो क्रमशः रति, शोक, क्रोध, हास, भय, घृणा, विस्मय, उत्साह और निर्वेद भावों के इस गोल आकार को सदैव चकित कर स्पर्श करते रहते है। इस प्रकार माया द्वारा प्रेरित भावचक्र चलता रहता है।

विशेष—(१) यहाँ नवरसों तथा उनके स्थायी भावो के अटूट सम्बन्ध का वर्णन किया गया है। नवरस का मूलाधार इच्छा है। स्थायी भाव एक गोलक चक्र के रूप मे अवस्थित है। शृंगारादि नवरस उस गोलक चक्र की ताने (अराएँ) है जो इच्छा की नाभि पर घूमती है। 'चकित' शब्द से रस की आनददायिनी शक्ति की ओर संकेत किया गया है।

(२) रथचक्र के विम्ब के माध्यम से यहाँ भावो तथा रसो का सशक्त चित्रांकन किया गया है।

(३) अलंकार—सांगरूपक।

यहाँ मनोमय विश्व······जीव फाँसना ।

शब्दार्थ—मनोमय जगत=मानसिक जगत। रागारुण चेतन=अनुराग-रंजित चेतना। परिपाटी=परम्परा। पाश=जाल, फदा।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है कि इस मनोमय जगत मे सभी अपने मन में अनुरागमयी भावना मे लीन रहते है अर्थात् इस भावलोक मे आसक्ति का ही प्राधान्य विद्यमान रहता है। यहाँ माया का ही अखण्ड राज्य है। जिस प्रकार कोई वधिक जाल फैलाकर जीवो को उसमे फंसा लेता है, उसी प्रकार माया अपने जाल मे (आकर्षण के जाल मे) समस्त जीवो को फंसा लेती है अर्थात् अपनी ओर सभी को आकृष्ट कर लेती है। माया के शासन की यहाँ यही प्रणाली है।

विशेष—(१) कवि प्रसाद ने माया के विमोहक रूप का यहाँ चित्रण किया है।

(२) 'पाश बिछाकर जीव फासना'—प्रस्तुत बिम्ब के माध्यम से यहाँ प्राणियों के मोहजाल मे फँसने का सशक्त चित्रांकन किया गया है। 'प्रत्यभिज्ञादर्शनम्' में माया के आधीन बनाने वाले मलों को 'पाश' नाम से अभिहित किया गया है। इस प्रकार के पाश से आबद्ध जीव को 'पशु' की संज्ञा दी गयी है।

(३) अंतिम् पंक्ति मे मुहावरे का सशक्त प्रयोग किया गया है।

(४) अलंकार—दृष्टान्त।

ये अशरीरी रूप·········मचल रहे हैं सुन्दर झूले।

शब्दार्थ—अशरीरी=शरीरहीन; सूक्ष्म। सुमन=पुष्प। वर्ण=रंग; मन बहलाव। गध=सुगन्धि; मधुर भाव। अप्सराएँ=देवांगनाएँ; इच्छाएँ।

व्याख्या—श्रद्धा बतलाती है कि इस लोक के समस्त प्राणी पार्थिव रूप में है अर्थात् वे सूक्ष्म शरीर धारण किए हुए है। जिस प्रकार पुष्प अपने रंग, रूप तथा गध मे लीन रहते है उसी प्रकार ये अशरीरी प्राणी अपने मधुर भावो में मस्त होकर लीन रहते है अर्थात् मस्त होकर झूमते है। जिस प्रकार देवांगनाओं के मधुर संगीत की मादक ध्वनि के कर्णगोचर होते ही देवता विशेष रूप से भाव-विभोर होकर आकृष्ट हो जाते है और झूले पर झूलते हुए-से दिखलाई देते है, उसी प्रकार भावलोक के प्राणी इच्छाओ की मीठी-मीठी तानों को सुनकर तथा मस्त होकर भावो के झूले पर झूलते हुए से दृष्टिगोचर होते हैं।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ बतलाया है कि जिस प्रकार रंग और गंध

का कोई शरीर नहीं होता, उसी प्रकार ये भाव भी अशरीरी है किन्तु रंग-गंध में मन को आकृष्ट करने की तथा प्रसन्न करने की सामर्थ्य होती है उसी प्रकार अदृश्य भाव भी मन में गुदगुदी पैदा करते है। इसी प्रकार उन्होंने यह निर्दिष्ट किया है कि ज्ञानेन्द्रियों के विषय में आकृष्ट जीव एक प्रकार की मस्ती का अनुभव करता है।

(२) यहाँ सुमन के विम्ब के माध्यम से भावों के अशरीरी रूपों का, 'अपसरियों की तानों' के विम्ब के माध्यम से अनेक मधुर इच्छाओं का तथा भूले के विम्ब के माध्यम से प्रसादन का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

(३) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति, विशेषण विपर्यय।

भाव भूमिका······मधुर ताप की।

शब्दार्थ—भूमिका=पृष्ठभूमि। जननी=उत्पादनकर्त्री। प्रतिकृति= प्रतिमा। ज्वाला=अग्नि।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि इस भावलोक की रचना भावो की पृष्ठ-भूमि पर हुई है। यही भावों की पृष्ठभूमि सब प्रकार के पाप-पुण्यों को जन्म देने वाली है अर्थात् भावों की धरती से ही पुण्य तथा पाप दोनों उत्पन्न होते है—उत्कृष्ट भावों से पुण्यार्जन तथा निकृष्ट भावों से पापार्जन होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब प्राणी के मन मे अच्छे विचार होते है तो वह तदनु-कूल अच्छे अथवा पुण्यकार्य करता है और जब उसके मन में असत् विचारों की उत्पत्ति होती है तो वह बुरे कार्य करता है। जिस प्रकार किसी धातु को आग में तपाकर और उसे गलाकर सांचे में ढालकर मूर्ति तैयार की जाती है उसी प्रकार इस इच्छालोक मे शुभ और अशुभ भावों की मधुर ताप की आग में तपा कर स्वभाव को गलाया जाता है। फिर पुण्य या पाप के सांचे में ढालकर स्वभावों की मूर्तियो की रचना की जाती है। स्वभावानुरूप ही वह कार्य करता है। इस प्रकार मानव-स्वभाव की सृष्टि होती है।

विशेष—(१) 'गल ज्वाला से मधुर ताप ी' विम्ब के माध्यम से मानव के स्वभाव के बनने का चित्ताकार्षक वर्णन किया गया है।

(२) अलंकार—रूपक।

नियममयी उलझन······कुसुमों का खिलना।

शब्दार्थ—नियममयी=शासन के नियमों से परिपूर्ण। उलझन=समस्या। विटप=वृक्ष। नभ-कुसुम=आकाश के पुष्प।

व्याख्या—श्रद्धा मनु को बतलाती हुई आगे कहती है कि जिस प्रकार वन

में लताएँ वृक्ष से उलझकर लिपट जाती है अर्थात् लताएँ वृक्ष की शाखाओं में आश्रय पा लेती है उसी प्रकार भावलोक के प्राणियो के जीवन मे शासन सम्वन्धी नियम मन में उलझन पैदा करके भावो के साथ लिपट जाते है। परिणाम यह होता है कि भावलोक के प्राणी अपने मन की इच्छाओ के अनुकूल कार्य करने में सक्षम नही हो पाते। इस प्रकार उनके जीवन में उलझने पैदा हो जाती हैं जिस प्रकार वन मे लताओं तथा वृक्षो की उलझने पाई जाती है। उलझन के कारण उनकी आशाएं सफल नही हो पाती, जिस प्रकार आकाश मे पुष्प सुविकसित नही हो पाते। कहने का भाव यह है कि उनके मन मे संजोये हुए रंगीन तथा मधुर कल्पना के सपने साकार नही हो पाते।

विशेष—(१) यहाँ 'लता' के बिम्ब के माध्यम से उलझन का, 'विटप' के बिम्ब के माध्यम से भाव का, 'वन' के बिम्ब के माध्यम से जीवन का तथा 'नभ-कुसुम' के बिम्ब के माध्यम से आशा का सशक्त चित्रण किया गया है।

(२) अलंकार—सागरूपक।

चिर बसन्त का······एक डोर है।

शब्दार्थ—उद्गम=जन्म स्थान। पतझर— पतझड, निराशामय। अमृत= आनंद।

व्याख्या—श्रद्धा भावलोक के विषय में बतला रही है कि इस लोक के प्राणियो के मन मे असीमित आकाक्षाएं तथा कामनाएँ विद्यमान होती हं—यही कारण है कि ये लोग वसन्त ऋतु के सुविकसित पुष्प के समान युवावस्था जैसी मादक तथा निस्सीम चाह उत्पन्न करते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रत्येक प्राणी की प्रत्येक इच्छा कभी पूर्ण नही हो पाती—इच्छाओ की पूर्ति पूर्णरूप मे या आशिक रूप मे न होने के कारण वे असफलता की अनुभूति करते हैं। उनका जीवन निराशामय हो जाता हं और सदा संतप्त दिखलाई देते है। जिस प्रकार वृक्ष से पतझड़ के मौसम मे पत्ते गिरने लगते है और सूखे ठूँठ दिखाई देते हैं। ऐसे प्राणियो के जीवन मे सरसता दृष्टिगोचर नही होती। इस प्रकार यहाँ चिरवसन्त और पतझड़ दोनो ही विद्यमान रहते हं। एक ओर तो सभी लोग कल्पना के संसार मे प्रसन्नतापूर्वक विचरण करते रहते हैं दूसरी ओर जब उनकी इच्छाओ की पूर्ति नही हो पाती तब वे व्यथित हो उठते है—विष के तुल्य शोक या व्यथा का अनुभव करते है, इस प्रकार अमृत तथा विष—सुख तथा दुःख—दोनो ही एक ही डोर से बंधे हुए दिखलाई देते है। सुख तथा दुःख दोनो की सृष्टि समान रूप से होती है।

विशेष—(१) यहाँ वसन्त के बिम्ब के माध्यम से यौवनजन्य मादक इच्छा का, पतझड़ के विम्व के माध्यम से आशाओं के साकार न होने का, अमृत के विम्व के माध्यम से सुख का तथा 'हलाहल' के बिम्ब के माध्यम से दुःख का चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

(२) प्रतीकात्मकता द्रष्टव्य है।

(३) अलंकार—यथासंख्य और रूपकातिशयोक्ति।

सुन्दर यह......रहता विशेष है।

शब्दार्थ—श्याम=कृष्ण वर्ण। रहस्य=भेद।

व्याख्या—मनु श्रद्धा से कहने लगे कि हे देवि! तुमने यह भावलोक दिखलाया—यह अरुण (अनुराग रंजित) लोक परम सुन्दर है। परन्तु यह तो बतलाओ कि यह कृष्ण वर्ण वाला दूसरा लोक कौन-सा है? हे कामायनी! तनिक बतलाओ तो सही, इस लोक में क्या विशेष भेद छिपा हुआ है।

अलंकार—परांकुर।

मनु यह श्यामल......धूम धार-सा।

शब्दार्थ—श्यामल=कृष्ण वर्ण। अविज्ञात=अपरिचित। मलिन=धूमिल।

व्याख्या—श्रद्धा कर्मलोक के विषय में मनु को बतलाती है कि हे मनु! यह कृष्ण वर्ण वाला लोक कर्मलोक है। यह अंधकार के समान धुंधला-सा है और घना इतना है कि इसके सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना दुष्कर कार्य है। यही कारण है कि यह लोक अब तक अस्पष्ट है। यह लोक धुंए की धारा के समान मलिनता लिए हुए है। इस लोक के रहस्य को ज्ञात करना सम्भव नही है।

विशेष—(१) यहाँ कर्मलोक की गहनता, श्यामलता एवं इसमें अन्तर्निहित रहस्य की ओर संकेत करके यह बतलाया गया है कि कर्म की गति परम-विचित्र एवं गहन होती है। कर्म और अकर्म के भेद को सन्त और ज्ञानी भी नही समझ सके।

(२) अलंकार—उपमा।

कर्मचक्र सा धूम......नई एषणा।

शब्दार्थ—गोलक=गोल आकृति वाला। एषणा=इच्छा।

व्याख्या—श्रद्धा मनु मे कह रही है कि इस गोल आकृति वाले कर्मलोक

की शासनकर्त्री नियति है। इसका नियमन उसी के हाथ में रहता है। नियति अपनी इच्छा के अनुसार कर्मचक्र का संचालन करती है। कर्मचक्र निरन्तर घूमता रहता है। इस लोक के समस्त प्राणी किसी न किसी प्रकार की एषणा से व्यथित रहते है—कोई प्राणी पुत्रैषणा से, कोई वित्तैषणा से और कोई लोकैषणा से सदा पीड़ित रहता है। तात्पर्य यह है कि कोई प्राणी पुत्र प्राप्ति के लिए विकल रहता है तो कोई धन-प्राप्ति की लालसा मे जुटा रहता है और कोई अपनी ख्याति अर्जित करने के लिए सचेष्ट रहता है।

विशेष—(१) 'घूमते चक्र' द्वारा कर्मलोक का सुन्दर दृश्य उपस्थित किया गया है।

(२) **अलंकार**—पूर्णोपमा।

श्रममय कोलाहल'''क्रिया तंत्र का।

शब्दार्थ—श्रममय=परिश्रम से युक्त। प्रवर्तन=चलाना। तन्त्र=सिद्धांत, विधान।

व्याख्या—श्रद्धा मनु को समझाते हुए कह रही है कि जिस प्रकार किसी मिल अथवा कारखाने में बहुत भारी और विशाल मशीन लगी होती है, उसे चलाने के लिए बहुत से श्रमिक जुट जाते है, कुछ श्रमिक सामान लाने और ले जाने मे व्यस्त हो जाते है, भारी मशीन के गतिशील हो जाने के कारण तथा श्रमिको द्वारा कार्य करने के कारण वहाँ कोलाहल हो जाता है, सारा वातावरण व्यस्तता, व्याकुलता तथा पीड़न से युक्त हो जाता है उसी प्रकार कर्मलोक का प्रत्येक प्राणी अहर्निश परिश्रम करता है—विकलता अनुभव करने पर भी वह अपने कार्य मे जुटा रहता रहता है। वह क्षण-मात्र के लिए विश्राम करना नही चाहता जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके प्राण कर्म के दास वन गए हों। वहाँ का जन-जीवन कर्म यन्त्र के दास के रूप में वन कर रह गया है।

विशेष—(१) कवि प्रसाद ने यहाँ विश्व को एक कारखाने तथा कर्मचक्र को एक विशाल यन्त्र के रूप मे वतलाया है।

(२) यहाँ 'महायन्त्र' के विम्व के द्वारा कर्म की गति के विषय मे रोचक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

(३) **अलंकार**—सांगरूपक।

भाव राज्य के······टहल रहे हैं।

शब्दार्थ—भाव राज्य=कल्पना लोक। अणु=विद्युतकणों के समान तुच्छ प्राणी।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि भावलोक में रहते हुए प्राणी अपनी कल्पनाओं मे खोया रहता है और सुखानुभूति करता रहता है। किन्तु कर्मलोक में आते ही उसका समस्त सुख दुःख में परिणत हो जाता है। कर्मलोक की यही तो कठोरता है। मानसिक जगत् की रगीनियो मे वह आनन्द विभोर रहता है। सुखों के इस प्रकार दुःखों मे परिणत होते देखकर भी यहाँ के विद्युतकण सदृश प्राणी दूसरो को पीड़ित करने मे अपने को महान समझ बैठते हैं और मिथ्या-दम्भ से युक्त होकर इस प्रकार विचरण करते है जिस प्रकार कोई अभिमानी व्यक्ति अपने गले में फूलों का हार पहनकर अपने समान किसी को कुछ न समझता हुआ घूमता हो।

विशेष—(१) 'हिंसा गर्वोन्नत हारों में' के बिम्ब के माध्यम से यहाँ कर्मलोक के प्राणियो का वास्तविक चित्रण किया गया ह।

(२) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति और रूपक।

ये भौतिक सदेह······सब कराहते।

शब्दार्थ—भौतिक सदेह=भौतिक शरीर धारण करने वाले। भावराष्ट्र=भावलोक; कल्पना-लोक।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है कि यहाँ समस्त प्राणी क्षिति, जल, पावक, आकाश तथा समीर—इन पाँच भौतिक तत्वों से निर्मित स्थूल शरीर के रूप में कर्म करते हुए सदा जीवित रहने की कामना करते है, किन्तु जो नियम मानसिक जगत् (भावलोक) के प्राणियों के लिए सुखावह होते है एवं आनंदानुभूति कराते है—इस कर्मलोक के प्राणियों के लिए वे दण्ड रूप मे परिणत होकर दुःखावह होते है। यही कारण है कि यहाँ के समस्त प्राणी उत्पीड़न के फलसवरूप कराहते रहते है। अनवरत कर्म करने पर भी उन्हें मानसिक सुख-शान्ति नही मिल पाती। कारण, उन्हें सदा असन्तोष आक्रान्त करता रहता है। असन्तोप के कारण उनका दुःख समाप्न नही हो पाता।

विशेष—प्रसादजी ने यहाँ कल्पना-लोक का यथार्थ चित्रण किया है।

करते हैं, सन्तोष······सब कम्पित से।

शब्दार्थ—कशाघात=चाबुक का प्रहार। भीतिविवश=भय के कारण लाचार।

व्याख्या—कर्मलोक के निवासियों की प्रवृत्ति के विषय मे श्रद्धा कह रही है कि कर्मलोक के प्राणी अहर्निश अपने कार्य में जुटे रहते है, फिर भी उन्हें सन्तोष नहीं प्राप्त होता। उनकी गति इस प्रकार की है जिस प्रकार चाबुक की मार खाकर घोड़ा आगे बढता है ठीक वैसे ही इन्हें अज्ञात भय से कर्म करने की प्रेरणा मिलती रहती है। तात्पर्य यह है कि उनके मन में कर्म करने की इच्छा न भी हो तो भी उन्हें भय से त्रस्त होकर और विवश होकर कार्य करना ही पड़ता है। इस प्रकार कर्मलोक में भय तथा आतंक का वातावरण सदा बना रहता है।

विशेष—(१) कवि प्रसाद ने यहाँ कर्मलोक के निवासियो की प्रवृत्ति एवं गतिविधि के विपय में निरूपण किया है।

(२) **अलंकार**—उदाहरण।

नियति चलाती कर्म······रही है उपासना।

शब्दार्थ—तृष्णा=प्यास, तीव्र इच्छा। जनित=उत्पन्न। ममत्व वासना =ममता की भावना। पाणिपादमय=हाथ पैरों वाला प्राणी। उपासना— सेवा; पूजा।

व्याख्या—कर्मलोक के निवासियों मे पनपती हुई ममता-मोह की प्रवृत्ति के विषय मे श्रद्धा कहती है कि इस कर्मलोक के कर्मचक्र का संचालन करने वाली एकमात्र नियति है। नियति के द्वारा इन प्राणियो को भिन्न-भिन्न कार्यो के करने के लिए नियुक्त किया जाता है। यहाँ के प्राणियों के हृदय मे तीव्र लालसा होती है जिससे ममता-मोह की भावना पर्याप्त मात्रा में वढ गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि समस्त प्राणी किसी भौतिक शरीर वाले व्यक्ति विशेष की सेवा में अहर्निश लगे रहते है। इस प्रकार की सेवा-पूजा के फलस्वरूप उनके स्वार्थ की पूर्ति हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त प्राणी भौतिक सुख-उपभोग को ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य समझ रहे है।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ बतलाया है कि सृष्टि के समस्त कार्य नियति की इच्छा से नियोजित होते है।

(२) **अलंकार**—परिकरांकुर।

यहां सतत संघर्ष······सब समाज है।

शब्दार्थ—सतत=निरन्तर; अनवरत। विफलता=असफलता।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि इस कर्मलोक में संघर्ष, असफलता तथा कोलाहल का वातावरण विद्यमान है। यहाँ समस्त प्राणी अपना अधिकार जमाए रखने के लिए सदा सचेष्ट रहते है—सभी एक-दूसरे से आगे बढ़ना

चाहते है। उन्हें इस कार्य मे सफलता नही मिलती; फिर भी वे इस प्रकार की प्रवृत्ति का त्याग नही कर पाते। यहाँ हर क्षण उपद्रव होता रहता है। उनमे वुद्धि-विवेक का अभाव होता है। अतएव उन्हें अपने जीवन में असफलता प्राप्त होती है। उनको अपने जीवन के लक्ष्य के विपय में सम्यक् ज्ञान नही होता। इस प्रकार इस कर्मलोक का जन-समुदाय मतवाला वना हुआ है।

विशेष—प्रमादजी ने आधुनिक विश्व के संघर्ष की यथार्थ झांकी प्रस्तुत की है।

(२) 'अंधकार में दौड लगाना'—मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

स्थूल हो रहे......निर्मम गति है।

शब्दार्थ—स्थूल=भौतिक। परिणति=परिवर्तन। पिपासा=प्यास।

व्याख्या—श्रद्धा मनु से कहती है कि इस कर्मलोक मे कर्म की ही प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। सभी कर्मो के अनुसार फल भोगते है। यहाँ के प्राणी अपने-अपने कर्मो के अनुसार पार्थिव शरीर धारण करते है। यहाँ कर्म-फल से कोई प्राणी वच नही सकता। उनका संतप्त और विवेक शून्य होना उनके द्वारा किए गए कर्मो का ही फल है। इन स्थूल शरीर धारी प्राणियों के अन्तस् में अनेक आकांक्षाओ का उद्वेलन होता रहता है। उन्हे सदैव इच्छाओ की प्यास सताती रहती है। व्यक्तिगत ममता-मोह की भावना के कारण उनकी ऐसी कठोर गति दिखलायी देती है। उनमें वैयक्तिक भावना पर्याप्त मात्रा मे होती है। उन्हें दूसरो के विपय मे किसी प्रकार की चिन्ता नही होती।

विशेष—(१) यहाँ 'तीव्र पिपासा' के विम्व द्वारा आकांक्षाओं की ललक का सुन्दर चित्रांकन हुआ है।

(२) अलंकार—रूपक।

यहाँ शासनादेश......फिर फिर गिरवाती।

शब्दार्थ—शासनादेश=शासन की आज्ञा। दलित=शोपित।

व्याख्या—श्रद्धा मनु मे कह रही है कि इस कर्मलोक मे शक्ति से परिपूर्ण व्यक्ति निश्चित रूप से विजय प्राप्त करते है। वे दूसरे लोगो पर शासन करते हैं। उन्ही के शासन-विपयक आदेशो की घोपणा की जाती है—इस घोपणा में उनकी विजय का स्वर सुनाई देता है। इन शक्तिशाली व्यक्तियों के शासन सम्वन्धित आदेशो मे निर्वल तथा दलित लोगों के प्रति सहानुभूति नही होती। वे आदेश तो भूखे तथा दुःखित व्यक्तियों को विजयी एवं शक्तिशाली शासकों के चरणों मे वार-वार गिरने के लिए वाध्य करते है।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने व्यक्त किया है कि कर्मलोक मे समानता तथा न्याय के लिए कोई स्थान नही है। सर्वत्र सत्ताधारियो के आदेशो का ही पालन होता है।

(२) 'विजयों की हुकार' के विम्व के माध्यम से शक्तिशाली शोषक वर्ग का एव दलित के विम्व के माध्यम से शोषित वर्ग का चित्रांकन हुआ है।

(३) अलंकार—मानवीकरण।

यहाँ लिए दायित्व······वहने वाले छाले।

शब्दार्थ—दायित्व=जिम्मेदारी। ढुलकर=गिरकर।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है कि इस कर्मलोक के प्राणी, जिन्होंने अपने कन्धों पर कर्म का दायित्व धारण किया है, धार्मिक-सामाजिक आदि क्षेत्रों मे उन्नति करने के लिए अत्यधिक लालायित दिखलाई पड़ते है। वे विवेकशून्य है। अतएव उनकी किसी भी क्षेत्र मे प्रगति करने की चेष्टा निष्फल ही रह जाती है। वे स्वय भी दुःखित होते है और दूसरो को भी दुःखी करते रहते हैं। उनका कुछ भी अस्तित्व विद्यमान नही रहता। जिस प्रकार छाले पहिले तो जलन पैदा करते है, पीड़ा पहुँचाते है और फिर उनमे से पानी बहकर निकल जाने पर अपना अस्तित्व ही खो बैठते है, उसी प्रकार इन लोगो के शक्ति-साधन स्वयं अपने हाथो नष्ट हो जाते है।

विशेष—(१) प्रसादजी ने यहाँ स्वार्थी, विवेकशून्य, मदाध तथा पद-लोलुप व्यक्तियो का यथार्थ चित्रांकन किया है।

(२) अलंकार—दृष्टान्त।

यहा राशिकृत विपुल······पुनः गड़ रहे।

शब्दार्थ—राशिकृत=एकत्रित। विभव=ऐश्वर्य, वैभव। मरीचिका=मिथ्या, मृग-मरीचिका के समान।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि यहाँ प्रत्येक प्राणी अत्यधिक धन, सम्पदा, वैभव तथा सुखोपभोग के सचित करने मे क्रियाशील दृष्टिगोचर होता है। यहाँ वैभव, धन तथा सुखोपभोग सभी मृगतृष्णा के समान मिथ्या है फिर भी यहाँ के लोग झूठे धन-वैभव की प्राप्ति मे सचेष्ट रहते है। अन्त मे उन्हे असफलता ही हाथ लगती है। ये भौतिक सुख-ऐश्वर्य क्षणिक होते है। इनके उपभोग करने वाले भी अधिक समय तक जीवित नही रहते। इसे देखते हुए भी समस्त प्राणी भौतिक सुख-ऐश्वर्य की प्रतिद्वन्द्विता मे जुटे रहते है। भौतिक धन-सम्पदा, सुख-ऐश्वर्य तथा इनका उपभोग करने वाले—इन दोनो मे कोई भी स्थायी नही है।

विशेष—(१) प्रसादजी ने यहाँ नश्वर भौतिक सुख-समृद्धि के प्रति आसक्त प्राणियों के सम्बन्ध में वर्णन किया है।

(२) 'मरीचिका' विम्ब के माध्यम से भौतिक सुख-समृद्धि की निस्सारता को व्यक्त किया गया है।

(३) अलंकार—उपमा।

बड़ी लालसा यहाँ······निज गिनती।

शब्दार्थ—लालसा=तीव्र इच्छा। अंधप्रेरणा=असत् विचार।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि कर्मलोक के प्राणियों में लोकैषणा प्राप्त करने के लिए क्रियाशीलता अत्यधिक दिखलाई देती है अर्थात् अपनी ख्याति प्राप्त करने के लिए उनके अन्तस् मे एक तीव्र इच्छा होती है। यहाँ तक कि इस कीर्ति को प्राप्त करने के लिए वे कोई दुष्कर्म या गर्हणीय पाप-अपराध भी करने के लिए भी तुरन्त उद्यत हो जाते है। कर्मलोक के ये प्राणी प्रायः असत् विचारों से प्रेरणा प्राप्त करके ही सदैव कार्य करते है। उनके हृदय मे अहंकार की भावना विशेष रूप से पाई जाती है। अतएव वे अहंकारवश स्वयं को इन कार्यों का करने वाला समझते है।

विशेष—(१) यहाँ यह वतलाया गया है कि अत्यधिक लालसा असत् विचारों, अपराधों, पापकर्मों एवं दुराचरणों का कारण वन जाती है।

(२) यथार्थ चित्रण है।

प्राण तत्व की······जीते ही वनता।

शब्दार्थ—प्राण तत्व=प्राणी। उपल=ओला। वेदना=कष्टों को सहन करते हुए।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि इस कर्मलोक के प्राणियों की विशेपता यह है कि सभी को अपना जीवन परम प्रिय है। अपने इस जीवन की चिन्ता-उपासना मे सदा ये प्राणी जुटे रहते है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य विपय मे उन्हें तनिक भी चिन्ता नही है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनका चेतन जीवन जड़ वन गया है। जिस प्रकार प्रवाहित जल जम जाने के वाद वर्फ या ओले के रूप में जड़ हो जाता है, कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ जीवनदायक जल भी वर्फ और ओले के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। यहाँ प्राणो की मधुरता व कोमलता कठोरता में वदल जाती है। उन्हें स्वार्थ-भावना तथा विवेकहीनता की भावना घेरे रहती है। इस लोक के समस्त प्राणी अनेक प्रकार के अभावों से ग्रस्त होकर आन्तरिक वेदना का अनुभव करते है, जिस प्रकार प्यासा जल के न

मिलने पर छटपटाता है। वे वेदनाओं तथा व्यथाओं से व्यथित होकर अहर्निश उसकी ज्वाला में जलते रहते हैं जिस प्रकार घायल घावों की पीड़ा में जलता रहता है। इस प्रकार के प्राणी आवश्यकताओ की पूर्ति में विफल हो जाते हैं उन्हें तृप्ति रूपी जल उपलब्ध नही हो पाता। वे इसी प्रकार से अभावो तथा वेदनाओ की ज्वाला में जल-जलकर अर्थात् कष्टो को सहन करते हुए येन-केन प्रकारेण जीवित रहने के लिए बाध्य होते है। उन्हें अपने जीवन में सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति कदापि नहीं हो पाती।

विशेष—(१) यहाँ व्यथित एवं अभावग्रस्त प्राणियो के जीवन का सशक्त चित्रांकन किया गया है।

(२) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

यहाँ नील लोहित······मृत्यु सालती।

शब्दार्थ—लोहित=लाल रंग। धातु=सोना, लोहा आदि। सालती=पीडा पहुँचाती।

व्याख्या—श्रद्धा कहती है कि जिस प्रकार सुवर्ण, लोहा आदि धातु को किसी विशेष साचे में ढालने के लिए पहले आग में तपाया जाता है, आग की लाल व नीली लपटे उसे गला देती है और फिर साचे मे ढाला जाता है। इस प्रकार से नवीन वस्तुएँ निर्मित की जाती है। हथौड़ों के बार-बार प्रहार करने से उस धातु को कोई वेदना नही होती। यह स्थिति कर्मलोक के जीवात्मा के विषय में है। यहाँ प्रत्येक जीवात्मा को कर्म की प्रचण्ड ज्वाला में तपाया जाता है जिसकी लपटो मे गलकर उसे अपने द्वारा किए गए कर्मो के अनुसार आकार प्राप्त होता है। यह जीवात्मा अनेक आवश्यकताओं, अभावों तथा तज्जन्य वेदनाओं को सहती हुई, तनिक रुकती हुई एक रूप धारण करती है। मृत्यु प्राप्त हो जाने पर वह दूसरा नवीन रूप धारण कर लेती है। इस जीवात्मा को मृत्यु की पीडा भी नही कसकती।

विशेष—(१) यहाँ जीवात्मा की तुलना धातु से की गयी है।

(२) 'जला-गलाकर नित्य ढालती' के बिम्ब के माध्यम से यहाँ कर्मलोक के प्राणियों की दशा का सुन्दर चित्रण किया है।

(३) अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

वर्षा के घन······सरिता बह जाती।

शब्दार्थ—वर्षा के घन=वर्षा के बादल; तीव्र इच्छाएँ। नाद=ध्वनि; गर्जन। प्लावित=डुबोना, विलीन करना।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि जिस प्रकार पावस ऋतु मे मेघ गर्जना करते हुए वर्षा करते है जिसके फलस्वरूप नदी मे पर्याप्त मात्रा मे जल भर जाता है, वह नदी अपने तीव्र प्रवाह से अपने तट तथा तटवर्ती वृक्षादि अन्य वस्तुओं को सहज रूप मे गिराती हुई एवं वन तथा कुजो को जल मग्न करती हुई अपने लक्ष्य स्थान अर्थात् सागर की ओर अग्रसर हो जाती है उसी प्रकार कर्मलोक के प्राणी के अन्तस् मे तीव्र आकांक्षाएँ, उद्दाम इच्छाएँ हिलोरे मारती हुई उद्भूत हुआ करती है, जिनकी पूर्ति के लिए वह अनेक प्रकार के दुराचार, दुष्कर्म और अपराध करता है और इन अपराधो व दुष्कृत्यो के फलस्वरूप वह स्वय को तथा आत्मीय जनों को सहज रूप मे दुःख प्रदान करता है। अपने दुराचारो एवं अपराध-वृत्ति के कारण ही उसकी आशाएँ विलीन हो जाती है और वह अपने लक्ष्य मे संसिद्धि प्राप्त नही कर पाती।

विशेष—(१) कवि प्रसाद ने यहाँ वर्षा-काल मे उमड़ती नदी के विम्ब के माध्यम से कर्मलोक के प्राणी के लक्ष्यविहीन जीवन का सशक्त चित्राकन किया है।

(२) **अलंकार**—सांगरूपक एवं रूपकातिशयोक्ति।

बस, अब और······पुंजीभूत रजत है।

शब्दार्थ—पुजीभूत=एकत्रित। रजत=चांदी।

व्याख्या—कर्मलोक की भीषणता से भरे दृश्य को देखकर तथा विकल होकर मनु ने श्रद्धा से कहा कि हे देवि! बस, मैंने इस लोक को देख लिया—अब मैं इस लोक को नही देखना चाहता हूँ। यह कर्मलोक का दृश्य भयावह है। उन्हें तीसरे लोक के दर्शन की जिज्ञासा हुई। अतएव वे उस तीसरे लोक के विषय में श्रद्धा से पूछने लगे कि यह लोक कौन-सा है जो चादी की राशि के समान देदीप्यमान हो रहा है।

अलंकार—पूर्णोपमा।

प्रियतम! यह तो······जिसमें न दीनता।

शब्दार्थ—उदासीनता=तटस्थता। निर्मम=कठोर, निर्दय।

व्याख्या—ज्ञानलोक के विषय मे वर्णन करती हुई श्रद्धा मनु से कह रही है कि हे स्वामी! यह तीसरा लोक ज्ञान लोक कहलाता है। इसका रग श्वेत है। यह लोक ज्ञान का क्षेत्र है। इस लोक मे समस्त प्राणी सुखमयी एवं दुःखमयी—दोनों अवस्थाओ से तटस्थभाव से रहते है अर्थात् वे सुख-दुःख मे कभी लिप्त नही होते। इस लोक मे न्याय पर विशेष रूप से वल दिया जाता है। यहाँ के प्राणी औचित्य-अनौचित्य पर विशेष रूप से ध्यान देकर कर्म करते है। इसके अतिरिक्त

यहाँ किसी प्रकार की मानसिक दीनता या शरीरिक दुर्वलता नहीं आने दी जाती क्योंकि यहाँ के कार्यक्रम का संचालन बुद्धि द्वारा ही होता है।

विशेष—(१) यहाँ 'चक्र' के विम्व के माध्यम से बुद्धि का महत्वपूर्ण वर्णन किया गया है।

(२) अलंकार—रूपक।

अस्ति नास्ति······मुक्ति से।

शब्दार्थ—अस्ति=है; अस्तित्व। नास्ति=नही है। निरंकुश=स्वच्छन्द। निस्सग = निरासक्त, निर्लिप्त, मुक्ति।

व्याख्या—ज्ञानलोक के विषय मे श्रद्धा कहती है कि यहाँ के प्राणी बुद्धि के प्रधान्य होने के कारण अहर्निश ब्रह्म, आत्मा, जगत् तथा जीव आदि के अस्तित्व के विषय मे चिन्तन करते रहते है। अणु सदृश दिखलाई देने वाले यहाँ के निवासी अपने विचारो का समर्थन परस्पर निरपेक्ष होते हुए अनेक प्रकार की उक्तियो और तर्को द्वारा स्वतंत्र होकर दिया करते है। यहाँ के प्राणियों मे कुछ प्राणी तो जगत् के अस्तित्व को न मानकर केवल उस जगत् मे ही अस्तित्व स्वीकार करते है। कुछ प्राणी इस पक्ष में होते है कि पाँच भौतिक जगत् की सत्ता को मानते है और कुछ प्राणी ऐसे है जो इन दोनो के अस्तित्व के अंगीकार करने के पक्ष मे है। विशेषता तो यह है कि यहाँ के समस्त प्राणी संसार की किसी भी वात से सम्बन्ध नही रखते अर्थात् तटस्थ भाव से रहते है, फिर भी उनके अन्तर मे मोक्ष प्राप्त करने की तीव्र लालसा विद्यमान रहती है। इसीलिए वे प्राणी मोक्ष को प्राप्त करने हेतु किसी प्रकार से सम्बंध स्थापित कर लेते है अर्थात इसके लिए वे कोई न कोई चेष्टा करते रहते है।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

यहाँ प्राप्य मिलता···है ओस चाटती।

शब्दार्थ—प्राप्य=प्राप्त करने योग्य। तृप्ति=सन्तुष्टि। सिकता-सी= वालू के समान।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि यह ज्ञानलोक तो वौद्धिक जगत् है। इस लोक मे प्राणियो को केवल उनके कर्मो के अनुसार फल प्राप्त होता है। यहाँ जो प्राणी जितनी साधना अथवा तपस्या करता है उतनी ही सिद्धि उस प्राणी को प्राप्त होती है। साधना का अन्तर यहाँ रहता है अर्थात् साधना की मात्रा में वढोतरी या कमी के अनुरूप ही सिद्धि की मात्रा मे भी अन्तर हो जाता है। यहाँ इसका विचार नही किया जाता है कि अमुक को सिद्धि प्राप्त होने पर

तृप्ति होगी कि नही। अतएव यहाँ के किसी भी प्राणी को संतोप का अनुभव नहीं हो पाता। कर्मो के अनुसार जितना जिसका प्राप्य होता है, उतना ही उसे प्राप्त होता है। सारे प्राणी सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए विशेपतः लालायित रहते है। यहाँ का समस्त ऐश्वर्य तथा विभूतियाँ आदि वालू के समान शुष्क अर्थात् नीरस होती है। जिस प्रकार ओस के चाटने से कभी प्यास नही बुझती उसी प्रकार इस लोक के निवासियो की बुद्धि यहां के ऐश्वर्य, सिद्धियों-विभूतियों को प्राप्त करके तृप्त नही हो पाती।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ ज्ञान-प्राप्ति में निरत प्राणियों के रूप का चित्रण किया है।

(२) यहाँ 'सिकता' के विम्व के माध्यम से विभूतियो की नीरसता का सुन्दर वर्णन हुआ है।

(३) अलंकार—उपमा।

न्याय, तपस, ऐश्वर्य······तट जैसे जगते।

शब्दार्थ—तपस=तपस्या। निदाघ=ग्रीष्म ऋतु। मरु=रेगिस्तान। स्रोत=नदी।

व्याख्या—ज्ञानलोक के प्राणियों के विपय में श्रद्धा कह रही है कि ये न्याय (औचित्य तथा अनौचित्य का ज्ञान), तपस्या तथा बौद्धिक वैभव से युक्त होने के कारण परम देदीप्यमान तथा प्रभावशाली दृष्टिगोचर होते है किन्तु वास्तव में उनकी शोभा (चमक) उसी प्रकार महत्वहीन है जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु मे मरुस्थल की जलहीन नदियों के वालू भरे तटो की होती है।

विशेष—(१) 'निदाघ मरु···लगते'—पद द्वारा ज्ञानलोक के प्राणियों के विपय में सकेत किया है।

(२) अलंकार—उदाहरण।

मनोभाव से······तनिक वित्त से।

शब्दार्थ—मनोभाव=मन के विचार। कायकर्म=शारीरिक कार्य, परिश्रम आदि। सम तोलन=वरावर तोलना। वित्त=धन, द्रव्य, घूंस।

व्याख्या—श्रद्धा ज्ञानलोक के निस्स्वार्थ प्राणियों के विषय में वतला रही है कि वे अपनी मनोवृत्तियों के अनुसार अपने कर्त्तव्यों को मनोयोगपूर्वक करते हैं। जिस प्रकार न्यायाधीश निष्पक्ष भाव से न्याय करते है—वे किसी प्रकार धन के या रिश्वत के लालच मे न फँसते हुए न्याय के मार्ग से कभी विचलित नही होते, उसी प्रकार ज्ञानलोक के निवासी भी शारीरिक श्रम, योग, तप-

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि ज्ञानलोक के उन प्राणियो की ओर देखो, वे कितने सरल स्वभाव एव विनयी बने हुए है किन्तु इसके साथ ही वे अहर्निश शकित भी है कि कही उनसे कोई अपराध न हो जाए। इस प्रकार वे बाहर से सुशील किन्तु भीतर से सशंक। दूसरे शब्दो मे, यह भी कहा जा सकता है कि उनका मन अपराधों-दोषों से सदा संदिग्ध है। वे अपने भ्रू-संकेतों द्वारा अपने अहंकार का ही प्रकाशन कर रहे है यद्यपि वे सन्तोष प्रकट करने की चेष्टा करते है।

विशेष—(१) प्रसादजी ने यहाँ ज्ञानलोक के शंकित एवं अहङ्कारग्रस्त प्राणियों के जीवन की वास्तविकता से अवगत कराने का प्रयत्न किया है। दूसरे लोगों को प्रभावित करने के लिए तपश्चर्या एवं व्रत, उपवास आदि कठोर नियमों का पालन अवश्यमेव करते है किन्तु कामनाएँ उनके हृदय मे भी विद्यमान है। कर्म तथा भावनिरपेक्ष ज्ञानोपासना मे रत प्राणी अपने मनस्स्रोत को व्यक्त भले ही करे किन्तु इससे उनके जीवन मे पूर्णता नही आ पाती।

(२) अलंकार—कैतवापन्हुति।

यहाँ अछूत रहा······वंचित होने दो।

शब्दार्थ—अछूत=अस्पृश्य; जिसे स्पर्श न किया गया हो। जीवन रस=जीवन का आनन्द। मृषा=झूठ।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि वे ज्ञानलोक के प्राणी सदैव त्याग, तप एवं सयमपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहते है। यही कारण है कि वे जीवनरस अर्थात् जीवन के आनन्ददायक उपभोगो से विरत रहते है। उनका विचार यह है कि जीवन का आनन्द एकत्रित होने दो—जीवन के इस आनन्द का उपभोग न करो क्योकि यह आनन्द उनके लिए योग्य नही है। इस जीवन-रस के प्रति आसक्ति या मन मे इच्छा नही होनी चाहिए। कारण, यह तृष्णा असत्य है।

विशेष—(१) यहाँ सकेतित यह है कि ज्ञानलोक के प्राणी ज्ञानपिपासु होते हैं। ज्ञान-पिपासा ज्ञान के सदृश ही असीम तथा अनन्त होती है। ज्ञान की पिपासा उनके हृदय मे बलवती होती है। सासारिक सुख व आनन्द को वह मिथ्या कहते है और अलग रहने का प्रयत्न करते है। वैसे उनके हृदय में सासारिक सुखो के प्रति ललक तो रहती है।

(२) 'रस' के बिम्ब के माध्यम से यहाँ प्राणियों के जीवन की सजीवता को अभिव्यक्त किया गया है।

(३) अलंकार—श्लेष और रूपकातिशयोक्ति।

सामंजस्य करने चले······झुठलाते हैं।

शब्दार्थ—सामंस्य=मेल, तालमेल। विषमता=द्वेष, वैर, प्रतिकूलता। स्वत्व=अधिकार। झुठलाते=झूठा वतलाते है।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि ज्ञानलोक के ये निवासी सामरस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं अर्थात् भेद-भाव समाप्त करने के ज्ञानोपदेश देते है। परन्तु इनके नाना प्रकार के तर्क, वितर्कपूर्ण विचारों से विषमता-विरोध और प्रतिकूलता फैल जाती है। ये प्राणी कहते तो ये हैं कि ज्ञान जीवन का चरम ध्येय है किन्तु हृदय में उत्पन्न होने वाली सांसारिक इच्छाओं को 'मिथ्या' की संज्ञा से अभिहित करते है—अर्थात् उन्हें महत्वरहित वतलाते है। ये प्राणी दूसरों को तो निष्काम कर्म का उपदेश देते हैं किन्तु अपने हृदय में मोक्ष की प्राप्ति की उत्कट इच्छा रखते हैं।

विशेष—(१) कवि प्रसाद ने यहाँ यह वतलाया है कि ज्ञानलोक के प्राणी अपने ज्ञानोपदेश मे ज्ञान रूप परब्रह्म की उपलब्धियों को जीवन का चरम लक्ष्य वतलाते है और भेदभाव का निवारण ज्ञान द्वारा करने की वात करते हैं। सांसारिक सुख-प्राप्ति विषयक इच्छाओं को असत्य ठहराते है। वैसे ये अपने मन में मोक्ष-प्राप्ति की इच्छाएं रखते है। इस प्रकार इनके तर्क-वितर्क सामरस्य सुख-शांति का वातारण सृजन न कर विषमता (प्रतिकूलता) का वातावरण सृजन करते है। ऐसे प्राणी निवृत्ति मार्ग के पक्षधर कहलाते हैं। ये प्रवृत्ति मार्ग को हीन दृष्टि से देखते है। उसे त्याज्य वतलाते है। इस प्रकार उनकी दृष्टि में भौतिक, सांसारिक सुख-शान्ति का जीवन में कोई महत्व नही हैं। प्रवृत्ति मार्ग के अनुयायी संसार को सत्य ठहराते है। अतएव इच्छाओं की पूर्ति के लिए सचेष्ट रहते है और इच्छाओं को ही महत्व प्रदान करते हैं। इस प्रकार मत-वैषम्य होने के फलस्वरूप समुचित सामंजस्य का स्थापन नही हो पाता।

स्वयं व्यस्त पर······परिवर्तन में ढलते।

शब्दार्थ—व्यस्त=कार्य में जुटे हुए। शस्त्र-शास्त्र=विधि-निषेध रूपी हथियार। विज्ञान=विशेष ज्ञान। अनुशासन=नियम, आज्ञा। ढलते=परिवर्तित हो जाते।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि ज्ञानलोक के ये प्राणी तपश्चर्या, व्रत, उपवास, समाधि आदि साधना की अनेक विधियों में सतत् जुटे रहते है किन्तु अध्यात्म चिन्तन में लीन होने के कारण प्रकट रूप में शान्त दृष्टिगोचर होते हैं। शास्त्र विहित वातों का महत्व बनाए रखने के लिए ये प्राणी शास्त्र के

विधि-निषेध के हथियारों से अपनी रक्षा किया करते है। इनके शास्त्र विशेष ज्ञान से परिपूर्ण है किन्तु मतान्तर मत भी अनेक है। किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समस्त शास्त्रों मे विधियाँ एक समान नही है। अतः शास्त्रों के आदेश शाश्वत न होने के कारण तथा शास्त्र विहित विविध विधियो मे उपयुक्त सामजस्य के अभाव मे ज्ञानानुभूतियो के आधार पर प्रतिक्षण परिवर्तित रूप मे अग्रसर होते हुए ये प्राणी जीवन व्यतीत करते है।

विशेष—(१) शास्त्रों मे विहित विधि तथा निषेध मत-मतान्तर होने के कारण जटिलता विद्यमान है—इस ओर प्रसाद जी ने संकेत किया है। उदाहरण-स्वरूप मोक्ष-प्राप्ति की विधियों के विषय मे सन्तो मनीषियो के भिन्न-भिन्न मत है।

(२) यहाँ शास्त्र के बिम्ब के माध्यम से विधि-निषेधो का सुन्दर चित्रण किया है।

(३) **अलंकार**—पुनरुक्ति, रूपक और विरोधाभास।

यही त्रिपुर है……ये सब कितने।

शब्दार्थ—त्रिपुर=तीन लोक। ज्योतिर्मय=प्रकाशवान, आलोकपूर्ण। भिन्न=पृथक।

व्याख्या—श्रद्धा ने मनु से कहा कि तुमने त्रिकोण मे स्थित इन तीनो लोकों को देख लिया है। ये तीनो लोकों के बिंदु अपरिमित प्रकाश से परिपूर्ण है तथा इन्हे इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान के नाम से अभिहित किया जाता है। इन तीनों लोकों के समुदाय को ही 'त्रिपुर' नाम से जाना जाता है। इच्छा-लोक, क्रिया-लोक एव ज्ञानलोक—ये तीनो लोक सुख तथा दुःख के स्वयं केन्द्र बने हुए है अर्थात् सुख-दुःख दोनो ही स्थितियो मे ये लोक अपने तक ही सीमित है—इन लोको मे किसी प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध नही है। एक लोक की बाते दूसरे लोक से नितान्त भिन्न है—इन लोको मे परस्पर कोई तालमेल नही है।

विशेष—(१)कवि प्रसाद ने इन तीनो लोको के वर्णन के माध्यम से प्राणी की मनोवृत्तियो का सुन्दर चित्राकन किया है। मनोभावों अर्थात् इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान की पारस्परिक भिन्नता व्यक्त की है। असमानता का मूल कारण यही है—इस विषय मे कवि ने पर्याप्त रूप मे प्रकाश डाला है। 'प्रत्यभिज्ञादर्शनम्' मे परमशिव के चित्तस्वरूप को पुरुष के ऐश्वर्य के रूप मे और अचित् स्वरूप को 'मल' सज्ञा दी है। प्रकृति के सयोग से पुरुष मे जाग्रति तथा उचित चेतना-शक्ति का नाम ही बुद्धि है जिसमे सात्विकता की प्रधानता होती है। बुद्धि से अहकार की उत्पत्ति होती है जिससे अपनी पृथक सत्ता का बोध होता है। इन

वृत्तियों में राजस की प्रधानता होती है। अहंकार से मन की उत्पत्ति होती है, जिसमें क्रियाशीलता प्रवृत्त होती है—इस वृत्ति में तामस की प्रधानता होती है। इस प्रकार परम शिव की ये तीन शक्तियाँ (ज्ञान, क्रिया और इच्छा) क्रमशः पुरुष की बुद्धि, अहंकार तथा मन होती है। इनकी पृथक-पृथक अवस्थिति के कारण ही समरसता नहीं हो पाती।

(२) भाषा अर्थगाम्भीर्यपूर्ण एवं प्रभावशाली है।

ज्ञान दूर कुछ······है जीवन की।

शब्दार्थ—ज्ञान=अच्छे बुरे का विवेक। क्रिया=शारीरिक एवं मानसिक कार्य।

व्याख्या—श्रद्धा कह रही है कि ज्ञान दूर है और ज्ञान के अभाव मे शारीरिक एवं मानसिक कार्यो के करने की प्रणाली कुछ दूसरी ही होती है अर्थात् ज्ञान एवं क्रिया मे पारस्परिक तालमेल नही रह पाता। ऐसी स्थिति में मानव की इच्छाएँ साकार रूप ग्रहण न कर सकने के कारण पूर्ण नही हो पाती। मानव का जीवन उपहास का विषय बना हुआ है—मानव-जीवन की यही एक बड़ी जटिलता है कि ज्ञान और क्रिया दोनों परस्पर मिल नही पाते। मानव इच्छाएँ करता है किन्तु औचित्य-अनौचित्य विषयक ज्ञान के कम या न होने पर क्रिया नही कर पाता—यही कारण है कि इन तीनों के भिन्न होने के फलस्वरूप सामंजस्य की स्थापना नही हो पाती।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने संकेत किया है कि संसार में विषमता का मूल कारण यही है कि इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान में पारस्परिक पार्थक्य है। इन तीनों का समन्वित रूप ही मानव के जीवन में अखण्ड आनन्द प्रदान करने में निस्सन्देह सहायक सिद्ध हो सकता है।

(२) यही छंद कामायनी की प्रेरणा का मूल कारण है।

महा ज्योति······ज्वाला जिनमें।

शब्दार्थ—महाज्योति रेखा=महान प्रकाश की किरण। स्मिति=मुस्कान। सम्बद्ध हुए=एकत्रित हुए, मिल गए। सहसा=अनायास, अचानक। ज्वाला= ज्ञान की ज्योति।

व्याख्या—मनु को तीनो लोको के दर्शन कराने के पश्चात् श्रद्धा मुस्कराई—श्रद्धा की वह मुस्कान महान् आलोक की एक किरण के रूप में उन तीनों लोकों मे फैल गयी। इसके फलस्वरूप वे (इच्छालोक, कर्मलोक एव ज्ञानलोक) तीनों लोक, जो पहले भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर हो रहे थे, परस्पर मिलकर एक हो गए।

उनसे ज्ञान के महान् आलोक की ज्वाला दिखलाई देने लगी ।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ संकेत किया है कि जगत् मे फैली हुई पार्थक्य भावना, भेदभाव आदि सभी विपमताएँ विश्वास से ही दूर हो सकती है । जिस प्रकार तीनो लोक मिलाकर एक समवेत रूप तथा उसमे से बिखरते दिव्यालोक का श्रद्धा ने मनु को दर्शन कराया—उसी प्रकार इच्छा, क्रिया और ज्ञान के समन्वित रूप का अवलम्बन करने से मानव-जीवन प्रशस्त हो सकता है । इसके साथ ही समरसता की स्थापना हो सकती है। मानव-जीवन में अखण्ड आनन्द की प्राप्ति भी सम्भव है । तन्त्रालोक में इस विपय मे निम्न उल्लेख मिलता है :

इच्छाज्ञानक्रियाचेति यत्पृथक्पृथगञ्जयते ।
तदेव शक्तिमत्स्वैः स्वैरिष्यमाणादिकैः स्फुटम् ।
एतत्त्रितयमैक्येन सदा तु प्रस्फुरेत्तदा ।
न केनचिदुपाधेयं स्व स्व विप्रतिषेधतः ॥

(२) यहाँ महाज्योति रेखा के बिम्ब के माध्यम से श्रद्धा की स्मिति का एवं ज्वाला के बिम्ब के माध्यम से ज्ञान प्रकाश का सुन्दर चित्रण किया गया है ।

(३) **अलंकार**—उपमा और रूपकातिशयोक्ति ।

नीचे ऊपर लचकीली······नहीं-नहीं-सी ।

शब्दार्थ—लचकीली=ऊपर नीचे की ओर लहरें-सी लेती हुई । महा-शून्य=अन्तरिक्ष ।

व्याख्या—श्रद्धा की मुस्कान से उत्पन्न हुई ज्ञान की अलौकिक स्वर्णिम ज्योति अन्तरिक्ष मे धधकती हुई-सी दृष्टिगोचर हो रही थी । उस अलौकिक दिव्य ज्योति की लपटे लचकती हुई-सी (कभी नीचे की ओर और कभी ऊपर की ओर गिरती-उठती सी) दिखलाई दे रही थी । कारण, उस समय वायु तीव्र वेग से प्रवाहित हो रही थी । उस पर महाज्योति की ज्वाला से ध्वनि निकल रही थी । ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह 'नही-नही' कह रही हो अर्थात् वह परमज्योति यह कह रही हो कि अब इच्छा, क्रिया और ज्ञान की कोई स्वतंत्र सत्ता शेप नही रह गई है—अब ये तीनो लोक मिलकर एक हो गए है और अब किसी प्रकार का भेद-भाव नही रह गया है ।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियो से कवि का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार तीनो लोको मे किसी एक लोक की सत्ता स्वतन्त्र रूप मे अपूर्ण ही है, इसी प्रकार मानव-जीवन में इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान के समन्वित रूप का ही महत्व है और यह समन्वित रूप ही मानव-जीवन के लिए कल्याणकारी है । किसी

एक के आधार पर जीवन मे आगे बढना हितकर नहीं है। इससे जीवन का एकागी विकास होता है। अतएव सर्वतोमुखी विकास के लिए मानव को तीनों का समवेत रूप ग्रहण करना चाहिए।

(२) 'सुनहली ज्वाल' के माध्यम से ज्ञान के दिव्य प्रकाश का चित्रण हुआ है।

(३) यहाँ प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

शक्ति तरंग प्रलय······बिखर उठा-सा।

शब्दार्थ--शक्ति तरंग=शक्ति की लपटे। प्रलय पावक=विनाशकारी आग; अविद्या का विनाश करने वाली ज्ञान अग्नि। त्रिकोण=तीन विन्दु; तीन लोक। निखर उठा=चमक उठा। शृंग=सींगी, वाद्य-विशेष। निनाद=ध्वनि।

व्याख्या—श्रद्धा मुस्कराई तो उसकी मुस्कान से एक प्रकार की अलौकिक ज्वाला दृष्टिगोचर हुई। इच्छा, क्रिया एवं ज्ञानलोक के अज्ञान का नाश करने वाली ज्ञानाग्नि की भयावह लपटे त्रिपुर मे चतुर्दिक व्याप्त हो गयीं। उस ज्ञानाग्नि की लपटो के फैलने के फलस्वरूप त्रिपुर निखरा-सा दिखाई देने लगा। उस समय सींगी और डमरू की मिश्रित ध्वनि सम्पूर्ण विश्व मे गूँजने लगी।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने यह संकेत किया है कि विवेक होने पर अविवेक (भेद-भाव) समाप्त हो जाता है। इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान—इन तीनों के बीच मधुर सम्बन्ध की स्थापना हो जाती है। इस प्रकार के सम्बन्ध स्थापना से सर्वत्र आनन्द का स्वर गूंजने लगता है।

(२) 'शृंग तथा डमरू' के निनाद द्वारा कवि ने ताण्डव नृत्य की ओर संकेत किया है।

(३) यहाँ 'शक्ति तरंग प्रलय पावक' पद के द्वारा अविद्या या अज्ञान की विनाशकारिणी ज्ञानाग्नि का चित्रण हुआ है।

(४) प्रथम दो पंक्तियों में च्युतसंस्कृति दोष है।

चितिमय चिता······विषम कृत्य था।

शब्दार्थ--चितिमय=चेतनापूर्ण। अविरल=सतत्, निरन्तर। महाकाल=शिव। विपम नृत्य=ताण्डव नृत्य। विश्वरंध्र=अन्तरिक्ष। विषम कृत्य=अज्ञान का विनाशकारी भयानक कार्य।

व्याख्या—उस समय चेतना से परिपूर्ण भयानक ज्वाला धधक रही थी। नटराज शिव का ताण्डव नृत्य हो रहा था। सम्पूर्ण अन्तरिक्ष उस ज्ञानाग्नि की ज्वाला से व्याप्त हो गया था। वह ज्वाला अज्ञान नाश करने का भयंकर कार्य कर रही थी। दूसरे शब्दों में, तीनों लोकों के प्राणियो का अज्ञान उस

अग्नि मे जलकर भस्मीभूत हो गया था ।

विशेष—(१) शिव का ताण्डव नृत्य तीनो लोकों की पारस्परिक भिन्नता, पार्थक्य—भेद-भाव आदि के विनाश का द्योतक है। समस्त अज्ञान का निवारण होने पर ही 'शिवोऽहम्' का उदय होता है।

(२) यहाँ 'रंध्र' के बिम्ब के माध्यम से संपूर्ण विश्व का चित्रांकन हुआ है।

(३) **अलंकार**—रूपक एवं रूपकातिशयोक्ति ।

स्वप्न, स्वाप, जागरण......बस तन्मय थे ।

शब्दार्थ—स्वप्न=जगत् एवं जीवन विषयक कोरी कल्पनाएँ। स्वाप=सुषुप्ति की अवस्था। लय=विलीन। अनाहत नाद=अनहद नाद। तन्मय=लीन।

व्याख्या—ज्ञानाग्नि की उस ज्वाला मे मनु की स्वप्नावस्था, सुषुप्तावस्था एवं जाग्रति की अवस्था का अन्त हो चुका था और श्रद्धायुक्त मनु तुरीयावस्था अर्थात् समाधि की अवस्था मे पहुच चुके थे। इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया—तीनों मिलकर एकरूप हो गए थे, और अलौकिक अनाहत नाद मे श्रद्धा सहित मनु असाधारण आनन्द (अखण्ड आनन्द) की अनुभूति मे लीन थे।

विशेष—(१) यहाँ कविवर प्रसाद ने स्वप्न, स्वाप तथा जागरण—इन तीन अवस्थाओं के विषय मे बतलाया है। ये तीनो अवस्थाये क्रमशः इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान के प्रतीक स्वरूप है। इन तीनो अवस्थाओं की समाप्ति होने पर इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान भी लय हो जाते है और योगी तुरीयावस्था मे पहुंच जाता है जिसे निरंजनावस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था में योगी अखण्ड आनन्द की अनुभूति करता है अनाहत नाद मे वह लीन हो जाता है। कबीर ने इस अवस्था को 'सहज समाधि' के नाम से अभिहित किया है

सहजै सहजै सब गये, सुत वित कामिणी काम।
एकमेक है मिलि रह्या, दास कबीरा राम ।।

अनाहत नाद को 'हठयोग दीपिका' के अनुसार 'नाद लय योग' की संज्ञा दी गई है। महात्मा कबीर के अनुसार अनाहत नाद को सुनते ही साधक ब्रह्म में लीन हो जाता है--

बिन ही ताला ताल बजावै बिन मदल पट ताला।
बिन ही सबद अनाहद बाजै तहाँ निरतत गोपाला ।।

(२) **अलंकार**—यथासख्य ।

१५. आनन्द सर्ग

कथासार—इडा और मानव ने सारस्वत नगर की उचित रूप में शासन-व्यवस्था की। नियमों को ऐसा सुव्यवस्थित एवं लोक हितकर वनाया, जिससे वहाँ की जनता धन-धान्य, वैभव एवं सुख-समृद्धि से पुनः परिपूर्ण हो उठी। एक दिन वालकों, युवक-युवतियों का दल इड़ा तथा मानव के साथ श्रद्धा तथा मनु के दर्शन के लिए कैलाश पर्वत की ओर चल दिया। सारस्वत नगर से यात्रियों का यह दल आगे बढ़ता हुआ मार्ग में पर्वतीय तथा नदी के तटवर्ती प्रान्तों से अग्रसर हो रहा था। उस दल में धर्म के प्रतिनिधि के रूप में एक वृषभ भी था, जो मंथर गति से आगे बढ रहा था। उसके साथ बंधा हुआ घंटा उसकी मंद चाल के अनुरूप नाद कर रहा था। उस वृषभ के ऊपर सोम-लताएं लदी हुई थीं। कुमार ने उस वृषभ की रस्सी अपने बाएँ हाथ में पकड़ी हुई थी और दाहिने हाथ में त्रिशूल धारण कर रखा था। इस प्रकार वृषभ के एक ओर तो कुमार चल रहा था तो दूसरी ओर काषाय वस्त्र धारण कर शान्त भाव से इड़ा चल रही थी। पीछे-पीछे छोटे-छोटे वालक खेलते-कूदते एवं किलकारियाँ मारते हुए चल रहे थे। उनके साथ-साथ युवक मनोविनोद करते हुए तथा मंगलगीत सुकोमल स्वर में गाती हुईं युवतियाँ-महिलाएँ—सभी चल रहे थे। सभी लोग अपना सामान चमरी मृगों पर लादे हुए थे। कुछ चमरी मृगों पर बालक भी आसीन थे। छोटे-छोटे वच्चे अपनी माताओं की अँगुली पकड़ कर चल रहे थे। सभी छोटे-छोटे वच्चे अपनी यात्रा के विषय में बहुत ही जिज्ञासु थे। वाल-स्वभाव के अनुसार एक वच्चा अपनी माँ से पूछने लगा कि माँ! तुम तो कह रही थी कि अब थोडी ही दूर चलना है—इतनी दूर आ गए! तुम हो कि आगे की ओर बरावर बढ़ती ही जा रही हो—अभी वह तीर्थ-स्थान न जाने कितनी दूर है। वह वालक इडा के पास पहुँचकर उससे तीर्थ-स्थान के विषय में जानने के लिए हठ करने लगा। इडा ने उस बालक को वतलाया कि वह स्थान परम पवित्र है—वह तपोभूमि है। इड़ा ने आगे वतलाया कि एक दिन एक साधु-मनीषी अपनी पत्नी के साथ संसार की व्यथा-वेदनाओं से विकल होकर परम शान्ति की खोज मे चला आया था। उसके

हृदय मे व्याप्त संताप के फलस्वरूप समूचा वन-प्रान्त जल उठा था। उस मनस्वी की पत्नी के प्रयत्न से सारा वन हरा-भरा हो गया। सर्वत्र हरियाली छा गई। सर्वत्र प्रसन्नता विखर उठी। तभी से वे दोनों सांसारिक जनो की सेवा करके उन्हे सुख-शान्ति देते रहते हैं। वही कामनाओ की पूर्ति करने वाला एक सुन्दर मानसरोवर है। उस मानसरोवर के जल पान से प्राणी सुख-शान्ति प्राप्त करता है। वालक द्वारा वृपभ के विपय में कुतूहल जाग्रत होने पर इड़ा ने बतलाया कि हम अपने साथ इस वृषभ को इसलिए ले जा रहे है कि वहाँ उसे हम पूर्णतया स्वच्छन्द कर देंगे। पद-यात्रा से हमारे जीवन के अभावों की पूर्ति हो जायेगी। अव वे सभी एक समतल घाटी पर पहुँच गए। उतार अधिक होने के कारण आगे बढने में सभी ने सावधानी से काम लिया। उस समतल घाटी में सर्वत्र हरीतिमा छाई हुई थी। पेड़-पौधे सभी सुन्दर दिखलाई दे रहे थे, सामने उन्हे हिमाच्छादित हिमालय पर्वत दिखलाई दे रहा था। आगे बढ़कर उन्होने सुरम्य वन तथा सरोवर देखा। उस समय संध्या हो रही थी। उस संध्याकाल की छटा मे कैलाश पर्वत ऐसा दिखलाई दे रहा था मानो वह किसी योगी के रूप में समाधि धारण किए हुए आसीन हो। पक्षियों का कल-निनाद वहाँ पर उस समय व्याप्त हो रहा था। उसी मानसरोवर के समीप मनु ध्यान में लीन थे। उन्ही के निकट उनकी पत्नी श्रद्धा अपनी अंजलि मे पुष्प लेकर खडी हुई थी। श्रद्धा ने मनु के चरणों में अपनी पुष्पांजलि समर्पित कर दी, जिससे आकाश मे भौंरो की सुमधुर गुंजार कर्णगोचर हो रही थी। अभी तक मनु की ध्यानावस्था भंग नही हुई थी। यात्रियों के दल ने श्रद्धा तथा मनु—दोनो को पहचान लिया और उनके चरणों में नतशिर हो गए। इतनी ही देर मे इडा तथा कुमार भी वृपभ को साथ में लिए हुए वहाँ पहुँच गए। कुमार ने अपनी माता श्रद्धा को देखा और उसकी गोद मे बैठ गया। इड़ा श्रद्धा के पुनीत चरणों मे नतमस्तक हो गई। इड़ा ने कहा कि मेरा जीवन आज धन्य हो गया। तुम्हारी ममता मुझे यहाँ तक खींच लाई। मैं अपने जीवन में आज तक भूल मे ही रही और दूसरो को भी भुलावे में रखा था। सारस्वत नगर की समस्त प्रजा स्वजनों के रूप मे है। इसी आत्मीयता के कारण अव एक परिवार के रूप में सभी सुख-शान्ति से रह रहे है। अव उनमें किसी प्रकार का कलहच्छेद नही रह गया है। आज हम सभी एक दल के रूप में यात्रा करने के हेतु यहाँ आए है ताकि हमारे समस्त पाप-कलुष पूर्ण रूप से दूर हो सके।

मनु ने ध्यान-स्मितित नेत्रों को खोला। मनु ने मन्द स्मितिपूर्वक कैलाश पर्वत की ओर संकेत करते हुए कहा कि यहाँ अपने-पराये का कोई भेद नहीं है। सब एक हैं—तुम सब मेरे अवयवों के रूप में हो। यहाँ न कोई संतप्त है और न कोई पापाचारी—सभी समान है। यह समूचा विश्व उसी चिति-शक्ति क. विराट् शरीर है, यह सारा संसार सुख-दु:ख से युक्त होते हुए भी आनन्दमः है—मंगलमय है। उन्होंने आगे कहा कि—दूसरों की सेवा करना अपनी हं. सेवा करना है। सभी लोगों को सबके दु:ख-सुख से युक्त होते हुए भी सबके दु:ख-सुख में हाथ बंटाना चाहिए—यही तो प्राणियों का वास्तविक स्वरूप है। मनु की बातें सुनकर श्रद्धा के मुखमण्डल पर स्मिति की लहर दौड़ गई, जिससे वहाँ दिव्य प्रकाश फैल गया। मधुर ध्वनियाँ गूंजने लगीं। सुगंध समीर बहने लगा। सम्पूर्ण वातावरण सुखमय एवं सुगंधिमय हो उठा। पुष्पों का पराग बिखरने लगा। राकापति की शुभ्र किरणें नृत्य करती हुई दिखलाई देने लगीं। हिमालय पर्वत चन्द्रमा को मुकुट रूप मे धारण किए सुशोभित हो रहा था। सभी लोग वहाँ अभिन्नता की भावना से युक्त थे। जड और चेतन में कोई भी भेदभाव नहीं रह गया था। सामरस्य की भावना से सभी पुलकित हो उठे। सभी अखण्ड आनन्द की अनुभूति करने लगे।

आनन्द सर्ग में कवि प्रसाद ने जीवन के चरम लक्ष्य 'आनन्द' को सुनिरूपित किया है, तदनुकूल इस सर्ग का नामकरण भी किया है। उन्होंने यह भी बतलाया है कि सेवा, दया, प्रेम, त्याग एवं औदार्य आदि सुन्दर वृत्तियों के अवलम्बन से ही मानव जीवन सुखद होकर निखर सकता है। अमंद प्रतीति होने पर ही जीवन में सामरस्यपूर्ण वातावरण की सुमधुर सृष्टि हो सकती है। तभी बड़े-छोटे, जड़ तथा चेतन का भेदभाव मिट जाता है—तभी अखण्ड आनन्द की प्राप्ति की जा सकती है। सन्ध्या के वर्णन मे कवि ने छायावादी शैली का प्रयोग किया है, जो अपने मे नवीन है। इसके अतिरिक्त लाक्षणिक, प्रतीकात्मक एवं व्यंजनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। कवि द्वारा प्रस्तुत बिम्ब-विधान मनोहर एवं प्रभावोत्पादक है। उनके विचारों पर 'प्रत्यभिज्ञादर्शनम्' का प्रभाव स्पष्टत: दिखलाई देता है। यहाँ दार्शनिक विचारों की शुष्कता को अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा सरस एवं प्रभावोत्पादक बनाने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

चलता था धीरे ... ... ले निज सम्वल।

शब्दार्थ—रम्य=रमणीय। पुलिन=नदी का किनारा। गिरि-पथ=पर्वतीय मार्ग। सम्वल=पाथेय; यात्रा के लिए भोजन सामग्री आदि।

भावार्थ—इड़ा, कुमार तथा सारस्वत प्रदेश के यात्रियों के दल ने श्रद्धा एवं मनु की खोज में कैलाश पर्वत की ओर प्रस्थान किया। इस दल के यात्रियों के पास यात्रा के लिए अपना पाथेय था। यह दल सरस्वती नदी के तटवर्ती प्रान्त से होता हुआ पर्वतीय मार्ग पर अग्रसर हो रहा था।

विशेष—(१) प्रस्तुत सर्ग मे कविवर प्रसाद ने इड़ा, मानव, श्रद्धा, मनु तथा सभी सारस्वत प्रदेश के निवासी—सभी को उस सुन्दर तपोवन मे मिला दिया है। कामायनी की कथा का प्रारम्भ हिमालय पर्वत से ही हुआ है तथा समापन भी हिमालय पर्वत की सुन्दर तलहटी मे स्थित तपोवन में ही हुआ है। इससे संकेतित यह है कि मानव उन्नति के शिखर पर पहुँचकर संसार में आता है—यहाँ अनेक प्रकार की सुख-दुःख की अनुभूतियाँ करता है, यहाँ शुभ कर्मो के करने के फलस्वरूप समुन्नत अवस्था मे पहुँचकर ज्ञान प्राप्त करता है। उसे अभेद प्रतीति हो जाती है, वह अखण्ड आनन्द मे निमग्न हो जाता है।

(२) प्रस्तुत सर्ग में कवि प्रसाद का अपना छंदोविधान दर्शनीय है। उन्होंने अपने काव्य 'आँसू' में भी इसी स्वनिर्मित छंदों का प्रयोग किया है। यह छंद उन्हें विशेष प्रिय है।

(३) इड़ा सर्ग में मानवता के मंगलमय स्वरूप का स्थापन किया गया है जो समस्त समाज के लिए अभीष्ट है। समरसता की भावना का प्रसार समाज की सर्वांगीण उन्नति में विशेषतः सहायक होता है।

था सोम लता ... ... मन्थर गतिविधि।

शब्दार्थ—आवृत्त=ढँका हुआ, आच्छादित। वृष=साँड। धवल=श्वेत। मन्थर=धीमी। गतिविधि=चलने का ढंग। प्रतिनिधि=प्रतीक।

भावार्थ—सारस्वत प्रदेश के यात्रियो के दल में एक श्वेत वर्ण वाला वृष था, जिस पर सोमलताएँ लदी हुई थी। वह वृष धर्म के प्रतीक के रूप में था। उस वृष के कंठ में एक घण्टा बँधा हुआ था। जब वह वृष चलता था तो घण्टिकानाद उसके चलने की गति के साथ एक विशेष ताल मिला रहा था। वह वृष मंद-मंद गति से दल के साथ चल रहा था।

विशेष—शैवागम में 'वृष' को शिव के वाहन को 'नन्दी-नन्दिकेश्वर' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इसे भवसागर से पार कराने वाला बताया गया है।

वृष रज्जु ... ...तेज अपरिमित।

शब्दार्थ—रज्जु = रस्सी। वाम = बांये। कर = हाथ। दक्षिण = दायाँ, दाहिना। अपरिमित = असीमित। मानव = कुमार, मनु तथा श्रद्धा का पुत्र।

भावार्थ—मानव उस वृषभ की रस्सी को अपने बाएं हाथ में पकड़े हुए उसके साथ-साथ बढ़ रहा था। मानव के दाएं हाथ में त्रिशूल सुशोभित हो रहा था। मानव के मुख-मण्डल पर निस्सीम तेज दिखलाई दे रहा था।

विशेष—यहाँ पर कुमार को परम तेजस्वी युवक के रूप में दिखलाया गया है।

केहरि-किशोर से ... ... भाव नये थे।

शब्दार्थ—केहरि किशोर = सिंह का बच्चा। अभिनव अवयव = यौवनावस्था के कारण नये सुगठित अंग (अवयव)। प्रस्फुटित = विकसित। गंभीर = गहन। नये भाव = यौवनजन्य नई-नई उमंगें।

भावार्थ—यौवनावस्था के कारण मानव के अंग-प्रत्यंग सुविकसित एवं सुगठित दिखलाई दे रहे थे, जिस प्रकार सिंह का एक बच्चा अपने कैशोर्य में सुगठित एवं वलिष्ठ अंगों से सुशोभित दिखलाई देता है। मानव में यौवनजन्य गम्भीरता आ गई थी तथा उसके हृदय में नई-नई उमंगें भरी हुई थीं।

विशेष – (१) कवि ने मानव का एक सुन्दर, तेजस्वी एव बलिष्ठ युवक के रूप में चित्रण किया है। इसके साथ ही यौवनावस्था के अनुरूप उसके सहज गाम्भीर्य एवं हृदयगत नये भावों की ओर संकेत किया गया है। उसके शरीर के समस्त अवयवों की सुडौलता स्पृहणीय थी।

(२) कवि कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक मे भरत के शारीरिक अवयवो के सानुपातिक गठन तथा दीप्ति के विपय मे वर्णन किया है।

(३) यहाँ केहरि-किशोर के विम्व के माध्यम से मानव के स्वरूप का सुंदर चित्रांकन किया गया हैं।

(४) अलंकार—मानवीकरण।

सर हो रही है। अगले दो पदों मे भी बाल-स्वभाव का वर्णन किया गया है।

(२) भाषा सरल एवं प्रसाद गुण पूर्ण है।

कह रहा एक था ... ... दौड़ रही है।

शब्दार्थ—जिसके हित=जिसके लिए।

भावार्थ—छोटे-छोटे बच्चों मे से एक बच्चा अपनी माता से कह रहा था कि तू तो बहुत देर से यही कहती हुई चली आ रही है कि लो, अब तो हम आ ही पहुँचे है—बस, यही वह भूमि है—सामने, अब तो बहुत ही पास है इत्यादि-इत्यादि। किन्तु तू तो अभी तक रुकने का नाम ही नही ले रही है। तू तो अभी भी बराबर आगे बढ़ती ही जा रही है—तेरी इच्छा अभी कहीं ठहरने की नही है। अब तो तू मुझे यह बतला ही दे कि वह तीर्थस्थान कहाँ है ? कितनी दूर है वह स्थान जिस स्थान पर पहुँचने के लिए तू दौड़ती ही चली जा रही है ?

विशेष—यहाँ कवि ने बाल-स्वरूप दृढ़ता, हठता एवं उतवालेपन का मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है।

वह अगला समतल ... ... उज्ज्वल पावनतम।

शब्दार्थ—घन=मेघ, बादल। कानन=वन। हिमकन=ओस की बूंदे। ढालवें=ढालू स्थान। सहज=सुगमतापूर्वक। सम्मुख=सामने। पावनतम=पवित्रतम, सबसे अधिक पवित्र।

भावार्थ—उस शिशु क मुख से ऐसी बातें सुनकर उसकी माता ने उत्तर दिया कि वह सामने समतल स्थान दिखलाई दे रहा है, जहाँ देवदारु के वृक्षों का वन है—सघनता है, जिन पर छाये हुए बादल इस प्रकार दृष्टिगोचर हो रहे है, मानों वे बादल उन वृक्षों के पत्तो पर पड़ी हुई हिमकणिकाओं (ओस की बूदें) से अपने को भर रहे हों अर्थात् तृप्त कर रहे हों। आँसू की उन बूंदों को वे बादल इस तरह अपने अन्दर भर रहे थे जिस प्रकार कोई प्याली से बूंद-बूंद करके जल भर लेता है। बस, उसी ढालू स्थान पर सुगमतापूर्वक जब हम नीचे उतर जावेगे तभी हमे सामने ही परम पवित्र तीर्थस्थान स्पष्ट रूप से दिखलाई देने लगेगा।

विशेष—(१) यहाँ प्राकृतिक चित्रण मनोरम एवं दर्शनीय है। दूर से देखने पर ऐसा ही मालूम होता है कि बादल उन देवदारु के वृक्षों पर झुके हुए हो। हिमालय पर्वत पर देवदारु के पेड़ होते हैं और आकार में वे लम्बे होते

हैं। बादलों के झुकने एवं पत्तों पर पड़ी हुई ओस की बूँदों को गृहण करने का सुन्दर एवं हृदयग्राही चित्रण है। यह चित्रण प्रसादजी की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचायक है।

(२) अलङ्कार— (i) हेतूत्प्रेक्षा—'घन अपनी…हिमकन'।
(ii) रूपकातिशयोक्ति—'प्याली'।

(३) 'घन' के बिम्ब द्वारा देवदारु के वृक्ष की विशालता का मार्मिक चित्रण है।

वह इड़ा समीप … … … कथा सुनने को।

शब्दार्थ—वह=बालक। मचल गया=हठ करने लगा। कथा=कहानी।

भावार्थ—चमरी गाय पर बैठा हुआ वह बालक उतर कर इडा के पास पहुँच गया और उससे वहीं ठहरने का हठ करने लगा ताकि वह तीर्थ स्थान के विषय में अधिक विस्तारपूर्वक बातें सुन सके।

विशेष—(१) यहाँ हठी बालक के स्वभाव के विषय मे बतलाया गया है। बालक की हठ भी कम महत्त्व नही रखती! कुछ बालक तो ऐसे हठी स्वभाव के हो जाते है कि उन्हें एक बार किसी वस्तु की या काम की हठ पड़ गई तो वह उसकी पूर्ति के लिए मचल उठते है। जब तक उनकी इच्छा पूरी न हो, वे किसी को चैन से साँस नही लेने देंगे। हठ तीन प्रकार की होती है—(१) राज-हठ, (२) बाल-हठ और (३) त्रिया-हठ। यहाँ बाल स्वभाव के विषय में बताकर बाल मनोविज्ञान का सुन्दर परिचय उपलब्ध होता है।

(२) भाषा सरल और प्रसादगुणयुक्त है।

वह अपलक लोचन … … … शान्त तपोवन।

शब्दार्थ—अपलक=पलकें बिना झपकाये हुए। लोचन=नेत्र। पादाग्र=पैरों का अग्र भाग अर्थात् अँगूठे और अँगुलियाँ आदि। विलोकन=देखना, निहारना। पथ-प्रदर्शिका=मार्ग को दिखलाने वाली। डग भरना=कदम बढाना। जगती=संसार। पावन=पवित्र। साधना-प्रदेश=साधना अर्थात् तपोजन्य सिद्धि प्राप्त करने का स्थल। तपोवन=तपस्या करने का स्थान।

भावार्थ—इड़ा निर्निमेष नेत्रों से अपने चरणों के अग्रभाग की ओर देखती हुई तथा यात्रियों के दल का मार्ग-दर्शन करती हुई धीरे-धीरे अपने कदम बढा रही थी। उस बालक से इड़ा ने कहा कि हम सब जहाँ जा रहे है, वह समूचे

वैवाहिक पद्धति मे पति अपने आधे अंग का स्वामित्व अपनी पत्नी को प्रदान करता है।

अर्द्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः ॥

—महाभारत, आदिपर्व, ७४।४१

(२) यहाँ वर्षा के बिम्ब के माध्यम से दया से उत्पन्न अश्रुओं का मर्म-स्पर्शी चित्राकन किया गया है।

(३) 'करुणा की वर्षा' से प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है।

(४) अलङ्कार—रूपकातिशयोक्ति।

वरदान बने ... ... सुख शीतल।

शब्दार्थ—वरदान=कल्याणप्रद। मंगल=कल्याण। ताप=त्रय ताप; दैहिक, दैविक और भौतिक ताप; गर्मी। हरित=हरा-भरा, प्रसन्न। सुख-शीतल=सुख-शान्तिदायक।

भावार्थ— श्रद्धा की आँखो से बहते हुए आँसू संसार का कल्याण करते हुए उस मनस्वी के लिए भी कल्याणकारी हो गए। उन आँसुओ के बह निकलने का सुफल यह हुआ कि उस मनस्वी की ताप-त्रय से निवृत्ति हो गयी अर्थात् उसकी आँखों से हुई दया की वृष्टि से तीनों प्रकार के तापों का शमन हो गया और सारा तपोवन-वन सुख-शान्तिदायक हो उठा। जिस प्रकार वर्षाकाल में बूंदों से गर्मी शान्त हो जाती है, पेड़-पौधे सभी हरे-भरे हो जाते हैं और समूचे वाता-वरण मे शीतलता परिव्याप्त हो जाती है।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने आसुओ की समानता वर्षा की शीतल बूंदों से की है। वास्तव मे वर्षाकाल में जल-विन्दुओं से सर्वत्र गर्मी से राहत मिलती है। वन की दशा एकदम हरी-भरी हो जाती है। इसी प्रकार श्रद्धा की दया-वृष्टि का योगदान भी कम महत्त्वपूर्ण नही है - विश्व-मंगल के साथ ही उस मनस्वी के लिए भी विशेष मंगलकारी सिद्ध हुए।

(२) अलंकार—(i) श्लेष—'ताप' और 'हरित'।
(ii) विरोधाभास—'वरदान·· जग मंगल।'
(iii) रूपकातिशयोक्ति—'हरित'।

गिरि निर्झर ... ... में लाली।

शब्दार्थ—गिरि-निर्झर=पहाड़ी झरने। मुस्काये=मुस्कुराये, हरे-भरे हो गये। पल्लव=पत्त, किसलय।

भावार्थ—इड़ा कह रही है कि मनु के सन्ताप तथा वेदना की अतिशयता तथा तीव्रता से झुलसा हुआ वह वन अब श्रद्धा की करुणामयी वृष्टि से परिवर्तित हो गया। अब वहाँ पहाड़ी झरने उछलते-कूदते (जलपूर्ण तथा उद्दाम वेग के फलस्वरूप) तथा सुमधुर ध्वनि करते हुए प्रवाहित हो निकले। सर्वत्र हरियाली छा गई। सूखे-रूखे पेड़-पौधे अब पुनः हरे-भरे होकर लहलहा उठे और सुकोमल पत्तों (किसलयों) में लालिमा प्रकट होने लगी अर्थात् सर्वत्र प्रसन्नता और सुख-शान्ति ही दिखलाई दे रही है।

विशेष—(१) यहाँ प्रकृति-चित्रण के माध्यम से मानव की स्थिति का चित्रण किया गया है—छायावादी-शैली का प्रयोग स्पष्ट है।

(२) 'तरु मुसक्याये' में लाक्षणिक प्रयोग ध्यातव्य है।

(३) अलंकार—मानवीकरण।

वे युगल वहीं ... ... ज्वाला हरते।

शब्दार्थ—युगल=जोड़ा, पत्नी-पति। संसृति=संसार, सृष्टि। दुःख-ज्वाला=दुःख रूपी अग्नि।

भावार्थ—इड़ा कह रही है कि अब दम्पति उस तपोभूमि में निवास करते हुए समूचे विश्व की सेवा तथा कल्याणकारी कार्य करते हैं। अब वे समस्त प्राणियों की सेवा द्वारा उन्हें सुख-शान्ति प्रदान करते हुए उनके मनःसंताप का इस प्रकार निवारण करते है, जिस प्रकार अग्नि से झुलसे व्यक्ति की पीड़ा को सुख-सन्तोष द्वारा कोई शान्त कर देता है।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने 'सेवा' के महत्त्व का प्रतिपादन किया है—यह सेवा-भावना हमारी भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। दूसरों की सेवा करने की भावना में सेवा करने वाले के हृदय में अमित तोष उत्पन्न होता है। इसके साथ समस्त प्राणियो में सद्भावना एवं अभिन्नता का प्रसार होता है। दूसरों के कष्टों का निवारण करना एक पुनीत कार्य है—सर्वत्र समरसता की भावना व्याप्त हो जाती है।

(२) यहाँ 'ज्वाला' के बिम्ब के माध्यम से दुःख का मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किया गया है।

(३) अलंकार—रूपक।

है वहाँ महाह्रद ... ... जो है जाता।

शब्दार्थ—महाह्रद=महान सरोवर। निर्मल=स्वच्छ। मन की प्यास=मन की अशान्ति। मानस=मानसरोवर।

भावार्थ—इड़ा ने उस बालक को बतलाया कि उस तपोवन (तीर्थभूमि) में एक विशाल सरोवर है, जो स्वच्छ जल से परिपूर्ण है। सरोवर के शुद्ध,

स्वच्छ एवं शीतल जल के पीने से समस्त प्राणियों के मनःसंताप (अशान्ति) उस प्रकार निवृत्त हो जाती है, जिस प्रकार किसी व्यक्ति की प्यास शीतल जल से निवृत्त हो जाती है। उस सरोवर को 'मानसरोवर' कहते है। उस सरोवर पर जो प्राणी भी पहुँच जाता है, उसे परम सुख तथा शान्ति प्राप्त हो जाती है।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने कैलाश-गिरि के समीप स्थित मानसरोवर का वणन किया है। इसका नाम 'मानस' भी है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'मानस' का उल्लेख 'रामचरितमानस' में अनेक स्थलों पर किया है—'मानस' का वर्णन गोस्वामी तुलसीदास के शब्दो मे द्रष्टव्य है :

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा॥
मन करि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहि सर परई॥
त्रिविध दोष दुःख दारिद दावन। कलिकुचालि कुलि कलुष नसावन॥

वालकाण्ड, ३६।७-९

(२) मानसरोवर को शतपथ ब्राह्मण में 'मनोरव सर्पण' कहा गया है :

(३) अलंकार—(i) श्लेष—'मानस'।
(ii) परिकर—'मानस'।
(iii) रूपक—'दुःखज्वाला'।

तो यह वृष ... ... थका रही है।

शब्दार्थ—वृप=वृषभ। यों ही=व्यर्थ में, वैसे ही।

भावार्थ—तीर्थस्थान विषयक कथा को इड़ा से सुनकर वह हठी वालक उससे पूछने लगा कि तुम इस वृप को अपने साथ क्यों ले चल रही हो। तुम इस पर वैठ चलो तो थकोगी नही। तुम पैदल यात्रा करके अपने को व्यर्थ में ही थका रही हो।

विशेष—(१) यहाँ प्रसादजी ने वाल-स्वभाव का सुन्दर चित्रांकन किया है। वह वालक पद-यात्रा के कारण स्वय थका हुआ है तो वह दूसरों को भी अपने समान थका हुआ समझ रहा है। इसके अतिरिक्त जव अन्य वच्चों को वह सुरा गायों पर वैठे हुए देख रहा है तो वह चाहता है कि इड़ा भी वृष पर वैठ ले। वही क्यों पद यात्रा करके स्वयं को थका रही है।

(२) भाषा की सरलता द्रष्टव्य है।

सारस्वत नगर निवासी ... ... सुख पाकर।

शब्दार्थ—व्यर्थ=बेकार। रिक्त=खाली। जीवनघट=जीवनरूपी घड़ा। पीयूष सलिल=अमृतरूपी जल। उत्सर्ग=त्याग, दान। मुक्त=वन्धन हीन। स्वच्छन्द=पूर्ण स्वतन्त्र।

भावार्थ—इड़ा ने उस बालक से कहा कि सारस्वत नगर के निवासी हम सभी मिलकर उस पवित्र स्थान की यात्रा करने के लिए चल रहे है और व्यर्थ रूप में पडे एक खाली घडे के भरने के समान ही हम सब अनेक प्रकार के दुःखों, कष्टों से युक्त इस सारहीन तुच्छ जीवन को वहाँ से प्राप्त होने वाले अमृत जल से भरकर सफल बनाने के लिए चल रहे है। उस तपोवन में पहुँचकर हम धर्म के प्रतीक इस वृषभ को वहाँ छोड़ देंगे ताकि यह पूर्ण स्वच्छंद होकर कहीं भी निर्भय होकर वहाँ के मुक्त वातावरण तथा स्थान में घूम सके। इस प्रकार स्वच्छंदता प्राप्त करके यह यत्र-तत्र विचरण कर सके एवं अमित सुख की अनुभूति कर सके।

विशेष—(१) वृष का उत्सर्ग (दान) करना तथा उसे पूर्णतया स्वच्छंद करना शास्त्र सम्मत विषय है। महाभारत में भी इस संदर्भ में निम्न श्लोक प्राप्त होता है—

> **यजेत वाश्वमेधेन नीलं या वृषभ उत्सृजेत् ।**
> **उत्तारयति संतत्या दशपूर्वान् दशात्ररान ॥**
>
> —वनपर्व, ८७/१०

इसके अतिरिक्त यह भी संकेतित है कि इड़ा के हृदय में अब पहले जैसी धर्मगत संकीर्णता नही रह गई है। धर्मगत संकीर्णता का स्थान अब विश्व-प्रेम एवं व्यापक सद्भावों ने ग्रहण कर लिया है। श्रद्धा के उपदेशों से अब वह पूर्ण प्रभावित होकर तद्नुरूप अपने जीवन को ढालने में सक्षम हो सकी है। अतएव वह धर्म के प्रतीक इस वृष को भी उत्सर्ग करने की आकांक्षिणी है। भाव यह है कि धर्म को संकीर्णता की परिधि या सीमा में रखना एक तुच्छ ज्ञान का परिचायक है। धर्म को एक बन्धनमुक्त वातावरण से बाहर निकालकर स्वच्छंद तथा औदार्य के एक व्यापक वातावरण में सुविकसित होने देना चाहिए, तभी मानव-मात्र का कल्याण संभव है।

(२) यहाँ 'रिक्तघट' के बिम्ब के माध्यम से अभाव एवं नाना प्रकार के दुःखों से ग्रस्त जीवन की यथार्थ झाँकी प्रस्तुत की गई है। इसके अतिरिक्त 'पीयूप सलिल' के बिम्ब के माध्यम से अमृतजल 'आनन्दामृत' का शोभन चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

(३) अलंकार—(i) रूपकातिशयोक्ति—'पीयूष'।
(ii) रूपक—'जीवन घट', 'पीयूष-सलिल'।

(४) विश्वबंधुत्व की ओर संकेत किया गया है।

सब सम्हल ... ... हरियाली से छाई।

शब्दार्थ—सम्हल गये=सावधान हो गए। समतल=समभूमि, चौरस।

यात्री दल ने ... ... जगत् उजाला।

शब्दार्थ—मानस = मानसरोवर। दृश्य = नजारा। निराला = अनुपम। खग-मृग = पक्षी तथा पशु। सुखदायक = सुख देने वाला। जगत् उजाला = आलोक-युक्त संसार।

भावार्थ—सारस्वत नगर के निवासियों ने उस घाटी में ठहरकर मानसरोवर का अनुपम दृश्य देखा। वह मानसरोवर पक्षियों-पशुओं—समस्त जीवों के लिए परम सुख प्रदान करने वाला छोटे-से प्रकाश युक्त संसार के रूप में था।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ 'मानस' के दृश्य को 'निराला' कहा है, क्योंकि शीतल तथा विमल जल से परिपूर्ण सरोवर पशु-पक्षी-जगत् के लिए परम सुखावह था।

(२) 'छोटा-सा जगत् उजाला'—पद से आशय यह है कि पशु-पक्षी जगत् के लिए वह मानसरोवर एक छोटे प्रकाश से युक्त संसार के रूप में था अर्थात् पशु-पक्षियों के लिए 'मानसरोवर' ही जीवनदायक था। इसके अतिरिक्त उस 'मानस' के जल में अत्यधिक निर्मलता तथा पवित्रता विद्यमान थी—वह स्वतः प्रकाशपूर्ण था।

(३) अलंकार उपमा।

मरकत की वेदी ... ... राका रानी।

शब्दार्थ—मरकत = पन्ने (रत्न)। मुकुर = दर्पण, आदर्श। राका रानी = पूर्णिमा की रात्रि।

भावार्थ—'मानस' का वर्णन करता हुआ कवि कह रहा है कि स्वच्छ-शीतल जल से पूर्ण वह मानसरोवर सर्वत्र ही हरियाली से भरपूर वन में ऐसा दृष्टिगोचर हो रहा था—जैसे मरकत मणियों से बनी हुई वेदिका पर हीरे का पानी (स्वच्छ तथा सफेद) रखा हो अथवा जैसे प्रकृति—रमणी के शृंगार-प्रसाधन एवं सौन्दर्य-दर्शन का साधन रूप छोटा दर्पण हो अथवा जैसे उज्ज्वल तथा निर्मल जल के रूप में पूर्णिमा ही अपनी निर्मल, शुभ्र एवं पवित्र ज्योत्स्ना के साथ शयन कर रही हो।

विशेष—(१) कवि को यहाँ अपनी प्रतिभा का परिचय देने का शुभ अवसर मिला है। कल्पनाओं की मौलिकता एवं सुन्दर अभिव्यक्ति स्पृहणीय है।

(२) यहाँ 'मरकत वेदी पर ज्यों रखा हीरे का पानी' के बिम्ब के माध्यम से मानसरोवर के जल की स्वच्छता एवं पारदर्शिता का, 'प्रकृति का मुकुर' के बिम्ब के माध्यम से मानसरोवर की निर्मलता और 'सोई राका रानी' के बिम्ब के माध्यम से मानसरोवर की स्वच्छता, पवित्रता एवं नैर्मल्य का चित्ताह्लादक चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

(३) अलंकार —(i) उपमा—'छोटा-सा मुकुर'।
(ii) वस्तूत्प्रेक्षा—'सोई राका रानी तथा 'मरकत··· पानी।'

दिनकर गिरि के ... ... किसी लगन में।

शब्दार्थ—दिनकर=सूर्य। गिरि=पर्वत। हिमकर=चंद्रमा। गगन=नभ, आकाश। प्रदोप प्रभा=संध्याकालीन सुषुम्ना (आभा)। स्थिर=एकाग्र, अचल। लगन=साधना, ध्यान।

भावार्थ—इस समय सूर्य कैलाश पर्वत के पीछे छिप चुका था तथा शशि आकाश में ऊपर आ चुका था। संध्याकालीन सुषमा से युक्त कैलाश पर्वत ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह एकाग्र-भाव से समाधिरत होकर विराजमान हो।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने सन्ध्याकालीन आभा से युक्त कैलाश पर्वत को समाधि-लीन के रूप में व्यक्त किया है। इसी प्रकार का भाव-साम्य कवि दिनकर के शब्दों में द्रष्टव्य है :

कैसी अखण्ड यह चिर समाधि !
यतिवर ! कैसा यह अमर ध्यान !
तू महाशून्य में खोज रहा,
किस जटिल समस्या का निदान !

(२) यहाँ 'प्रदोष' शब्द का प्रयोग साभिप्राय है। शैवागम के अनुसार प्रदोष व्रत विशेष महत्त्वप्रद बतलाया गया है। प्रदोष व्रत त्रयोदशी तिथि मे पडता है। इस प्रकार अविचल कैलाश पर्वत एकाग्रचित्त होकर शिव को उपासना में लीन दृष्टिगोचर हो रहा है।

(३) अलंकार—मानवीकरण।

संध्या समीप ... ... कदम्ब की रसना।

शब्दार्थ—समीप=निकट, पास। सर=मानसरोवर। वल्कल वसना=वृक्षों की छालो के वस्त्र धारण किए हुए। अलक=केश-कलाप, चोटी। रसना=करधनी।

भावार्थ—मानसरोवर के तटवर्ती स्थान का वातावरण संध्याकाल में अत्यधिक मनमोहक हो उठा था। वहाँ संध्याकालीन रक्तिम आभा चारों ओर बिखरी हुई थी। ऐसा दिखलाई दे रहा था मानो संध्या-सुन्दरी वल्कल वस्त्रों को धारण किए हुए उस मानसरोवर के समीप उपस्थित हुई हो। आकाश-मण्डल में छिटकते हुए देदीप्यमान तारों को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो संध्या-सुन्दरी का केश-पाश तारों से गुंथा हुआ हो। कदम्ब के पुष्पों को देखकर और बिखरी मनमोहक सुरभि की अनुभूति करके ऐसा प्रतीत हो रहा

तब वृषभ … … … … डग भरता।

शब्दार्थ—वृषभ=सांड। सोमवाही=सोमलताओं को ढोने वाला। डग भरना=कदम बढाना।

भावार्थ—उस समय सोमलताओं को ढोने वाला वृष अपनी ग्रीवा में बंधे घण्टे से नाद करता हुआ इड़ा के पीछे-पीछे चला जा रहा था और उसके साथ मनु-पुत्र (कुमार) कदम बढा रहा था।

विशेष—(१) 'वृषभ के आगे बढने' से सकेतित है—धर्म की व्यापकता एवं स्वतन्त्रतावादी प्रवृत्ति। वृष को 'सोमवाही' शब्द से विभूपित किया गया है। सोमलताएँ देवो के पेय है। देवताओ के पेय के अतिरिक्त उसका संकेतित अर्थ भी लिया जा सकता है। समरसता को ही कवि ने आनन्द के रूप में भी ग्रहण किया है। आनन्दवाद की प्रतिष्ठा 'पूर्णकाम' के द्वारा होती है।

हां, इड़ा आज … … … सराह रही थी।

शब्दार्थ—निज=अपना। दृग युगल=दोनो नेत्र। सराहना=धन्य मान रही थी।

भावार्थ—आज इडा अपने को भुलाये हुए थी। उसके अन्तर मे अपने-पराये जैसी भेद वाली कोई वात शेप नही रह गई थी, किन्तु श्रद्धा और मनु दोनो से क्षमा याचना करने की कोई किसी प्रकार की इच्छा उसके हृदय मे नही थी। जिस भेद-भाव के कारण उसे असफलता का सामना करना पड़ा था—उसके लिये क्षमा-याचना करने की वात लघुता जसी प्रतीत हो रही थी। श्रद्धा और मनु के दिव्य स्वरूप एवं अलौकिक प्रेम के पुण्य-दर्शन होने के कारण इडा अपने नेत्रों को सराह रही थी—ऐसा शुभ-दर्शन सामान्य नेत्रों के लिए निस्सन्देह परम सौभाग्यकारी है।

चिर मिलित प्रकृति … … … अम्बुनिधि शोभन।

शब्दार्थ—चिर मिलित=बहुत प्राचीनकाल से मिले हुए। प्रकृति=ईश्वरीय शक्ति (श्रद्धा)। पुलकित=आनंदित। चेतन पुरुष पुरातन=शिव रूप मनु। निज शक्ति=अपनी शक्ति। तरंगायित=लहरो से युक्त। आनन्द अम्बुनिधि=आनन्द का सागर। शोभन=शोभायमान।

भावार्थ—आनन्द मे निमग्न तपस्वी मनु अपनी संगिनी श्रद्धा के साथ विराजमान उस समय ऐसे आनन्दित प्रतीत हो रहे थे, मानो चेतन पुरुष पुरातन अभिन्न संगिनी प्रकृति से युक्त होकर आनन्दित हो रहे हों। जिस प्रकार विशाल सागर अपनी तरंगो से युक्त होकर शोभायमान होता है, उसी प्रकार शिवरूप मनु अपनी शक्तिस्वरूपा श्रद्धा के साथ आनन्दविभोर दृष्टिगोचर हो रहे थे।

विशेष—(१) यहाँ कवि प्रसाद ने मनु का शिवरूप में तथा श्रद्धा का उसकी आद्या-शक्ति के रूप में चित्रांकन किया है। शैवागम के अनुसार अग्नि तथा उसकी उष्णता का जो अभेद सम्बन्ध है, वैसा ही सम्बन्ध शिव तथा आद्या-शक्ति में है। यहाँ मनु की समता आनन्द सागर से स्थापित की गई है—शैवा-गम के अनुसार भी शिव की समता आनन्द-सागर से की गई है।

(२) यहाँ 'आनन्द-अम्बुनिधि' के बिम्ब के माध्यम से मनु की अखंडानंद की अनुभूति का सफल चित्रण हुआ है।

भर रहा अंक ... ... गद्‌गद स्वर।

शब्दार्थ—अंक=गोद। पुलक=रोमांच।

भावार्थ – मानव अपनी माता श्रद्धा को देखकर उसकी गोद में जाकर बैठ गया। उसके समस्त अभावों की निवृत्ति हो गई—जिस प्रकार माता की गोद मे पहुँचकर किसी बच्चे के हृदय में अमित शान्ति अनुभव होती है। इडा ने श्रद्धा के चरणों में अपना शीष झुका दिया। श्रद्धा के अमित स्नेह से वशीभूत होकर उसका शरीर पुलकायमान हो गया। इड़ा भाव-विभोर हो श्रद्धा से कहने लगी।

विशेष—यहाँ कवि ने वात्सल्य भाव का सुन्दर चित्रांकन किया है—माता की गोद में पहुँचकर बालक के सारे अभाव स्वतः दूर हो जाते हैं। मानिनी इडा भी श्रद्धा के चरणों में नतशिर हो जाती है—उसका हृदय श्रद्धा के प्रति अगाध ममता से परिपूर्ण हो उठा है—इसका यहाँ सशक्त चित्रण किया गया है।

बोली—मैं ... ... खींचती लायी।

शब्दार्थ—ममता=प्रेम, ममत्व। बस=मात्र।

भावार्थ—श्रद्धा को देखते ही इड़ा ने अपने सिर को उसके चरणों पर झुका दिया। वह पुलकित तथा भाव-विभोर होकर कहने लगी कि आज मेरा जीवन आपके शुभ दर्शन प्राप्त करके कृतार्थ हो गया। मैं आज सारी पुरानी बातें भूलकर यहाँ आई हूँ। हे देवि ! तुम्हारी ममता का ही यह फल है, जो मुझे यहाँ तक आपके पास खीच लाई है।

विशेष—(१) अहमन्या इड़ा द्वारा मस्तक-नमन श्रद्धा के प्रति अगाध ममता का सूचक है। यही कारण है कि वह इतनी दूर यहाँ तक पद-यात्रा करके आई है। पुरानी बातें अब उसके हृदय से दूर हो चुकी है—यह उसके स्वकथन से ज्ञात हो रहा है। इस प्रकार श्रद्धा के विशेष व्यक्तित्व का चित्रांकन किया गया है। दूसरे शब्दो में, हृदय और बुद्धि का समन्वित रूप यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

भगवति, समझी ... ... अघ छुट जाये।

शब्दार्थ—अभ्यास=कार्य परिणत रूप। दिव्य=अलौकिक। अघ=पाप। छुट जाय=निवृत्त हो जावे।

भावार्थ—इड़ा ने श्रद्धा से विनीत स्वर में कहा कि वास्तव में आज मुझे ज्ञान हुआ है। इससे पूर्व मुझे कुछ भी ज्ञान न था। मैं तो अब तक भुलावे में ही रही। इसके अतिरिक्त मैंने दूसरों को भी भुलावे मे डालने का असफल प्रयास किया। मै इस प्रकार दूसरो को असन्मार्ग पर प्रवृत्त करती रही और मैं अपने स्वरूप को न समझ सकी। मुझे अपने को तथा अन्य लोगों को भुलावे में डालने की आदत-सी पड गई थी, किन्तु आज हम सभी (सारस्वत नगर की प्रजा आदि)एक परिवार के रूप में यहाँ आकर उपस्थित हुए हैं। हम सभी इस सुन्दर तथा अलौकिक तपोभूमि के विषय मे सुनकर कि 'जो भी यहाँ आता है, दर्शन करता है, उसके समस्त पापो की निवृत्ति हो जाती है'—यात्रा करने के लिये यहाँ आये है।

विशेष— यहाँ कवि ने इड़ा को एक तर्कशील बुद्धि के रूप में प्रस्तुत किया है। तर्कशील बुद्धि की अतिशयता नाना प्रकार के संदेहों में उलझा देती है। तर्कशील प्राणी स्वयं भी उलझ जाता है तथा वह अन्य लोगों को भी संशयात्मक स्थिति में डाल देता है। फलतः कोई भी एक सुनिश्चित तथ्य पर नही पहुँचता। प्रत्येक कार्य मात्र तर्क के बल पर पूर्ण नहीं हो सकता इस प्रकार मानव-जीवन मे सर्वांगीण उन्नति के लिये मात्र तर्क ही वांछनीय नही है अपितु हृदय पक्ष भी परम् महत्वपूर्ण है।

मनु ने कुछ ... ... भी नहीं पराया।

शब्दार्थ—मुसक्याकर=मुस्कुराकर। कैलास=कैलाश पर्वत। पराया=दूसरा, गैर।

भावार्थ - इड़ा की ये बातें सुनकर मनु ने अपने नेत्र खोले और मुस्कुराते हुए उन्होने कैलाश पर्वत की ओर संकेत किया। फलतः सभी का ध्यान उस कैलाश गिरि की ओर आकृष्ट हो गया। मनु ने सबको सम्बोधित करते हुए कहा कि देखो, यहाँ पर आकर कोई भी एक-दूसरे से पृथक् नही रहता—सब में अभेद प्रतीति होती है। यहाँ अकर सभी एक-दूसरे को अपना समझते है—यहाँ किसी प्रकार का पारस्परिक भेद-भाव नही रहता है।

विशेष – (१) यहाँ कवि ने 'उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्' की उक्ति का सफल चित्रांकन प्रस्तुत किया है।

(२) मनु ने कैलाश पर्वत की ओर संकेत किया है—इससे अभिप्राय यह है कि यह कैलाश पर्वत शुद्ध एवं सात्विक ज्ञान का प्रतीक है, जिसके शिखर पर पहुँचकर मानव को अखंडानंद की उपलब्धि होती है।

हम अन्य न ... ... नहीं कमी है।

शब्दार्थ—अवयव=अंग।

भावार्थ—मनु ने आगे कहा कि हम सभी एक परिवार के रूप में है। हम सब पारस्परिक प्रेम के कारण एक रूप है। समरसता की भावना ने हम सभी को एकरूप बना दिया है। यद्यपि सब लोग पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर होते है तथापि वस्तुतः सब एक है। जिस प्रकार हाथ, पैर, मुख आदि अग पृथक्-पृथक् होने पर भी एक ही शरीर के अंग है, उसी प्रकार मै एक शरीर के रूप में हूँ और तुम सब मेरे शरीर के अंगों के रूप में हो। इस प्रकार सबका अस्तित्व पृथक् होते हुए भी एक समन्वित रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। इन अंगों में अर्थात् तुम सब में किसी प्रकार की कोई कमी नही है।

विशेष यहाँ अनेकता में एकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। समस्त मानव-समाज एक विश्वात्मा की सन्तान है। समरसता के अभाव मे सारी विषमताएँ उत्पन्न हो जाती है। समरसता की स्थिति में 'मेरा-तेरा' का भेद-भाव समाप्त हो जाता है। तभी तो शरीर के समस्त अवयव भिन्न होकर भी एक रूप ही दिखाई देते है। 'प्रत्यभिज्ञादर्शनम्' के अभेदवाद की ओर कवि ने यहाँ संकेत किया है। सभी में चेतना-शक्ति एक ही है।

(२) अलंकार – रूपक।

शापित न यहाँ ... ... कि जहाँ है।

शब्दार्थ - शापित=शाप-युक्त। तापित=ताप-त्रय से सतृप्त (दैहिक, दैविक एवं भौतिक ताप)। जीवन-वसुधा=जीवन रूपी पृथ्वी। समतल=समभूमि।

भावार्थ – मनु ने उस तपोभूमि के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए बतलाया कि यहाँ पर न तो कोई प्राणी शापग्रस्त है और न कोई तापों से परितप्त। यहाँ पर किसी को किसी प्रकार का भी लेशमात्र दुःख नही। यहाँ पर कोई भी ऐसा प्राणी नही है, जो पापाचार करता हो। यहाँ के प्राणियो मे किसी प्रकार का भेद-भाव नही है। सभी एक दूसरे के साथ पारस्परिक समानता, प्रेम एवं सौहार्द्रपूण व्यवहार करते है—सभी प्राणियों मे अभिन्न सम्बन्ध है। इन प्राणियो में किसी प्रकार की वैषम्य भावना नही है। जिस प्रकार समभूमि में खार-खड्डे नही होते, वह भूमि ऊँची-नीची नही होती, उसी प्रकार यहाँ के प्राणी अपने जीवन मे पारस्परिक समानता की अनुभूति करते है। इस प्रकार जहाँ भी जो कुछ है, उसमे पूर्ण समरसता है—एकरूपता है किसी प्रकार का भेद-भाव नही है।

विशेष—(१) कवि प्रसाद ने प्राणि-मात्र के कल्याण के अर्थ समरसता के सिद्धान्त पर बल दिया है। यहाँ सभी प्राणियों मे अभेद प्रतीति, समानता तथा

अभिन्नता की भावना आदि विद्यमान है। शैवागम का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त 'समरसता' है और समरसता का प्रतिपादन ही कामायनी का मूल स्वर है—एक अमर संदेश है।

(२) यहाँ समतल वसुधा के विम्व के माध्यम से जीवन मे समरसता के महत्त्व की सशक्त् अभिव्यक्ति हुई है।

(३) अलंकार—रूपक।

चेतन समुद्र में ··· ··· ··· ··· आकार खड़ा है।

शब्दार्थ—चेतन समुद्र=चित् (चैतन्य) शक्ति रूपी समुद्र। छाप व्यक्तिगत= वैयक्तिक अस्तित्व। निर्मित=बनी हुई। आकार=आकृति, स्वरूप।

भावार्थ— मनु ने बतलाया कि परम तत्त्व अर्थात् चित् शक्ति के स्वरूप शिव एक समुद्र के सदृश है, जिसमे उत्ताल तरंगें उठती हैं और उठकर फिर उसी मे अन्तर्हित हो जाती है। इसी प्रकार परमतत्त्व को चित् शक्ति के अन्तर्गत प्राणी जन्म लेते है और लीन हो जाते हैं। जिस प्रकार उठती लहरों का अस्तित्व सागर से भिन्न नही है, उसी प्रकार किसी भी प्राणी का अस्तित्व चित्त शक्ति से भिन्न नही है। जिस प्रकार लहरें कुछ क्षणों के लिए अपना व्यक्तिगत रूप धारण कर लेती है और फिर विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रत्येक जीवधारी अपनी निजी विशेषताओ के कारण कतिपय क्षणों के लिये अपना एक स्वतन्त्र स्वरूप—आकार अवश्य बना लेता है—ऐसी स्थिति में उसका स्वरूप पृथक्-सा अवश्य दिखलाई देता है और जीव स्वयं भी ऐसा ही समझता है, किन्तु वास्तव में कालान्तर में वह चिति शक्ति में विलीन हो जाता है। तात्पर्य यह है कि चेतना शक्ति से पृथक् होकर उसका अस्तित्व कुछ भी नही रह जाता।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ तरंगायित एवं विशाल सागर के रूपक द्वारा (परम तत्त्व-चिति शक्ति) ब्रह्म तथा जीव की अभिन्नता का निरूपण किया है।

(२) यहाँ समुद्र के बिम्ब के माध्यम से निस्सीम एव विशाल चिति शक्ति का तथा लहरों के विम्ब के माध्यम से मानव-जीवन का प्रभावोत्पादक चित्रांकन किया है।

(३) अलंकार—पूर्णोपमा 'चेतन समुद्र···पड़ा है।'
रूपक—चेतन समुद्र।

इस ज्योत्सना के ··· ··· ··· भाव चरम हैं।

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना=चद्रिका। जलनिधि=सागर। बुद्बुद=बुलबुला। नक्षत्र=तारे। आभा=दीप्ति। अभेद सागर=चिति शक्ति रूपी सागर। प्राणो=जीवधारियों। सृष्टिक्रम=सर्जना (उत्पत्ति का क्रम)। रसमय=अखंड आनंदमय। भाव=चित् शक्ति की सत्ता। चरम=श्रेष्ठ।

भावार्थ—मनु ने बतलाया कि चांदनी के अनन्त सागर मे तारे बुलबुलों के रूप में अपना प्रकाश प्रकट करते हुए चमकते रहते हैं, उसी प्रकार अभिन्न रूप से फैली हुई सागर के सदृश चिति शक्ति के अभिन्न तथा विराट् स्वरूप में प्राणियो का जन्म-मरण का चक्र चल रहा है। दूसरे शब्दो मे, प्राणी जन्म लेते हैं तथा अन्त मे मृत्यु प्राप्त कर उसी चित् शक्ति में लीन हो जाते है। इस अभिन्न समुद्र में लहरों, जल तथा बुलबुलों में मूलतः कोई किसी प्रकार का भेद नही है और अन्त मे जल के स्वरूप मे ही उसकी अवस्थिति शेष रहती है, इसी प्रकार तारे सामूहिक रूप में अभिन्न प्रकाश करते हैं। उनकी प्रकाश के एकमय स्वरूप में ही अवस्थिति रहती है। वास्तव में समस्त प्राणी घुल-मिल जाने पर अखंडानन्द से मुक्त होकर शिव स्वरूप ही मात्र शेष रहते है।

विशेष (१) कवि प्रसाद ने ब्रह्म तथा जीव की अभिन्नता प्रकट करने के लिए तारागण, प्रकाश तथा समुद्र के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। जीव आत्म-स्वरूप मे लीन होकर चिदानन्द लाभ करता है यही समरस की अवस्था है। द्वयता समाप्त होकर जीवात्मा तथा परमात्मा में अभिन्नता स्थापित हो जाती है।

(२) 'ज्योत्स्ना जलनिधि' के बिम्ब के माध्यम से चेतना शक्ति के विराट् स्वरूप का तथा 'बुद्‌बुदो' के बिम्ब के माध्यम से नक्षत्रों का सुन्दर चित्रांकन किया है।

(३) **अलंकार** - उपमा — बुद्‌बुद-सा।
रूपक – ज्योत्स्ना के जलनिधि।

अपने दुःख-सुख ... ... **चिर सुन्दर।**

शब्दार्थ - पुलकित=पुलकायमान। मूर्त्त विश्व=स्थूल जगत्। सचराचर=जड तथा चेतन पदार्थों से युक्त। चिति=चेतन शक्ति (शिव)। विराट्=विशाल। वपु=काया, शरीर। मगल=कल्याण। सतत्=सदा। चिर=शाश्वत।

भावार्थ – मनु ने कहा कि जड तथा चेतन पदार्थों से युक्त यह स्थूल एवं भौतिक संसार अपने सुख से सुखी एवं अपने दुःख से दुःखी होकर पुलकायमान होता है। दूसरे शब्दो में, अपने सुख तथा दुःख से यह भौतिक संसार प्रभावित होता रहता है। यह संसार यथार्थ मे उसी विराट सत्ता का मंगलमय एवं विशाल शरीर है, इसलिये यह सत्यमय तथा शाश्वत सौंदर्यमय है।

विशेष—(१) 'प्रत्यभिज्ञादर्शनम्' में ब्रह्म की ही तरह प्रत्यक्ष संसार को भी सत्य, शिव तथा सुन्दर बतलाया गया है - यही भाव कवि ने यहाँ चित्रित किया है। वेदांत के अनुसार 'सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या' कहा गया है अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है और संसार मिथ्या। इस संदर्भ में तंत्रालोक में लिखा है—

की प्राप्ति सात्विक जीवन में ही प्राप्त हो सकती है। प्राणी को समस्त राग-द्वेष, लाभ आदि से परे रहना चाहिए।

(२) यहाँ 'उलझन वाली अलकों' के विम्ब के माध्यम से रात्रि के अंधकार का सफल चित्रण किया है।

(३) अलंकार – रूपकातिशयोक्ति –'उलझन वाली अलकों'।
मानवीकरण—'ऊषा के दृग', 'निराशा की पलकों', 'उलझन वाली अलकों'।

चेतन का साक्षी ... ... गहरे धँसता-सा।

शब्दार्थ—चेतन का साक्षी=चेतना शक्ति का प्रत्यक्षदर्शी गवाह। निर्विकार=राग-द्वेष आदि से सर्वथा मुक्त। मानस=मन, मानसरोवर। मधुर मिलन=मिलना, अभिन्न होना, भेद-रहित होना। गहरे-गहरे धँसता-सा=हृदय में प्रविष्ट होता-सा, मन मे घर कर लेना।

भावार्थ—मनु कह रहे है कि इस जगत् में प्राणी चेतना-शक्ति के विराट् स्वरूप का प्रत्यक्षदर्शी गवाह है। दूसरे शब्दों मे, मानव उस परमतत्त्व चेतना शक्ति का ही एक अंश है, जिसे सुगमतापूर्वक देखा जा सकता है। जैसे चेतना-शक्ति में किसी प्रकार का राग-द्वेष नही है, वैसे ही मानव को राग-द्वेष से मुक्त होना चाहिए और परस्पर प्रेम-भाव से रहना चाहिए। एक-दूसरे के हृदय में आत्मीयता का भाव ऐसा गहरा प्रविष्ट होना चाहिए जैसाकि नदी सरोवर से मिलकर उसकी गहराई मे धँस जाती है, अर्थात् पूर्णतया एकाकार हो जाती है।

विशेष—(१) यहाँ कवि ने नदी और सरोवर के रूपक के माध्यम से मानव-मात्र के पारस्परिक सुमधुर मिलन की अभिव्यक्ति की है। मानव चेतना-शक्ति का प्रत्यक्ष रूप में दर्शक है और उसकी चेतना-शक्ति का एक श्रेष्ठ अंश है—इस नाते उसे भी चेतना-शक्ति के समान निर्लिप्त अर्थात् निर्विकार होना चाहिए। प्राणि-मात्र में किसी प्रकार की भेद-भावना का कोई स्थान नही होना चाहिए।

(२) 'मानस' के बिम्ब के माध्यम से यहाँ 'मिलन' का सशक्त चित्रण किया गया है।

(३) अलंकार—श्लेष।

सब भेद-भाव ... ... नीड़ बन जाता।

शब्दार्थ—दृश्य=देखने योग्य। विश्व=जगत्। नीड़=घौसला।

भावार्थ – मनु कह रहे है कि सुख-दु:ख से व्याप्त इस जगत् को मात्र दृश्य समझकर प्राणी को इसके दर्शक के रूप मे रहकर देखना चाहिए। इस प्रकार जीवन व्यतीत करने से ही प्राणी को अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो सकता है अर्थात् वह अपने को सम्यक् पहचान सकता है। यह जगत् एक घोंसले के

समान है। जिस प्रकार पक्षीगण अपने घौसले मे सुख-शान्ति एवं आनन्दपूर्वक रहते हुए जीवन व्यतीत करते है, उसी प्रकार प्राणी को भी चाहिए कि वह भी इस जगत् में इसी भाव को समझकर तद्नुकूल जीवन व्यतीत करे।

विशेष—(१) यहाँ जगत् को सुखमय बताया गया है। इस जगत् को दृश्य तथा प्राणी को दर्शक के रूप में बतलाया गया है, जिस प्रकार घौसला पक्षियों के लिए सुख-शान्ति का आश्रय स्थान होता है, उसी प्रकार प्राणी भी इस संसार को घौसला समझता हुआ सुख-शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करे—यही कविवर प्रसाद का मन्तव्य है। इस प्रकार प्राणियों के मन मे किसी प्रकार की कटुता तथा विकार न पनप सके।

(२) यहाँ नीड़ के बिम्ब के माध्यम से सौहार्द्रपूर्ण संसार का सुन्दर चित्रांकन प्रस्तुत किया गया है।

(३) अलंकार—रूपक—'विश्व नीड़ बन जाता'।

श्रद्धा के मधु ... ... स्मिति लेखाएं।

शब्दार्थ—मधु अधर=मधुरता से परिपूर्ण ओष्ठ। स्मिति लेखाएँ=मुसकान की रेखाएँ।

भावार्थ—मनु के सेवा, भेद-भाव हीनता एवं प्रेम विषयक विचारों को सुनकर श्रद्धा के मधुर ओष्ठों पर मुसकान की छोटी-छोटी रेखाएँ (अनुराग) उषाकालीन लालिमा से युक्त सूर्य की किरणों के समान क्रीड़ाएँ करने लगी।

विशेष—(१) श्रद्धा के मधुर ओष्ठो की अरुणिमा की समता उपाकालीन सूर्य की अरुणिमा से की है। उसके ओष्ठों पर छाई मुसकान की रेखाओं की समता प्रभातकालीन सूर्य की श्वेत किरणों से की गई है। सूर्य की किरणें जिस प्रकार क्रीड़ाएं करती हुई-सी जान पड़ती हैं, उसी प्रकार श्रद्धा की मुसकान क्रीड़ाएँ करती हुई-सी दृष्टिगोचर हो रही हैं।

(२) यहाँ 'रागारुन किरन कला' के बिम्ब के माध्यम से श्रद्धा की मधु-स्मिति रेखाओं का सशक्त चित्रांकन किया गया है।

(३) अलंकार—पूर्णोपमा—समस्त पद में।

वह कामायनी जगत् ... ... बन बेली।

शब्दार्थ—कामायनी=श्रद्धा। जगत्=संसार। ज्योतिष्मती=आलोकपूर्ण। प्रफुल्लित=सुविकसित। मानस=मानसरोवर। तट=किनारा। वेली=वेलें, लताएँ।

भावार्थ—कामायनी अर्थात् श्रद्धा समूचे विश्व के प्राणियों की कामनाओं की पूरयित्री दृष्टिगोचर हो रही थी। वह अकेली कल्याण की साक्षात् मूर्ति-स्वरूपा थी, इसीलिये श्रद्धा अपने पूरे परिवार के सहित मानसरोवर के किनारे आलोकपूर्ण होकर इस प्रकार उल्लसित दृष्टिगोचर हो रही थी, जिस प्रकार

जैसे असंख्य मुकुलों ... ... भर लाया।

शब्दार्थ—मुकुल=कली। मादन विकास=मस्ती से भरी खिलखिलाहट। असंख्य=अगणित, अनेक। अछूत=अस्पृश्य।

भावार्थ— सुरभित वायु की सुखद अनुभूति तथा मंद गति ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानो वह अगणित कलिकाओं को विकसित करके अभी-अभी इधर आ रहा हो और सुविकसित कलिकाओं के अस्पृश्य अधरों का चुम्बन लेकर चला आ रहा हो।

विशेष- (१) यहाँ सुगंधित वायु की विशेष मादकता, शीतलता एवं मन्थर गति को व्यंजित किया गया है।

(२) अलंकार - मानवीकरण - समस्त पद में।

रुक-रुककर ... . जलद-सा फूल।

शब्दार्थ—नव=नूतन। कनक कुसुम=पलाश का पुष्प। रज-धूसर=पराग से लिप्त। मकरन्द जलद=पराग की बूंदो से भरे बादल। फूला=उमड़ा।

भावार्थ- उस समय सुरभित वायु मे असामान्य मादकता भरी हुई थी, इसी मस्ती के कारण वह कुछ इतराता हुआ चल रहा था और इसीलिए वह अपनेपन में खोया हुआ-सा प्रतीन हो रहा था, जैसे कोई मस्त व्यक्ति अपने नशे मे मस्त होकर कुछ इठलाता हुआ और रुक-रुककर चल रहा हो। मादक सुरभि से पूर्ण वायु नये-नये पलाश के फूलों के पराग से युक्त तथा मकरन्द रस से भरे बादल के रूप मे उमडता-सा दृष्टिगोचर हो रहा था।

विशेष—(१) यहाँ किसी रसिक व्यक्ति की गतिविधियों के बिम्ब के माध्यम से सुरभित वायु की मादकता एवं मन्द गति का चित्रांकन किया गया है। कविवर बिहारीलाल ने मादक वायु का कुंजर में आरोप करते हुए सुमधुर रूपक प्रस्तुत किया है—

> रनित भृंग घण्टावली झरत दान मधु नीर।
> मंद मंद आवतु चल्यौ कुंजर कुंज-समीर॥

(२) यहाँ जलद के बिम्ब के माध्यम से मकरन्दयुक्त वायु का निरूपण किया गया है।

(३) अलंकार—(i) मानवीकरण -- समस्त पद मे।
(ii) पूर्णोपमा—'मकरन्द जलद-सा'।

जैसे वनलक्ष्मी ... ... अभिनव मंगल।

शब्दार्थ—केसर रज=पराग धूलि। हेमकूट=सुमेरु गिरि। हिम जल=बर्फीला पानी। संसृति=सृष्टि। गगन आँगन=आकाश रूपी आंगन। अभिनव=नूतन। मंगल=मांगलिक गीत।

भावार्थ—पराग की रज से युक्त पवन को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वन लक्ष्मी ने उल्लसित होकर पराग की धूलि को बिखेर दिया हो या पीले पराग से भरी वायु ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो (स्वर्णिम) सुमेरु गिरि अपने प्रतिबिम्ब को बर्फीले जल में दिखला रहा हो। वायु से उत्पन्न मधुर ध्वनि ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो किसी विरह व्यथिता सुन्दरी के समान यह सृष्टि मिलने के लिए विशेष उत्कण्ठित होकर आहें भर रही हो। वे ही आहे एक समूह बनाकर मंगलगीत गाती हुई आकाश मे मिलने के लिए इस प्रकार निकल पडी, जिस प्रकार सुन्दरियाँ दल बनाकर मांगलिक गीत गाती हुई प्रिय से मिलन की उत्कण्ठा के फलस्वरूप आंगन में निकल आती हैं।

विशेष—(१) यहाँ बिम्ब योजना विशेष रूप से प्रेक्षणीय है।

(२) अलंकार—(i) रूपक—'गगन-आंगन'।
(ii) वस्तूत्प्रेक्षा—उभय पदों में।
(iii) संदेह—प्रथम पद में।

वल्लरियाँ नृत्य ... ... अब ठहरे।

शब्दार्थ—वल्लरियाँ=लता, बेलें। निरत=लीन। वेणु=वांस। रंध्र=छिद्र, सुराख। मूर्छना=संगीत सप्त स्वर के आरोह-अवरोह का संधि-विन्दु।

भावार्थ—उस समय मादक एवं सुगंधित वायु के प्रवाहित होने के कारण लताएँ, बेलें नाच मे झूम रही थी, उनमे सुविकसित पुष्पो से सुगंधि की लहरें सर्वत्र बिखर उठीं। ऐसे मादक एवं मनमोहक वातावरण मे बांसों के छिद्रो में से निकलने वाली सुरीली ध्वनि भला कहाँ रुक सकती थी अर्थात् बांसों के छिद्रों मे से सुमधुर लहरी निकल रही थी।

विशेष—(१) बाँसो के छेदो मे वायु भर जाती है और निकलने पर एक विशेष मधुर ध्वनि निःसृत होती है—इस विषय मे कवि कालिदास ने इस प्रकार लिखा है—

'स कीचकैर्मरुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादित वंशकृत्यम्।'

(२) यहाँ बिम्ब-योजना विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

(३) अलंकार—मानवीकरण—समस्त पद में।

गूंजते मधुर ... ... झिलकर।

शब्दार्थ—नूपुर—घुंघरु। मधुकर=भ्रमर, भौरे। वीणा=सितार। शून्य=अन्तरिक्ष। झिलकर=बलात्।

भावार्थ—कवि का कहना है—पुष्पों की सुरभि से मस्त होकर भौरे गूँजते हुए घुघरुओ की-सी ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे। उस समय भ्रमरों का गुंजन ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सरस्वती (वाणी देवी) देवी की वीणा की मधुर झंकृति सूने आकाश में चारों ओर गूँजने लगी हो।

विशेष—(१) 'मधुर नूपुर' तथा 'वीणा की ध्वनि'—प्रस्तुत बिम्बों की योजना यहाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

(२) अलंकार—पूर्णोपमा—समस्त पद में।

उन्मद माधव ... ... **थे झड़ते।**

शब्दार्थ— उन्मद=मदमस्त। माधव=वसन्त, ऋतुराज। मलयानिल= मलय गिरि से आने वाली वासन्ती वायु; दक्षिण वायु। परिमल=पराग। काकली=कोयल की सुमधुर ध्वनि। सुमन=पुष्प, फूल।

भावार्थ—कवि का कथन है— वासन्ती दक्षिणी पवन मदमत्त होकर, बेसुध-सा होकर मंथर गति से प्रवाहित हो रहा था, कोयलों की सुमधुर लहरी ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो पुष्पो के सुरभित परिमल में स्नान करने आ रही हो। समस्त वातावरण में सुरभि तथा संगीत का एक अपूर्व मिश्र हो गया था। वृक्षों तथा लताओं से फूल गिर रहे थे।

विशेष—(१) कवि प्रसाद ने यहाँ वसन्त का परम मनोहर एवं मादक वर्णन प्रस्तुत किया है। इस प्रसंग मे बिम्ब-योजना सानुकूल है।

(२) **अलंकार**—(i) मानवीकरण—'उन्मद···पड़ते' तथा 'परिमल··· काकली'।
(ii) समासोक्ति—'परिमल ··· काकली'।

सिकुड़न कौशेय ... ... **सृजन पर।**

शब्दार्थ—सिकुड़न=सिलवटें। कौशेय वसन=रेशमी वस्त्र (साड़ी)। विश्व सुन्दरी=विश्व रूपी सुन्दरी; प्रकृति-देवी। मादन=मस्ती। मृदुतम= अत्यन्त कोमल। सृजन=सृष्टि।

भावार्थ—कवि का कथन है—वहाँ पर वसन्त का शोभापूर्ण एवं चित्ताकर्षक वातावरण ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो विश्व रूपी सुन्दरी ने अपने सुकोमल शरीर पर रेशमी साडी पहन रखी हो। उस साड़ी पर पडी सिलवटें वासन्ती शोभा के रूप मे छिटक रही थी या मानो समूची सृष्टि में मस्ती-भरा कोमल स्पन्दन छाया हुआ हो।

विशेष—(१) यहाँ वृक्ष लताएँ साडी की सिलवटों के रूप में तथा पुष्पों मे कम्पन के रूप मे संकेतित किया गया है—इस प्रकार वासन्ती सुषमा का सुन्दर चित्राकन किया गया है।

(२) 'कम्पन' पुल्लिग शब्द के साथ 'छाया' क्रियापद का प्रयोग होना चाहिए, किन्तु यहाँ 'छायी' का प्रयोग किया गया है। अतः यहाँ पर 'च्युत संस्कृति' दोप है।

(३) अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा तथा संदेह।

सुख सहचर ... ... अब निर्भय।

शब्दार्थ—सहचर=साथी। विदूषक=मजाकिया; दर्शकों को हँसाने वाला पात्र। परिहासपूर्ण=हास्यपूर्ण। अभिनय=नाटक। विस्मृति का पट=भूल रूपी परदा। निर्भय=निडर; शंका-रहित।

भावार्थ—कवि का कथन है - वहाँ का सुखद तथा आनन्दमय वातावरण चित्ताकर्षक हो उठा था। सुख का साथी दुःख विदूषक के रूप में प्रकट हो गया था। जिस प्रकार विदूषक अपनी वेश-भूषा, हास-परिहास भरी बातों तथा भ व-भंगिमाओं से दर्शकों के चित्त को प्रसन्न कर देता है और दर्शक कतिपय क्षणों के लिए भूल से जाते हैं, उसी प्रकार सुख का साथी दुःख यहाँ के प्राणियों की विस्मृति में छिप गया है। दूसरे शब्दो में प्राणी दु ख को भूल चुके है—उनके जीवन में अब व्यथा-वेदनाओं ने अपना स्थान त्याग दिया है और सब में सुख की व्याप्ति हो गई है।

विशेष—(१) यहाँ दुःख को विदूषक के रूप में बतलाया गया है। विदूषक के अभिनय को जिस प्रकार दर्शक कुछ क्षणों के बाद भूल जाते है, उसी प्रक र यहाँ समस्त प्राणी दुःखों तथा संतापों को भूलकर सुख तथा आनन्द में निमग्न थे।

(२) **अलंकार**—रूपक।

थे डाल डाल ... ... से बरसे।

शब्दार्थ—मधुमय=परागपूर्ण। मुकुल=कलियाँ। झालर=वंदनवार। रसभार—रस से बोझिल। प्रफुल्ल=विकसित। सुमन=फूल।

भावार्थ कवि का कथन है—उस सुरम्य प्रदेश मे वृक्षों एवं वल्लरियों पर शाखाओं में परागपूर्ण कोमल कलियाँ वन्दनवारों के रूप में शोभायमान हो रही थी तथा सुविकसित पुष्प अपने पराग-रस से बोझिल होकर शनैः-शनैः नीचे गिर रहे थे।

विशेष—यहाँ 'झालर' के बिम्ब के माध्यम से कलियो का तथा रस बरसे के बिम्ब के माध्यम से पुष्पों के बरसने का सशक्त चित्रांकन किया गया है।

हिमखण्ड ... ... **मृदंग बजाता।**

शब्दार्थ—हिमखण्ड=बर्फ के टुकड़े। रश्मि मंडित=चद्र किरणों से सुशोभित। मणिदीप=मणियों से बना हुआ दीपक। समीर=पवन। मृदग=ढोलक के आकार वाला वाद्य-विशेष।

भावार्थ—कवि का कथन है—रात्रि के समय चन्द्रमा की किरणो के पडने पर बर्फ के टुकड़ इस प्रकार चमक रहे थे मानो मणियो से बने हुए दीपक जगमगा रहे हों। उन बर्फ के टुकड़ों से वायु के टकराने पर उत्पन्न हुई ध्वनि मृदंग की ध्वनि के समान जान पड़ रही थी।

विशेष—(१) कवि ने यहाँ हिम-खण्डो का सुन्दर वर्णन किया है—कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति प्रेक्षणीय है।

(२) यहाँ 'मणिदीप' के बिम्ब के माध्यम से रश्मिमण्डित हिमखण्ड का एवं 'मृदंग-ध्वनि' के बिम्ब के माध्यम से ध्वनि का मनोरम चित्रण किया गया है।

(३) अलंकार—वस्तूत्प्रेक्षा।

संगीत मनोहर ... ... मिलन की।

शब्दार्थ—मुरली=वेणु, वंशी। संकेत =इंगित, इशारा। कामना= आकांक्षा।

भावार्थ—कवि का कथन है—कैलाश गिरि के उस चित्ताकर्षक वातावरण में समस्त प्राणियों मे सुख एवं आनन्द की अनुभूति के फलस्वरूप सुमधुर ध्वनि ऐसी जान पड रही थी, जैसे वंशी बजने पर स्वर लहरियाँ तैरती हुई सभी को आनन्द-विभोर कर देती है अर्थात् मन को मोहित कर लेती हैं। समस्त प्राणियों की आकांक्षा संकेत के रूप मे उपस्थित होकर मिलन की दिशा बतलाती हुई-सी दिखाई दे रही थी अर्थात् उनकी आकांक्षाएँ लक्ष्य को प्राप्त कर चुकी थी। इस प्रकार वे पारस्परिक भेद-भावों को त्यागकर परमानन्द मे विभोर दृष्टिगोचर हो रहे थे।

विशेष—(१) यहाँ बिम्ब-योजना विशेष रूप से दर्शनीय है।

(२) अलकार—(i) रूपक—'जीवन की मुरली'।

(ii) मानवीकरण—'संकेत···मिलन की'।

रश्मियाँ बनी ... ... रचती थीं।

शब्दार्थ—रश्मियाँ=चंद्रमा की किरणें। अप्सरियाँ=अप्सरायें, देव नर्तकियाँ। परिमल=पराग। कन कन=कण-कण।

भावार्थ—कवि का कथन है—रात्रिकाल में अन्तरिक्ष में चन्द्रमा की किरण नृत्य करती हुई देव नर्तकियो के समान प्रतीत हो रही थी। वे सुरभित पराग क कणो को ग्रहण कर अपने लिए रंगमंच की रचना करती हुई-सी दृष्टिगोचर हो रही थी।

विशष—(१) 'अप्सरियों के नृत्य' के बिम्ब के माध्यम से चन्द्रमा की किरणों के देदीप्यमान होने का चित्रण किया गया है।

(२) अलंकार—रूपक।

मांसल-सी ... ... क[illegible]णी।

शब्दार्थ—मांसल=मांस-मज्जायुक्त (पुष्ट, स्वच्छ, निर्मल)। [illegible]ती= बर्फयुक्त। पाषाणी=पर्वतीय प्रदेश की प्रकृति। लास=कोम[illegible], लास्य। रास=गोलाकार क्रीड़ा-लीला। कल्याणी=कल्याणकारिणी प्रकृति।

पम

है ... प्रदेश की सांस्कृतिक परम्परा

लीला है, जो आज तक प्रचलित है। श्री

में 'रास पंचाध्यायी' के अन्तर्गत पर्याप्त उल्ले

पदों में रासलीला का वर्णन किया है।

(२) यहाँ बिम्ब-योजना सुन्दर बन प

(३) अलंकार—मानवीकरण—समस्त

वह चन्द्र किरीट ... ...

शब्दार्थ—चन्द्रकिरीट=चन्द्र रूपी मु

पुरुष पुरातन=शिव। गौरी=उज्ज्वल व

सरोवर रूपी पार्वती। नर्तन=नृत्य।

भावार्थ—चांदी के समान सुशोभित

धारण किए हुए ऐसा प्रतीत हो रहा था, ज

कैलाश गिरि मानसरोवर की शुभ्र तरंगों

आनन्द की अनुभूति में तल्लीन हो उठते हैं

विशेष—(१) ... श गिरि की

के कोमल नृत्य का ... किया गया